सन्त डोंगरे जी

की उपदेश वाणी

भागवत से

सन्त - वाणी

भागवतरहस्य - सार

सन्त - वाणी

प्रवक्ता :

परमपूज्य संत डोंगरेजी महाराज

प्रस्तुति :

कालीचरण केशान

प्रकाशक :

मौजीराम स्मृति न्यास

ए-4, रिंग रोड, साउथ एक्सटेंशन पार्ट-I,

नई दिल्ली-110049

2002

मूल्य रुपये 50/-

प्रकाशक

महादेवी ज्ञानकेन्द्र

ई-80, साउथ एक्सटेन्शन, पार्ट-I

नई दिल्ली - 110 049

सम्पर्क

राधेश्याम गुप्ता

दूरभाष : 463 6010 - 30

फैक्स : (91-11)k 463 6011

Email : neetabooks@vsnl.com

प्रथम संस्करण 2002 4000 प्रतियाँ

मूल्य : Rs. 50.00 (पचास रुपये)

विशेष :

पुस्तक छपवाने के इच्छुक भक्तजन

राधेश्याम गुप्ता

से सर्म्पक कर सकते हैं।

☞ मुद्रक: गोपसंस पेपर्स लि०, नोएडा
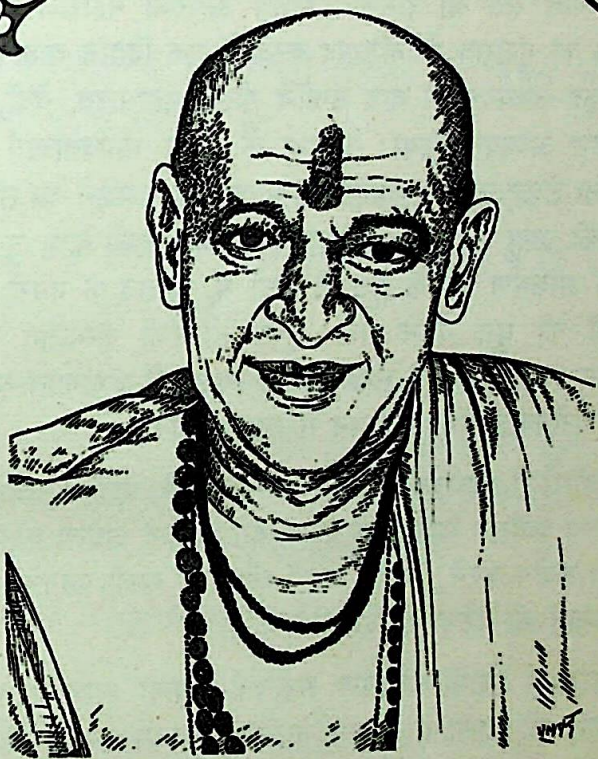
परमपूज्य संत डोंगरेजी महाराज

संत डोंगरेजीं महाराज
भक्ति-भागीरथी के प्रवाहक

श्रीमद्भागवत् तथा रामचरितमानस के माध्यम से पूरे देश में भक्ति-भागीरथी प्रवाहित करने वाले संत श्री रामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज का जन्म 15 फरवरी, 1926 को गुजरात के नड़ियाद कस्बे में एक विद्वान ब्राह्मण परिवार में हुआ था। संस्कृत-अध्ययन के बाद उन्होंने गीता, महाभारत, वेदों, उपनिषदों, पुराणों का गहन अध्ययन किया। गुजरात के महान भागवताचार्य श्री नरहरि महाराज से दीक्षा लेकर उन्होंने गुजरती में भागवत कथा कहने का संकल्प लिया। मात्र 14 वर्ष की आयु में उन्होंने श्रीमद्भागवत् की पहली कथा सुनाई। उनकी वाणी में इतना आकर्षण था कि कुछ ही दिनों में गुजरात के नगरों व कस्बों मे उनकी कथाओं की धूम मचने लगी। पूज्य डोंगरेजी जन्मजात विरक्त तथा भक्त-हृदय महापुरुष थे। उन्होंने संकल्प लिया कि वे श्रीमद्भागवत्-कथा से प्राप्त धन का सेवा, परोपकार तथा गोपालन में व्यय करेंगे।

संत डोंगरेजी महाराज कथाओं के माध्यम से, जहां भक्तजनों को मांस, मंदिरा तथा अन्य दुर्व्यसन त्यागने की प्ररेणा देते, वहीं वे अंग्रेजी की जगह संस्कृत तथा हिन्दी का प्रयोग करने, विदेशी वस्त्रों की जगह खादी पहनने तथा भारतीय वेश-भूषा अपनाने की प्रेरणा भी देते थे।

जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, स्वामी अखण्डानन्दजी, स्वामी करपात्रीजी आदि की प्रेरणा से ही उन्होंने हिन्दी का अभ्यास कर हिन्दी में कथा सुनानी शुरू की। श्रीमद्भागवत् के साथ-साथ उन्होंने रामचरितमानस की कथा के माध्यम से मार्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के आदर्श चरित्र को जन-जन तक पहुँचाया।

उनकी प्रेरणा से आज अनेक अन्न क्षेत्रों, गोशालाओं, संस्कृत विद्यालयों का संचालन हो रहा है। वे नए मंदिर बनाने की जगह पुराने जीर्ण-शीर्ण मंदिरों के उद्धार की भी प्ररेणा देते थे।

डोंगेरजी ने श्रीमद्भागवत् की अंतिम कथा शुक्रताल तीर्थ में की थी। 9 नवम्बर, 1990 को वे अपने इष्टदेव बालकृष्ण के श्रीचरणों में विलीन हो गए।

‘श्रीराधामुकुन्दयुगलं तमहं नमामि’

विनम्र निवेदन

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत।।

श्रीमद्भागवत-कथा सदा-सर्वदा सेवनीय है, जिसके श्रवण मात्र से श्रीहरि हृदय में आ विराजते हैं।

गोलोकवासी-संतप्रवक्ता श्रीरामचन्द्रजी डोंगरे महाराज की श्रीमद्भागवत की भावपरक व्याख्या लोक-मानस में इतनी रम गई है कि इसके परिचय की आवश्यकता नहीं रही है।

मूल गुजराती प्रकाशन के उद्धरणों का यह हिन्दी रूपान्तर काफी समय पूर्व प्रकाशित किया गया था। भक्तजनों में यह इतना प्रिय हुआ था कि मूल संस्करण के कई संस्करण तथा अनेक प्रतिष्ठानों द्वारा व्यावसायिक दृष्टिकोण से, हल्के किन्तु महँगे, मुद्रण प्रकाशित किये गये।

प्रस्तुत संस्करण का प्रकाशन भाई श्रीराधेश्यामजी गुप्त द्वारा किया जा रहा है। डॉ० (श्रीमती) अलका वर्मा ने प्रूफ संशोधन में सहयोग दिया है। सहयोगी द्वय के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। यह संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण आपके हाथों में है। आशा है भावुक भक्तजन इससे लाभान्वित होंगे।

‘त्वदीयं वस्तु गोविन्दः तुभ्यमेव समर्पये’

विनीत
कालीचरण केशान

श्रीपंचमी–2002

"कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्"

जानिए, कर्मयोगी कृष्ण को

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

कर्म की प्रेरणा देने वाले कर्मयोगी कृष्ण परमकल्याण, सहज जीवन-यापन तथा अन्तःकरण की संतुष्टि के लिए कर्म को ही मूलमंत्र मानते हैं। उनका मानना है कि योगी बनने के लिए हृदय-शुद्धि तथा स्वयं पर विजयश्री प्राप्ति-हेतु कर्मरत रहना नितान्त आवश्यक है। मानव का अधिकार कर्म करने का है, फल की प्राप्ति का नहीं। सत्कर्म का सुफल मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु कर्म फल में, इच्छा या अधिकार-भावना नहीं रहनी चाहिए। कर्मयोगी ही सर्वतोमुखी ज्ञान-प्राप्ति का सशक्त साधन बनता है।

प्राचीन समय से एक ऐसी ही विशद्, सशक्त एवं सुदीर्घ 'संतों' की परंपरा रही है। वर्तमान समय में इसी शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा करना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य है। हमारे कल्याणकारी कर्मों को ही संतों ने आत्मोत्कर्ष का कारक माना है। यदि श्रद्धा, विद्या और योग से युक्त कर्म करते रहें तो वे कर्म प्रखर से प्रखरतर होते जाएँगे। धर्म-विरूद्ध कर्म निषिद्ध कर्म हैं।

पूज्य श्री रामचंद्रजी डोंगरे भी इसी परम्परा में एक प्रतिष्ठित संत हैं जो मानसिक रूप से अशांत, व्यथित एवं दुःखी प्राणियों को यह आश्वासन देते हैं कि दृढ़ संकल्प एवं विश्वास के साथ कर्म करनेसे ही विषाद मिटेगा। संपूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से किया गया कर्म निष्फल नहीं होता। 'संत-वाणी' शीर्षक पुस्तक में संकलित संत श्री डोंगरेजी के प्रवचनों का यही संदेश है। जीवन-मरण कर्मानुसार ही निर्धारित होता है। नारदपुराण में कहा भी गया है कि जो भारतवर्ष में जन्म लेकर भी

पुण्य कर्मों से विमुख होता है, वह अमृत-कलश को छोड़ कर विष-भाण्ड को अपनाता है:-

संप्राप्य भारते जन्म सुकर्मसु पराङ्मुखः।
पीयूषकलसं व्यक्त्वा विषभाण्डं स मार्हति।।

श्री डोंगरेजी महाराज की एक विशिष्ट समाज-दृष्टि है। उन्होंने मानव-मात्र की धार्मिक मनोस्थिति को समझा हैं। कर्मयोगी कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति-भावना अत्यंत उदात्त है। प्रस्तुत संकलन में श्रीमद्भागवत के विशिष्ट आख्यान संग्रहित हैं। श्रीकृष्ण की लीलाएँ अनन्त-असीम हैं। एक से एक सुंदर एवं मोहक चित्र कृष्ण-भक्ति के फलक-रूप में हमारे साहित्य में उकेरे गए हैं। वह कौवा कितना सौभाग्यशाली है जो बालकृष्ण के हाथ से छीन कर माखन-रोटी ले जाता है:-

धूरि भरे अति शोभित श्यामजू तेसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना पग पैंजनि बाजति पीरी कछोटी।।
वा छवि को रसखानि बिलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सौं ले गयो माखन-रोटी।।

अहीर की छोहरिया अर्थात् 'राधा' उस नटवर नागर को 'छछिया भर छाछ' के लिए नाच नचाती है। लोकरक्षक कृष्ण, लोकरंजक रूप धारण करता है। मोर पंख से सुशोभित, गुञ्जामाला-सज्जित, मनोहारी मुस्कान बिखेरते, कानों में कुंडल लटकाए, बड़ी-बड़ी आँखों वाला वह साँवला सलोना कृष्ण किसे अपने वश में नहीं कर लेता? किसी कवि ने कहा भी है:-

वृन्दावन सो बन नहीं, नन्दगाँव सो गाँव।
बंशीवट सो वट नहीं, कृष्ण नाम सो नाँव।

ऐसे श्रीकृष्ण की भक्ति का सौभाग्य अनन्त पुण्यों का ही प्रतिफल है। श्री डोंगरे जी महाराज ने इस 'संत-वाणी' के माध्यम से अनगिनत लोगों

को कृष्ण की सहज-भक्ति का मार्ग दिखाया है। उनकी इस अमूल्य 'प्रवचन-वाटिका' को प्रकाशित करते हुए मैं अपने आप को धन्य महसूस कर रहा हूँ। परम आदरणीय श्री डोंगरेजी प्रतिपादित भक्ति-मार्ग ही भगवद्-दर्शन का साधन है। अतः मैं 'मौजीराम स्मृति न्यास' की ओर श्री डोंगरेजी महाराज के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में श्रीकालीचरण केशान का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने डोंगरेजी महाराज के प्रवचनों तथा गुजराती में उनके साहित्य का अनुशीलन कर उसे हिन्दी भाषी पाठकों को उपलब्ध करवाया है। हमारे अनुरोध पर 'संत-वाणी' के प्रस्तुत प्रकाशन को परिमार्जित कर उन्होंने अभिनवरूप प्रदान किया है। हिन्दी के कृष्णभक्ति-साहित्य की श्रीवृद्धि में उनका यह प्रशंसनीय अनुदान है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में रीडर पद पंर कार्यरत प्रियवर डॉ० पूरनचन्द टंडन का भी हमें सहयोग प्राप्त हुआ है।

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री शिवकुमार गोयल ने डोंगरेजी महाराज का संक्षिप्त परिचय उपलब्ध कराया है।

सभी सहयोगियों के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

अंततः कृष्णभक्त कवि रसखान के निम्न पद में निहित भावना के साथ यह पुस्तक आपके कर-कमलों में समर्पित है:-

मानुष हौं तौ वहीं रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्‍यो कर-छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं नित कालिन्दी-कूल कदंब की डारन।।

• राधेश्याम गुप्ता

"श्रीवृन्दावननाथपट्टमहिषी राधैव सेव्या मम"

श्रीवृन्दवननाथ श्रीकृष्ण की सिंहासनारूढ़ पटरानी श्री राधा ही मेरी आराध्या हैं।

卐 ॐ मंगलमूर्तये नमः 卐

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकन्दं मनसा स्मरामि।।

'भागवत-रहस्य' से संचयित
सन्त-वाणी

आनन्द ईश्वर का स्वरूप है

जन्म से मनुष्य बिगड़ा हुआ नहीं होता, कुसंग से बिगड़ता है। जन्म से बालक शुद्ध और निर्विकार ही होता है।

प्रभूत सम्पत्ति का होना ईश्वर की साधारण कृपा है। भगवान् जीव पर जब कृपा करते हैं तो उसे सन्मति देते हैं। सम्पत्ति और सन्मति एक साथ नहीं रहती। ईश्वर जिस पर कृपा करते हैं, उन्हें सत्संग देते हैं।

भागवत समाधि-ग्रन्थ है। समाधि में वस्तुओं का साक्षात्कार होता है। अधिकारी भेद से श्रोताओं को इसका न्यूनाधिक अनुभव होता है।

भागवत–कथा प्रेम है, मक्खन है। किन्तु महाराजश्री ने समाजशास्त्र की मिश्री का सम्मिश्रण कर इसे इतना सुस्वादु बना दिया है कि अल्प समय के लिए कथा-श्रवण करने आने वाले भी समय की लम्बाई को भूल जाते हैं।

मनन-चिन्तन के लिए तथा जीवन में उतारने के लिए भागवत–वाणी के प्रसाद को यहाँ सूत्र-रूप में संकलित किया गया है।

1

मन के गुरु बनो– मनुष्य के गुरु नहीं। मन को ज्ञान का प्रदीप दो। जब मन को समझाओगे तो मन मानेगा। मन को जरूर समझाओ। जब तक मन को नहीं समझाओगे, मन नहीं समझेगा।

श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी शक्ति है कि इसके मनन द्वारा मन को समझाओगे तो मन मानेगा।

प्रभु के नाम के साथ प्रेम करो।

पापों के कारण नाम में प्रेम स्थिर होता नहीं। जो प्रेम से जप करते हैं, उन्हें अनुभव होता है कि प्रभु उनके साथ हैं।

जब तक नाम में प्रेम नहीं होगा, संसार की आसक्ति नहीं छूटेगी।

नाम-सेवा से स्थिरता आती है। इससे मन शुद्ध होता है। मन का स्वभाव है कि जो प्राप्य है उसे त्यागता नहीं और जो नहीं मिलता, उसका त्याग करता है।

जीवन में अर्थ के मुख्य होने पर भक्ति छिन्न-भिन्न होती है। हृदय वृन्दावन जाता है। उसमें भक्ति तो है, पर वह छिन्न-भिन्न है। जितने पाप आते हैं, वे आँखों और कानों से होकर आते हैं। इसलिए इन को शुद्ध रखो।

भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण जिस कार्य को नहीं कर सके थे, वह कार्य श्रीमद्भागवत की कथा करती है। जो कथा का श्रवण करता है, उसके पापों का नाश होता है। बिना इच्छाशक्ति के क्रिया शुद्ध नहीं होती। ईश्वर के सत्य होने पर और संसार के सत्य न होने पर भी, संसार के सत्य होने का आभास होता है। जगत् मिथ्या है – यह कहने में कोई लाभ नहीं, समझने में लाभ है।

बाल-दृष्टि में, युवा-दृष्टि में और वृद्ध की दृष्टि में संसार भिन्न-भिन्न रूपों में दिखता है।

जगत् का नहीं – जगत् के आधार परमात्मा का विचार और चिन्तन करो।

सुखी रहने के लिए प्रभु के साथ स्नेह–बंधन करो। काल के धक्के से विवश होकर छूटने के पहले ही संसार को समझ कर छोड़ दो।

स्वदेश में प्रतिष्ठा–प्राप्ति "जय" है और परदेश में प्रतिष्ठा–प्राप्ति "विजय"।

जीवन के अंतिम श्वास तक सावधान रहो – माया गाफ़िल को ही मारती है।

ज्ञान–मार्ग में क्रोध विघ्न पैदा करता है और कर्म–मार्ग में काम विघ्नकारक है।

क्रोध में मौन रखो – क्रोध चाण्डाल का रूप है। क्रोध आवे तब स्नान करो। जब क्रोध आता है तो चेहरा बदल जाता है, आँखें लाल हो जाती हैं। काम पर विजय प्राप्त करने वाले को भी क्रोध मारता है।

मंदिर में क्रोध करने वाले को बड़ा पाप लगता है, इसलिए वहाँ क्रोध नहीं करो। मन्दिर के पाप वज्रलेप होते हैं। मन्दिर में जोर से नहीं बोलना चाहिये, क्योंकि प्रभु कोमल हैं।

प्रभु की मूर्ति के दर्शन करते यदि अपना दोष समझ में आए, तो समझो कि प्रभु की कृपा हुई।

प्रभु को अनन्यभक्ति प्रिय है। श्रीलक्ष्मीजी सब जगह चंचल रहती हैं, पर प्रभु के चरणों में पहुँच कर वह भी स्थिर हो जाती हैं।

चिन्ता न करो, श्रीकृष्ण का चिन्तन करो।

विपदो नैव विपदः संपदो नैव संपदः।
विपद विस्मरणं विष्णोः संपन्न् नारायण – स्मृतिः।।
विपत्तियाँ विपत्ति नहीं है, सांसारिक समृद्धि, समृद्धि नहीं है।
विष्णु–विस्मरण ही विपत्ति है, नारायण–स्मरण ही सम्पत्ति है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

2

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, कटे कोटि अपराध।।

भारत ने गृहस्थाश्रम में दो महान् सन्त दिये। श्रीतुकाराम कहते हैं कि कर्कश स्वभाव की भार्या के कारण ही मेरा मन ईश्वर के भजन में लगा। श्रीएकनाथ महाराज को अनुकूल पत्नी के कारण भक्ति - रस की प्राप्ति हुई। श्रीनरसी मेहता पत्नी के परलोक गमन पर, "अच्छा हुआ, जंजाल से मुक्ति मिली" कहकर, हरिगुण गाते-गाते नाचने लगे। संसार को नचाने वाली माया मेहताजी के दिव्य नृत्य को देखकर नत हो गई। भेद-भाव के बन्धन को तोड़कर मेहताजी ने हरिभक्तों के समावेश में कीर्तन करते हुए जगत् को समझाया है कि "वैष्णव बैर नहीं करते, स्नेह करते हैं।"

केवल श्राद्ध अथवा पिण्डदान से किसी की मुक्ति नहीं होती। शरीर पिण्ड है, इसे परमात्मा को अर्पित करो।

मनुष्य यदि स्वयं अपना कल्याण नहीं कर सकता, तो पुत्र किस प्रकार करेगा ?

कलियुग के मनुष्य परलोक गये माँ-बाप का उद्धार कर सकें, ऐसे नहीं हैं।

हमारे सभी कार्यों का प्रारम्भ गणपति पूजन से होता है। चूहा गणेशजी की सवारी है। चूहा उद्यम का प्रतीक है। गणपति महाराज हमेशा उद्यम करते रहते हैं। अतएव ऋद्धि और सिद्धि उनके साथ खड़ी रहती हैं।

भागवत में सकाम कर्म की निन्दा की गई है। सकाम कर्म में थोड़ी सी भूल रह जाए तो भगवान सजा देते हैं।

भक्ति का फल भोग नहीं, भगवान है। परमात्मा मनुष्य को उसकी योग्यता से कहीं अधिक देता है। इसलिए प्रभु से माँगोगे तो प्रेम में कमी

आएगी। यदि कम देवें, तो समझना चाहिये कि मैं अधिक के योग्य नहीं हूँ। बालक को क्या देना और क्या नहीं देना, इसमें माँ अपने विवेक के अनुसार कार्य करती है। जहाँ प्रेम है, वहाँ लेने की इच्छा न रखो। दुःख अपने पापों का फल है। भोग से ही उनसे छुटकारा होता है।

निष्कामभाव से प्रभु के पास जाओगे तो प्रभु सब कुछ देंगे। ज्ञान का उपयोग ध्यान के लिए करो।

तुम स्वयं खाकर खुश होओ, यह प्रभु को पसन्द नहीं, खिला कर खुश होना पसन्द है।

बग़ीचे में बैठकर फूल से सुगन्ध माँगनी पड़ती नहीं, वह अपने आप आती है।

प्रभु की मूर्ति को समर्पण करने जाओ, माँगने नहीं। वैष्णव भगवान के पास मुक्ति नहीं माँगते, सेवा माँगते हैं।

निष्कामभक्ति में ऐसा आनन्द है कि प्रभु वश में हो जाते हैं, अन्त में मुक्ति तो मिलती ही है।

जिसके घर में कुछ नहीं होवे - भगवान ही होवें, तो बहुत है।

वैष्णव प्रेम से परमात्मा को बाँधता है। भोगों में सन्तोष (तृप्ति) रखो और भक्ति में लोभ (अतृप्ति) रखो।

घर छोड़ने से अथवा कपड़े बदलने से कोई सन्त बनता नहीं।

मनुष्य शरीर को संभालता है, कपड़ों को संभालता है, पर मन को संभालता नहीं।

घर में रहकर मनुष्य सन्त हो सकता है। सन्त होने के लिए मन को संभालने की जरूरत है।

तुम मालिक हो, मन तुम्हारा सेवक है। सेवक जहाँ जाए, तुम्हें उसके पीछे नहीं जाना है। सेवक ही तुम्हारे पीछे आए।

चाहे सर्वस्व बिगड़ जाए, पर सावधान रहो कि मन नहीं बिगड़े।
जो मन को संभालता है, वह महान् है।

मरना निश्चित है, फिर मनुष्य पाप क्यों करता है ? मनुष्य मृत्यु का स्मरण रखे तो धीरे-धीरे पाप छूट जाते हैं और मन सुधर जाता है।

पाप में मात्र सुख का भास होता है। इसका परिणाम तो दुःख ही है। जन्म और मृत्यु के दुःख का स्मरण करो। मरण के दुःख का स्मरण करोगे तो धीरे-धीरे मन सुधरेगा। भय बिना मनुष्य का सुधार नहीं होता।

सुबह उठकर परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ध्यान करो और उसका चिन्तन करो।

दृष्टि को गुणमयी बनाओ। मनुष्य की आँखों में जब तक दोष-दृष्टि रहती है, तब तक उसे दोष ही दिखते हैं।

ब्रह्माजी की सृष्टि में गुण-दोष दोनों हैं। जहाँ दोष हैं, वहाँ गुण भी हैं। इसलिए हमेशा गुणों की ओर देखो।

सन्त में भी एकाध दोष रहते हैं। एक ईश्वर निर्दोष है। जब तक जीवात्मा शरीर में रहता है, उसमें एकाध दोष रहता है। बालक को नजर न लगे इसलिए जिस प्रकार माँ काजल की टिक्की लगाती है, उसी प्रकार भगवान भी जीव में एकाध कमी रख देते हैं। यदि मनुष्य दोष रहित हो जाए, तो स्वयं का अभिमान ही उसे नष्ट कर देगा। इसलिए भगवान सन्तों में भी एकाध दोष छोड़ देते हैं।

सन्त होने के लिए पाप को आँखों में न घुसने दो। पुण्य न बढ़े तो कोई बात नहीं, पर पाप तो न करो।

कपड़ों से सन्त होना कठिन नहीं है, किन्तु मन से सन्त होना कठिन है।

सन्तों को काल नहीं मार सकता। सन्तों की दृष्टि पवित्र होती है।

मनुष्य को सत्संग के बिना अपने दोषों का ज्ञान नहीं होता।

संतों के सत्संग में से ही कथा रूपी गंगा का उद्गम होता है।

तुम्हारी भूल को जो बताए, उसे प्रणाम करो। उसका उपकार मानो। मुँह पर प्रशंसा करने वाले ही पीछे से निन्दा किया करते हैं।

बहुत बोलनेवाला सन्तों को नहीं रुचता।

संत जिस पर कृपा करते हैं, उन्हें सम्पत्ति देते नहीं। उसकी विकार वासनाओं का नाश करके, भक्ति-रस-प्रदान के द्वारा कल्याण करते हैं।

सन्त तीन प्रकार से कृपा करते हैं। जब वे ध्यान में किसी जीव का स्मरण करते हैं, तो जीव का कल्याण होता है। भावावेश या प्रेमावेश में जिससे मिलते हैं, उसका कल्याण होता है। संत जिसकी ओर बार-बार निहारते हैं, उसका कल्याण होता है।

संसार में समझदारी सबके पास है, पर वह टिकती नहीं है। समाज में जो बुद्धिमान दिखता है, सही अर्थों में वह बुद्धिमान नहीं है।

कलियुग के मनुष्य को मन्दबुद्धि बताया गया है। मन्दबुद्धि इसलिए कि व्यवहार में तो वह सावधान रहता है, पर आध्यात्मिक कार्यों तथा आत्मकल्याण में सावधान नहीं रहता।

तुम्हें प्रभु को जवाब देना है - यह नहीं भूलो।

जब तक होश रहे, तब तक जो नियम लिया होवे, उसका पालन करो।

जब तक तुम दूसरे के हो, तब तक भगवान तुम्हारे नहीं हैं। "मैं परमात्मा का हूँ" - जब यह संकल्प करोगे, तो प्रभु तुम्हें अपना लेंगे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

3

श्री व्यासदेव को ऐसा लगा कि कलियुग में मनुष्य योगाभ्यास नहीं कर सकेगा। इसलिए कलियुग के जीवों के उद्धार के लिए भागवत शास्त्र की रचना की। भागवत शास्त्र यह बताता है कि कलियुग में मनुष्य थोड़े समय में भगवान को प्राप्त कर सकता है।

शास्त्रों में परमात्मा के तीन स्वरूप - सत्, चित्, आनन्द - बताये गये हैं। प्रकट रूप में सत् सब में है। चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अप्रकट हैं। जड़ वस्तुओं में सत् तो है, पर आनन्द नहीं है। जीव में सत् और चित् प्रकट हैं, पर आनन्द अप्रकट है। अपने भीतर आनन्द के रहते हुए भी मनुष्य उसे बाहर खोजता है।

मनुष्य धन और स्त्री के सौन्दर्य में आनन्द खोजता है।

दूध में मक्खन है, पर वह दिखता नहीं। दूध जमाकर दही मथने पर वह दिखता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी मन का मन्थन करके आनन्द का अनुभव या साक्षात्कार करना चाहिये। दूध में जिस प्रकार मक्खन का अनुभव नहीं होता, उसी प्रकार ईश्वर के सर्वत्र व्याप्त होने पर भी, बिना मनोमन्थन के ईश्वर का अनुभव नहीं होता।

आनन्द के अनेक प्रकारों में दो मुख्य हैं- साधनजन्य आनन्द तथा स्वयंसिद्ध आनन्द।

साधन के माध्यम का नाश होते ही साधनजन्य आनन्द का विनाश हो जाता है।

केवल परमात्मा श्रीकृष्ण ही पूर्ण आनन्द-स्वरूप हैं। जीव आनन्द-स्वरूप है। आनन्दरूप होने के लिए जीव श्रीकृष्ण की शरण में जाये। जीव जब तक परिपूर्ण नहीं होता, तब तक उसे आनन्द और शान्ति मिलती नहीं।

ज्ञानी मनुष्य ज्ञान के द्वारा प्रभु का अप्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हैं, जब कि वैष्णव प्रेम से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हैं।

सच्ची शान्ति नारायण में है। नर नारायण का अंश है। अतएव नर नारायण में लीन हो जाने की इच्छा करता है। नारायण को पहचान कर उसमें एकाकार हो जाने के लिए ही भागवत शास्त्र है।

श्रीमद्भागवत माहात्म्य में आत्मदेव ब्राह्मण की कथा आती है। सन्तान न होने के कारण उसने तुंगभद्रा नदी के किनारे तप किया था।

तुंग अर्थात् बहुत, भद्रा अर्थात् कल्याण करनेवाली। यह मनुष्य शरीर ही तुंगभद्रा है।

आत्मा का देव - यह आत्मदेव है। जीवात्मा आत्मदेव है। शरीर में रहनेवाला जीव देव बन सकता है। दूसरों को भी देव बना सकता है। आत्मदेव की स्त्री का नाम धुन्धुली है। धुन्धुली बुद्धि है। सबके घर में धुन्धुली है। द्वैतवृत्ति, द्वैतबुद्धि–यह धुन्धुली है। जब तक यह सक्रिय रहती है, तब तक आत्मशक्ति जाग्रत नहीं होती। बुद्धि को दूसरे का प्रपंच बहुत अच्छा लगता है।

बुद्धि के साथ जीवात्मा का विवाह हुआ है । बुद्धि धुन्धुली की बहिन है। सत्संग बिना विवेक जाग्रत नहीं होता। विवेक पुत्र है। धुन्धुली की बहिन (मन) द्वारा प्रदत्त पुत्र धुन्धुकारी है। धुन्धुकारी रूपी पुत्र मात्र कामसुख का ही चिन्तन करते हैं। जिसके जीवन में धर्म की अपेक्षा अर्थ और काम प्रधान हैं, वह धुन्धुकारी है।

धुन्धुकारी बड़ा होकर वेश्याओं में फँस गया–एक दो नहीं पाँच वेश्याओं में। पाँच वेश्याएँ अर्थात् पाँच विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। ये पाँच विषय धुन्धुकारी रूपी जीव को बाँधते हैं।

धुन्धुकारी मुर्दे हाथों से कमाता था। जिन हाथों से परोपकार नहीं बनता, वे मुर्दे के हाथ हैं। जिन हाथों से भगवान श्रीकृष्ण की सेवा तथा परोपकार नहीं होता, वे हाथ शव के हाथों के समान हैं।

धुन्धुकारी को वेश्याओं ने फाँसी लगाकर मार दिया। उन्होंने उसके शरीर को गाड़ दिया। अपने कुकर्मों से वह प्रेत बना। अपने प्रेत भाई की सद्गति के लिए गोकर्ण ने सूर्यनारायण की आज्ञा से विधिपूर्वक कथा कही। धुन्धुकारी वहाँ आया। वहाँ उसे बैठने को स्थान नहीं मिला। सात गाँठवाले बाँस में प्रवेश कर उसने सप्ताह कथा सुनी। सात दिन में सातों गाँठें फट गईं। धुन्धुकारी मोक्ष को प्राप्त हुआ।

धुन्धुकारी बाँस अर्थात्–वासनाओं में लिप्त रहता था। बाँस की सात गाँठें ही वासनाओं की सात ग्रन्थियाँ हैं। वासना ही पुनर्जन्म का कारण है। वासना का नाश करो।

वासना सात प्रकार की होती है। ये स्त्री, पुत्र, व्यापार, द्रव्य, कुटुम्ब, घर और ग्राम विषयक सात आसक्तियाँ हैं। वासनाओं का त्याग करो।

काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर और अविद्या ये सात गाँठें हैं। इन गाँठों का भेदन कर जीव को मुक्त करो।

भागवत ऐसा ग्रन्थ नहीं है जो मृत्यु के पश्चात् मुक्ति दिलावे। यह तो मरने के पहले ही मुक्ति प्राप्त कराने का साधन है।

श्री डोंगरे महाराज देह–धर्म के बारे में बारम्बार जोर देकर श्रोताओं को संकेत करते हैं।

प्रातःकाल उठो। पहले शौच निवृत्ति, बाद में दातुन करो। चार से पाँच बजे के बीच का स्नान ऋषि–स्नान कहलाता है, जो उत्तम है। पाँच से छः बजे के बीच का स्नान मनुष्य स्नान है, जो मध्यम है। ६१/२ के बाद का स्नान राक्षसी स्नान है।

चार बजे के बाद बिस्तर का आनन्द बड़ी सजा है।

वैराग्य बहुतों को होता है, पर मन में दृढ़ता नहीं आती।

कथा में, कीर्तन में और प्रभु के दर्शन में जिन्हें तृप्ति आती है, वे वैष्णव नहीं हैं। कलियुग में जो सिर्फ मन से ही पाप करते हैं, उन्हें कम और जो शरीर से पाप करते हैं, उन्हें पूरी सजा मिलती है। किन्तु मनसे

पुण्य, सेवा और दर्शन करने वाले को बहुत अधिक पुण्य फल की प्राप्ति होती है।

मैं भगवान का हूँ – ऐसा दृढ़ संकल्प करो। जब तक तुम दूसरे के हो तब तक भगवान तुम्हारे नहीं हैं। मैं किसी का नहीं, भगवान का हूँ – ऐसा संकल्प करो। प्रभु तुम्हें आत्माकार कर लेंगे।

ध्यान कल्याण का साधन है। परमात्मा की सेवा में तन्मय बनो।

जब तक ईश्वर और माया के बीच का परदा नहीं उठता, तब तक ईश्वर के दर्शन नहीं होते।

भक्ति के आनन्द में धीरे-धीरे संयम को बढ़ाओ। वासना के विनाश से ही ईश्वर का दर्शन होता है। संयम से सुख अर्थात् आनन्द मिलता है, परमात्मा का ध्यान किया जा सकता है। संसार के जो विषय सुखों को देते हैं, वे ही दुःखों को भी देते हैं।

जब भक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है तो भक्त और भगवान अलग-अलग नहीं रहते।

तत्त्व एक है, नाम अनेक हैं। व्यवहार का ज्ञान द्वैतभाव से युक्त है। अंतःकरण की परीक्षा आँखों से होती है। काली आँखोंवाला कामी, पीली आँखों वाला लोभी और लाल आँखों वाला क्रोधी होता है।

जिसको परमात्मा का अनुभव होता है, वह यह नहीं कहता कि मैं ईश्वर को जानता हूँ। वह तो ईश्वर के साथ एकरूप हो जाता है।

श्रेष्ठ चिकित्सक वह है जो चेहरा देखकर रोगी के रोग का निदान करे।

हमसे जिन्हें सच्चा लगाव होगा, वे ही हमारी भूल बतावेंगे। जिसमें सच्चा अपनत्व है, वही ईश्वर के मार्ग पर ले जाता है।

ज्ञानी वह है जो परमात्मा के साथ प्रेम करे।

जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ जीव स्वयं के स्वरूप को छिपाकर रखता है। जहाँ प्रेम है, वहाँ जीव स्वयं के स्वरूप को प्रकट करता है।

जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ परमात्मा भी स्वयं के स्वरूप को प्रकट नहीं करते।

यदि हृदय द्रवित न हो तो कर्मयोग किस काम का ? भक्ति का पुट मिलने पर कर्मयोग सफल होता है।

परोपकार में प्रवृत्ति ही निवृत्ति है।

वेदान्त का तत्त्वज्ञान प्रभु-प्रेम के बिना पंगु है।

इच्छाओं को भले न छोड़ो, पर उनके गुलाम तो न बनो।

माँ का मन दुखे, ऐसा कोई कार्य नहीं करो। माँ परमात्मा का स्वरूप है। तन माँ ने दिया है पर मन प्रभु का दिया हुआ है। तन से माँ की और मन से प्रभु की सेवा करो।

ध्यान और जप करने से भगवान विघ्नों का विनाश करेंगे। बत्तीस लाख जप हो जाने पर नया जीवन शुरू होता है।

जप की गिनती करने की क्या जरूरत है ? मनुष्य जब खाने बैठता है तो क्या हिसाब रखता है ?

जप करने का काम मनुष्य का है और हिसाब रखने का काम परमात्मा का।

गुप्त बात किसी मनुष्य से नहीं, प्रभु से ही कहो।

पैसे के लिए प्रयत्न तो करो, पर हाय-हाय न करो।

श्री गोवर्धन परिक्रमा

मैं तो गोवर्धन को जाऊँ मेरी वीर, नाय माने मेरो मनवा।
पाँच सेर की करी रे करैहया
मैं तो पैंड-पैंड पर खाऊँ मेरी वीर–नायमाने मेरो मनवा।
सात कोस की करी परिक्रमा
मैं तो मानसी-गंगा नहाऊँ मेरी वीर–नाय माने मेरो मनवा।
चकलेश्वर की पूजा करि कें
मेरी ननदीय न्यौति जिमाऊँ मेरी वीर–नाय माने मेरो मनवा।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छवि
मैं तो हरी-चरनन बलि जाऊँ मेरी वीर, नाय माने मेरो मनवा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

4

परमात्मा के २४ अवतार हैं। सारे अवतारों की लीला का संवरण हुआ, पर नरनारायण भगवान का तिरोभाव नहीं हुआ। भरतखण्ड के स्वामी नरनारायण देव हैं। प्रभु नरनारायण ने तपस्या का आदर्श बताया है। कहते हैं कि मैं ईश्वर हूँ, फिर भी तप करता हूँ।

बद्रिनारायण मन्दिर में लक्ष्मीजी की प्रतिमा नहीं है। तप में स्त्री, बालक और लक्ष्मी दूर रहने चाहिये। बद्रिनारायण को अलकनन्दा के ठण्डे स्नान के पश्चात् चन्दन लगाते हैं, फिर वस्त्रों का शृंगार करते हैं। तप की गरमी के बाद नारायण को चन्दन अर्पित करते हैं। महान् बनने के लिए थोड़ा तप करो।

भगवान का अवतार अयोध्या में होवे या मथुरा में - इसमें विशेष लाभ नहीं, हृदय-अन्तर में हो, तो ही लाभ होता है।

अवतारों में सनत्कुमार ब्रह्मचर्य के स्वरूप हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को शुद्ध करो।

वराह भगवान संतोष के स्वरूप हैं। जो स्थिति रहे उसी में सन्तोष मानो।

नारदजी भक्ति के स्वरूप हैं।

नरनारायण भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के स्वरूप हैं। भगवान की प्रतिष्ठा करना कठिन नहीं है, पर उन्हें अखण्ड रखना कठिन है।

सत्यनारायण भगवान के प्रसाद में तीन पदार्थ सवा सेर करके होवे तो वे प्रसाद लेते हैं। इसी तरह ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में समरसता रहनी चाहिये।

शुकदेवजी में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य परिपूर्ण है, इसलिए वे उत्तम वक्ता हैं। व्यासजी और नारदजी में वैराग्य का अंश कुछ कम है। वे समाज सुधारक हैं। जो समाज का चिन्तन करते हैं, उनमें थोड़ा अभिमान भी आ जाता है।

वक्ता में पूरा वैराग्य नहीं होवे, तो वह मध्यम कोटि का वक्ता है। किसी को छोटा समझने का नाम ज्ञान नहीं है। सबमें प्रभु का दर्शन करना ही ज्ञान है।

शुकदेवजी के दर्शन मात्र से अप्सराओं को विलासी जीवन से घृणा हो गई थी। शुकदेवजी ऐसे निर्विकार हैं कि उनके दर्शन से काम का नाश होता है।

जब तक कुछ करने की इच्छा रहती है, तब तक मन स्थिर नहीं होता। कुछ करने की वासना रहने तक परमात्म-रस का आनन्द नहीं मिलता।

शुकदेवजी महाराज प्रवचन से ज्ञान देते हों, ऐसी बात नहीं है। उनके दर्शन से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

समाज-सुधारक की आवश्यकता होगी तो ईश्वर किसी को भेजेगा।

दुर्योधन को समझाने के लिए श्रीकृष्ण ने अनेक प्रयत्न किये थे, पर क्या उसका सुधार हुआ ?

दूसरों को सुधारने के प्रयास में हो सकता है कि स्वयं का मन बिगड़ जावे- स्वयं का ही पतन हो जावे।

संसार को लगता है कि सूर्यनारायण अन्धकार का नाश करते हैं, पर स्वयं सूर्यनारायण को ऐसा नहीं लगता। शुकदेवजी का ज्ञान भी इसी प्रकार का है।

जिसकी कथनी और करनी एक है, वह श्रेष्ठ वक्ता है। जो कहता तो है, पर जीवन में उतारता नहीं, उसकी वाणी में शक्ति नहीं आती।

ज्ञान जब तक शब्दात्मक रहेगा, तब तक भार है। पर जब जीवन में उसे क्रियात्मक रूप में उतारते हैं, तो वह भारहीन हो जाता है।

चरणामृत पिपासा शान्त करने के लिए नहीं है, उसे तो आचमन रूप में ही लो।

पेट में जाने के बाद जो मूत्र में परिवर्तित न हो–वह चरणामृत और जो मल का रूप न लेंवे–उसका नाम प्रसाद है।

जो मनुष्य श्रीराम की मर्यादा का पालन करते हैं, वे ही श्रीकृष्ण की भक्ति कर सकते हैं। भक्ति की इच्छा होने पर 'मर्यादाधर्म' की मर्यादा में रहकर भक्ति करो।

श्रीराम का जन्म राजमहल में हुआ और श्रीकृष्ण का कारागार में। राम-नाम में संयुक्ताक्षर नहीं हैं। कृष्ण नाम में सरल अक्षर नहीं हैं। सेवा करने के बाद आनन्द की अनुभूति न हो तो समझना चाहिए कि कहीं कमी है। सेवा करते हुए जिसे थकावट आवे, झुंझलाहट आवे, तो मनुष्य सेवा की बेगार उतारता है।

मन को भगवान में लगाये रखना बड़ा कठिन है। सेवा में भी लगाये रखना बड़ा कठिन है। मन जितना शुद्ध होगा, सेवा में उतना ही आनन्द मिलेगा।

संसार में इतने आकर्षण बढ़ रहे हैं कि मन को पवित्र रखना कठिन हो गया है।

किसी पर दृष्टिपात करने के पहले विचार करो कि मैं जिस दृष्टि से देखता हूँ, वह कैसी है ? मन को शुद्ध रखना है तो आँखों को पवित्र रखना होगा।

सुखी रहना है तो बहुत स्वतन्त्रता नहीं लो। जो स्वतन्त्र हैं, वे भी माता-पिता के अधीन हैं। वैष्णव कोई भी काम ठाकुरजी की आज्ञा लेकर ही करते हैं । भगवान के अधीन रहोगे तो कल्याण करने हेतु वह तुम्हारे बन्धन में आ जाएगा।

जो अति सुखी होता है, वह सब कुछ भूल जाता है। जीवन में एकाध दुःख का आना जरूरी है। दुःख में अनुभव होता है कि प्रभु के बिना मेरा कोई नहीं है। महात्मागण दुःख को गुरु मानते हैं। जिस जीव को अपनी ओर खींचना होता है, उस जीव को परमात्मा बड़ा दुःख देते हैं।

भगवान शरीर का सौन्दर्य नहीं देखते, स्वभाव की सुन्दरता देखते हैं। आँखों में प्रेम रखो। आँगन में आने वाले का सत्कार करो, चाहे बैरी ही क्यों न हो।

बालक बड़ों से संस्कार ग्रहण करता है। कथा-श्रवण सावधान होने के लिये है। बालकों को संस्कार देने के लिए बड़ों को सावधान होकर जीवन-यापन करना चाहिये।

यदि रक्षा करना माँ-बाप की सामर्थ्य में होता तो बालक मरते नहीं। गर्भ में तो परमात्मा ही बालक का रक्षण करता है।

जो स्वयं काल का ग्रास है, वह दूसरों की क्या रक्षा करेगा? जो काल का भी काल है, वही रक्षा करता है। मनुष्य के जीवन में एकाध बार कष्ट आए तो वह सुधरता है।

विरह में जिसके प्राण तड़फड़ाते हैं-वही सच्चा प्रेमी है।

श्रीकृष्ण का विरह कुन्तीजी सहन नहीं कर सकीं। प्रभु जब द्वारका गये तो कुन्तीजी रास्ते में हाथ जोड़कर खड़ी रहीं। द्वारकानाथ रथ से उतरे। कुन्तीजी वन्दन करें, इसके पहले भगवान ने कुन्तीजी को प्रणाम किया।

वंदन भगवान को बंधन में डालता है। जो वस्तु से प्रसन्न होता है, वह जीवात्मा है। वंदन से प्रसन्न होवे वह परमात्मा है।

जिस घर में परमात्मा की सेवा और कीर्तन होता है, वह घर वैकुण्ठ है।

जल के बिना नदी की शोभा नहीं है, कुमकुम के बिना सौभाग्यवती की शोभा नहीं है।

मेरा-मेरा तो सभी कहते हैं, पर जो किसी का नहीं होता, वही सबसे पृथक् रहता है।

संत की पुण्यतिथि पर उत्सव होता है। संतों का जीवन मंगलमय होता है, इसलिए उनकी मृत्यु भी अलौकिक होती है।

कौरव-पाण्डवों का युद्ध धर्म के लिए हुआ था, राज्य के लिए नहीं।

जो काम पर विजय प्राप्त करता है, वह काल को भी जीत सकता है।

हजारों बिच्छू एक साथ डंक मारें, इतना कष्ट अन्त समय में होता है।

जो पाप तो नहीं करता, पर सुनता है, - उसे भी दोष लगता है और सजा मिलती है। धर्म की गति अति सूक्ष्म है।

जिस प्रकार मनुष्य अत्यन्त दुःख में भी भोजन नहीं छोड़ता, उसी प्रकार धारण किये हुए भजन और पूजन के नियमों को न छोड़ो।

अन्त समय में ज्ञान धोखा दे सकता है, पर भक्ति तो मरण सुधारती है। सुख और दुःख दोनों में प्रभु का स्मरण करो। भगवान तुम्हारे साथ रहेंगे। कदाचित् कोई दुःख आ पड़े, तो धीरज रखो। प्रभु का साथ नहीं छोड़ो।

आँगन में आये हुए भिखारी को यदि कुछ नहीं मिलता है, तो वह घर का पुण्य ले जाता है।

जो भक्ति करते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण मिलते हैं। मन रूपी मछली को विवेकरूपी बाण से बींधोगे तो तुम्हें द्रौपदी रूपी भक्ति प्राप्त होगी।

जो ठाकुरजी को जिमाता है, वह संसार को जिमाता है। मरण और प्रयाण में अन्तर है। बिस्तर पर दुःखी होकर मरना मरण है।

परमात्मा की आरती उतारकर देह का त्याग "प्रयाण"–मंगल प्रयाण है।

संसार का चिंतन करने से मन बिगड़ता है। हमेशा जप नहीं करोगे तो मन संसार का चिन्तन करेगा। एक बार मन के बिगड़ने पर उसको सुधारना कठिन है।

जिसका जीवन पवित्र है, उसके घर में काल नहीं आता।

लोग समझते हैं कि काल(समय) बिगड़ा हुआ है। काल भले ही बिगड़े, मन नहीं बिगड़ना चाहिये।

आचार बिगड़ने से विचार बिगड़ते हैं। विचार बिगड़ने से वाणी बिगड़ती है। वाणी बिगड़ने से वीर्य (पुरुषार्थ) बिगड़ता है।

सदाचार की मर्यादा का जितना पालन करोगे, बुद्धि उतनी ही पवित्र होगी।

हरि–सा हीरा छाड़िकै करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे सत भाखै रैदास।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

5

श्रीमद्भागवत प्रेम-शास्त्र है। कलियुग में "प्रेम" शब्द ने विकृत रूप ले लिया है। प्रेम भोग नहीं, परमात्मा का स्वरूप है। मोह देह का धर्म है। एक-सा भासने पर भी मोह और प्रेम में बड़ा अन्तर है। मोह में 'संयोग' (मिलन) की आकांक्षा रहती है, पर प्रेम तो वियोग में भी आनन्द मानता है। बाह्य रूप की आकृति प्रेम को स्वीकार्य नहीं है। भगवान का विचार करने से मन में प्रेम जागता है। नारदजी के कहने पर व्यासजी ने इस अलौकिक भागवत शास्त्र की रचना की थी।

सच्चा ज्ञान वही है जो किसी का तिरस्कार नहीं करे। प्रेम करने के लायक तो एक परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं। प्रसाद का मिश्रण तैयार करने के लिये जिस तरह तीन वस्तुएँ एकत्रित करनी होती हैं, वैसे ही ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से प्रेम परिपूर्ण होता है।

परीक्षित का जीवन सुधरा तो उसे संत मिले। जिसमें माता-पिता, अन्न, वंश और आत्मशुद्धि-ऐसी पाँचों शुद्धि होवें, वही उत्तम श्रोता है।

वंश-शुद्धि बताने के लिए कौरव पाण्डव की कथा कही है।

भागवत में १८००० श्लोक हैं। आठ प्रकृति और नवाँ ईश्वर का। १ +८नौ का अंक पूर्णता सूचक है। श्रीरामचन्द्रजी का जन्म नवमी को और श्रीकृष्ण का भी गोकुल में प्राकट्य नवमी को ही हुआ है। किस प्रकार खाना चाहिये, किस तरह बोलना चाहिये, किस तरह व्यवहार करना चाहिये, आदि बहुत सी बातें भागवत में बताई गई हैं।

भगवान के सद्गुणों को जीवन में ग्रहण करो। पूर्व जन्म का विचार न करो। राजा जनक ने याज्ञवल्क्य ऋषि से अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत दिखाने की प्रार्थना की। ऋषि ने कहा - उसे देखने में आनन्द नहीं है। किन्तु राजा जनक के दुराग्रह से याज्ञवल्क्य ने उसके अनेकों पूर्व जन्मों के

वृत्तांत दिखाए। राजा जनक ने देखा कि अनेक जन्मों में–से एक जन्म में उसकी अपनी पत्नी उसकी माता थी। उसे दुःख हुआ। पूर्व जन्मों का विचार न करो, इस जन्म को सुधारने का यत्न करो।

गाँधीजी भी कहते हैं कि ढाई मन ज्ञान की अपेक्षा स्वल्प सद्–आचरण श्रेष्ठ है।

जिसका आचरण मंगल है, उसका भजन और चिन्तन करना मंगलाचरण है। श्रीकृष्ण का नाम मंगल है, धाम मंगल है।

प्रत्येक काम के प्रारम्भ में मंगलाचरण करो। भागवत में तीन मंगलाचरण हैं। पहले स्कंध में व्यासजी का, दूसरे में शुकदेवजी का और समाप्ति में सूतजी का।

बिस्तर में सोने के पश्चात् मनुष्य बहुत पाप करता है। सुबह, मध्याह्न और रात्रि में सोने के पहले, तीन समय मंगलाचरण करो।

ध्यान में दूसरे किसी का चिन्तन न करो। किसी जीव अथवा जड़ पदार्थ का ध्यान न करो। परमात्मा का ध्यान करने से मन शुद्ध होता है। मन की शुद्धि दान अथवा स्नान से नहीं होती। तीर्थ स्नान से शरीर तो शुद्ध होता है–मन शुद्ध नहीं होता।

शरीर के जैसी मलिन वस्तु दूसरी नहीं है। शरीर के द्वारा ईश्वर से नहीं मिला जा सकता। शरीर गंदा है। भगवान को तो मन से मिला जा सकता है। भगवान को मन से मिलाना है। बिना ध्यान के मन से मिलन हो सकता नहीं। आँखों से दर्शन और मन से स्मरण करोगे तो प्रभु की शक्ति तुम्हारे में आएगी। ध्यान से ईश्वर–जीव का मिलन–संबंध होता है–ब्रह्म सम्बन्ध बनता है।

धर्म की उन्नति होगी तो देश की उन्नति होगी। देश में धन की जितनी आवश्यकता है, उससे बहुत अधिक धर्म पालन की जरूरत है। धन इस लोक में सुख देता है, पर धर्म तो परलोक में सुख देने वाला है।

धन साधन है, साध्य नहीं। धन कमाने में पाप न होवें इतना साहस रखो। धर्म ही जिसका ध्येय है और धर्म ही जिसका प्रधान संरक्षक है, उसके साथी भगवान हैं। अर्जुन ने धर्म की आधीनता स्वीकार की थी।

इन्द्रियाँ परमात्मा की आज्ञा-प्रेरणा बिना कहीं न जावें, यह ध्यान रखो।

गदहा अधर्म और बैल धर्म है। गदहे के पैर में एक खुर है और बैल के पैर में दो खुर – प्रवृत्ति और निवृत्ति।

संसार में प्रवृत्त मनुष्य भगवद्सेवा करने से निवृत्त हो सकता है।

ऋषियों ने स्पर्शास्पर्श का विवेचन धर्म के लिए ही किया है। साथ में (एक पात्र में) भोजन करने से प्रेम नहीं बढ़ता। किसी का अनादर न करो, पर जब तक देह भान है, तब तक देह की मर्यादा का ध्यान रखो।

आत्मा शुद्ध है, पर हरेक का शरीर शुद्ध नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म में कारण, इस प्रकार तीन शरीर हैं।

जो दिखता है, वह स्थूल है। उसके अन्दर रहने वाला सूक्ष्म शरीर १७ तत्त्वों का बना है। सूक्ष्म शरीर स्थूल दृष्टि वाले को नहीं दिखता। स्थूल शरीर बदलता है। सूक्ष्म शरीर बदलता नहीं।

गाय बल देती है। ब्राह्मण बुद्धि देता है। गाय पशु नहीं, माँ है। माँ तो थोड़े दिंन ही दूध पिलाती है, पर गाय हमेशा दूध देती है।

यदि सम्पत्ति मिले तो गाय रखना। जिस घर में गाय के गोबर का लेपन नहीं होता, वह घर अशुद्ध है।

गाय के गोबर में लक्ष्मीजी और मूत्र में गंगाजी हैं। गाय की पूजा करो।

कुत्ता आँगन में आवे तो उसे लकड़ी से नहीं मारो, रोटी का टुकड़ा दो। धर्म का पालन मर्यादापूर्वक करो।

किसी भी वस्तु में शान्ति नहीं है-सिर्फ स्वभाव की समझ में शान्ति है।

भोजन की थाली पर बैठ, अन्न को सामने रखकर क्रोध नहीं करो। यह बड़ा पाप है।

स्वभाव को बर्फ की तरह ठण्डा रखो। कुछ खो जाए तो ठीक है पर मन की शान्ति न जाए इसका ध्यान रखो। काल, कर्म और स्वभाव-ये तीनों सुख और दुःख के देने वाले हैं।

सत्य, दया, तप और पवित्रता धर्म के चार पाद हैं। त्रेता में एक, द्वापर में दो और कलि में तीन पाँव कटने से दुःख बढ़ गया। पापी पर अंगुली उठाना भी पाप है।

कलि के स्पर्श से परीक्षित की बुद्धि बिगड़ी और मंथरा के स्पर्श से कैकेयी की बुद्धि खराब हुई।

जहाँ तुम्हारी बड़ाई होवे, वहाँ मत बैठो। निन्दा सहन करना सहज है, पर प्रशंसा संभालना कठिन कार्य है। प्रशंसा सुनकर मनुष्य में सूक्ष्म अभिमान आता है।

सट्टा जीवन में बट्टा लगाता है।

जो साधु अथवा ब्राह्मण सट्टे का अंक बताता है, वह महापापी है। सट्टा करने वाला तो पापी है ही।

हिंसा से प्रतिहिंसा उत्पन्न होती है। ध्वनि से प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है।

सोने में कलि का निवास है, चाँदी में नहीं। प्रत्येक वस्तु में तीन दोष आते हैं–कालदोष–कर्तादोष और निमित्तदोष। जिस वस्तु में ये तीनों दोष न होवें उसे विवेकपूर्वक ग्रहण करो, उसका उपयोग करो।

जूठी सम्पत्ति का उपयोग नहीं करो। शास्त्रों का कथन है कि दूसरों के बिस्तर में नहीं सोवे।

अधर्म से उपार्जित धन कमानेवाले को तो सुख देता ही नहीं, भोगनेवाले व्यक्ति को भी दुःख देता है।

मनुष्य की बुद्धि पहले बिगड़ती है, पीछे विपत्ति आती है।

बाल्यावस्था प्रातःकाल है। मनुष्य उसमें भूल नहीं करता। जीवन की संध्यावस्था–वार्धक्य में भी मनुष्य भूल नहीं करता। भूल करता है मध्याह्न काल–युवावस्था में। इसलिए किसी सन्त के अधीन रहो।

साधु ब्राह्मण की अधिक परीक्षा नहीं करनी चाहिये। परीक्षा से लाभ नहीं होता। मन नहीं माने तो सम्बन्ध न रखो।

जिस दिन पाप हो जाए, उस दिन उपवास करो। यदि तुम जीव को सजा नहीं दोगे तो ऊपर जाने पर यम सजा देंगे।

पाप को प्रकट करने से पाप का नाश होता है। पुण्य को प्रकट करने पर पुण्य का नाश होता है। जो पाप को नहीं छिपाता, उसका पाप धीरे-धीरे दूर हो जाता है।

जाने के बाद जहाँ से वापस लौटना है, उसके लिए कितनी अधिक तैयारी की जाती है। पर जहाँ जाकर वापस नहीं आना है, उसके लिए कोई तैयारी करने में नहीं आती।

भय बिना प्रीति नहीं होती। अतएव काल की, मरण की भीति रखो।

म्हाँने चाकर राखो जी।
गिरधारी लला! चाकर राखो जी।।
चाकर रहस्यूँ, बाग लगास्यूँ, नित उठ दरसन पास्यूँ।
बृन्दावन की कुंज गलिन में, गोविन्द–लीला गास्यूँ।।१।।
म्हाँने चाकर राखो जी।
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव–भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।।२।।
म्हाँने चाकर राखो जी।
मोर मुकट, पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।
वृन्दावन में धेनु चरावे, मोहन मुरलीवाला।।३।।
म्हाँने चाकर राखो जी।
ऊँचे–ऊँचे महल बनाऊँ, बिच–बिच राखूँ बारी।
साँवरियाके दरसन पाऊँ, पहिर कुसुम्बी सारी।।४।।
म्हाँने चाकर राखो जी।
जोगी आया जोग करन कूँ, तप करने संन्यासी।
हरी–भजन कूँ साधू आये, बृन्दावन के वासी।।५।।
म्हाँने चाकर राखो जी।
मीरा के प्रभु गहिर गंभीरा, हृदे रहोजी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हों, जमुनाजी के तीरा।।६।।
म्हाँने चाकर राखो जी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

6

कालरूपी सर्प के मुँह से कलियुग के जीवों को छुड़ाने के लिए शुकदेवजी ने भागवत की कथा कही है। जिस वक्त शुकदेवजी परीक्षित को भागवत की कथा सुना रहे थे, उस समय देवगण अमृत लेकर आये। देवों ने कहा कि राजा को हम स्वर्ग का अमृत देंगे। आप हमें इस कथामृत का पान करावें। शुकदेवजी ने राजा से कहा–कथामृत पीना है या जो अमृत देवता लाए हैं, वह पीना है ? परीक्षित ने पूछा–देवों का लाया अमृत पीने में क्या लाभ है? शुकदेवजी ने राजा को समझाया कि स्वर्ग का अमृत पीने से स्वर्ग-सुख मिलता है। इस अमृत से पुण्य का क्षय होता है, पर पाप का क्षय नहीं होता। कथामृत के पान से तो पापों का नाश होता है। स्वर्ग के अमृत से कथामृत श्रेष्ठ है।

परीक्षित ने कहा कि स्वर्ग का अमृत नहीं - मुझे तो कथामृत का ही पान करना है।

ऐसा कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है जो सात दिनों में मुक्ति दिलावे। भागवत की कथा सुप्त ज्ञान–वैराग्य को जाग्रत करती है और भक्तिरस को उत्पन्न करती है।

वक्ता शुकदेवजी सा अवधूत और श्रोता परीक्षित के जैसा अधिकारी होवे, तो सात दिनों में मुक्ति मिलती है।

तुकाराम महाराज को लेने के लिए विमान आया। उन्होंने पत्नी से कहा कि मेरे साथ चलो, तुम्हें प्रभु के दर्शन कराऊँगा। पर पत्नी नहीं मानी। उसने कहा कि आप जाइये, मुझे संसार छोड़कर नहीं जाना है।

संसार का मोह छोड़ना कठिन है। वासना पर जब तक काबू नहीं आता, तब तक मुक्ति नहीं मिलती। कथा का एकाध सिद्धान्त भी यदि हृदय में बैठेगा, तो जीवन मधुर बनेगा।

वासना, भोग-विलास आदि बढ़ गये हैं, इसलिए संसार खारा जहर बन गया है।

कथा जीवन को सुधारती है। यदि कथा सुनने के पीछे जीवन में परिवर्तन न आये, तो समझ लो कि तुमने कथा ठीक समझी नहीं।

जीवन में जब तक संयम और सदाचार नहीं आता, तब तक पुस्तकों का ज्ञान भी कोई काम नहीं आता।

एक सेठ का पुत्र मर गया। सेठ को रोते देखकर ज्ञानी साधु ने ज्ञान दिया कि आत्मा तो अमर है, इसलिए तुम पुत्र की मृत्यु का शोक न करो।

कुछ समय बाद साधु की बकरी मर गई और साधु रोने लगा। तब सेठ ने कहा कि महाराज आप तो मुझे ज्ञान देते थे कि किसी के मरण का शोक नहीं करना चाहिये। अब आप रुदन क्यों करते हैं ? साधु ने कहा कि लड़का तुम्हारा था, मेरा नहीं। पर बकरी तो मेरी थी। इस प्रकार दूसरों को उपदेश देने वाला पांडित्य किसी लाभ अथवा काम का नहीं।

अपने प्रेम पात्रों को मनुष्य समय-समय पर बदलता रहता है, बचपन में माँ से। जरा बड़ा होने पर मित्र से। विवाह के बाद पत्नी से। इसके बाद पुत्र से। इसके बाद पैसे से प्रेम करता है। पर उसे सन्तोष या शांति नहीं मिलती। इसलिये प्रभु को प्रेम का पात्र बनाओ, जिससे प्रेम-पात्र बदलना न पड़े।

सत्कर्म जीवन-मरण के त्रास से छुड़ाता है। जीव स्वयं ही स्वयं का उद्धार करनेवाला होता है। दूसरे का सत्कर्म काम नहीं आता।

संत महात्माओं का दिया हुआ विवेकरूपी फल बुद्धि को अच्छा नहीं लगता।

जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों ही प्रभु की लीला है। क्रिया और लीला में अन्तर है। परमात्मा जो करता है,वह लीला है। जीव जो करता है, वह क्रिया है। क्रिया बन्धन रूप है, क्योंकि उसके पीछे करनेवाले का स्वार्थ, आसक्ति रहती है। ईश्वर में स्वार्थ अथवा अभिमान का स्पर्श भी नहीं होता। इसलिए जिस कार्य में कर्तव्य का अभिमान नहीं है, वह

लीला है। ईश्वर की लीला बन्धन से छुड़ाती है। जीवों को परमानन्द का दान करने हेतु प्रभु लीला करते हैं।

जगत् असत्य है, परमात्मा सत्य है। भूत-भविष्य और वर्तमान में जो एक रूप रहे, वह सत्य है। इसलिए व्यासजी ने कहा है कि दूसरे किसी देव का नहीं, हमें केवल सत्य का ही ध्यान करना चाहिये।

सुखी रहना है तो सत्यस्वरूप परमात्मा से प्रेम करो। मनुष्य का मोह खोटे सिक्के पर नहीं होता। उसी प्रकार इस असत्य जगत् में मोह न रखो।

घर में रहना पाप नहीं। घर मेरा है, इस भाव में पाप है। इसलिए विवेक से इस भाव को छोड़कर सच्चे घर-परमात्मा के घर का भाव रखते हुए, घर में रहो।

ईश्वर में ही सबका लय करो।

जिसका वीर्य स्थिर है, उसका प्राण स्थिर है। जिसका प्राण स्थिर है, उसका मन स्थिर है।

मनुष्य-मिलन में सुख है तो वियोग में कितना दुःख होगा? जो परमात्मा से मिलता है, उसे कभी वियोग सहना नहीं पड़ता।

जब मनुष्य मनुष्य को स्वार्थ बुद्धि से देखता है, तब उसका मन बिगड़ता है।

संसार का कोई भी पदार्थ ईश्वर से अलग कर देने पर सुन्दर नहीं लगेगा।

सृष्टि का सुधार करने की अपेक्षा यदि अपनी दृष्टि को सुधारोगे तो संसार के प्रत्येक पदार्थ में तुम्हें भगवान विराजे हुए दिखाई देंगे। पदार्थ में ब्रह्म के दर्शन करो।

किसी समय भी जड़ अथवा चेतन से द्रोह परमात्मा से द्रोह करने के जैसा है। तत्त्व की दृष्टि से विचार करोगे तो सभी भगवद्‌मय है।

ठाकुरजी को हमेशा साथ रखोगे, तो जहाँ जाओगे वहीं भक्ति कर सकोगे।

मत्सर करनेवाले का लोक और परलोक दोनों बिगड़ता है। मन में से मत्सर को निकालोगे तो 'मनमोहन' का मंगलस्वरूप मन में बसेगा।

किसी जीव के प्रति कुभाव रखोगे तो वह ईश्वर के प्रति कुभाव रखने के समान होगा। मनुष्य जब तक निर्विकार नहीं होता, तब तक उसका उद्धार नहीं होता। जैसी भावना दूसरों के लिए रखोगे, वैसी ही भावना तुम्हें भी मिलेगी। दूसरे के साथ बैर करनेवाला, अपने साथ भी बैर करता है।

परमात्मा की कथा बार-बार सुनोगे तो प्रभु के प्रति प्रेम जाग्रत होगा।

मन से किये 'मानस-दर्शन' का पुण्य लिखा है। मन से नारायण को प्रणाम करो। "जो बद्री जाता है, उसकी काया सुधर जाती है" - (जे जाय बद्री, तेनी काया सुधरी।)

संसार के विषयों को जब तक मन से नहीं हटाओगे तब तक सेवा में आनन्द नहीं मिलेगा। सेवा क्रिया में नहीं, भावना में है। जब परमात्मा की सेवा करोगे, तभी संसार के विषयों में प्रेम कम होगा।

धीरे-धीरे संसार के विषयों से मोह हटाओ। संसार को छोड़कर कहाँ जाओगे ? संसार को छोड़ने की जरूरत नहीं, संसार के विषयों से मोह हटाने की जरूरत है।

सबके द्रष्टा परमात्मा माया के कारण अदृश्य लगते हैं। शरीर से आत्मा भिन्न है-यह जानते तो सब हैं, पर अनुभव कितनों को होता है ? ज्ञान का अनुभव भक्ति से होता है।

समाधि बहिर्मुख इन्द्रियों को अन्तर्मुख करने में सहायक होती है। ईश्वर के साथ एकाकार होना, ईश्वर में लीन होना समाधि है।

ज्ञानी ललाट में दृष्टि स्थिर करते हैं और वहाँ ब्रह्म का दर्शन करते हैं। वैष्णव हृदय में श्रीकृष्ण का दर्शन करते हैं।

वैष्णव तो दया के सागर होते हैं। उनमें अभिमान का स्पर्श भी नहीं होता।

वैष्णव और महावैष्णव में भेद है। जो ठाकुरजी की सेवा करते हैं, वे वैष्णव हैं। पर जिनके सम्पर्क में आने पर भक्ति का रंग लग जाता है, वे महावैष्णव हैं।

मंदिर में दर्शन करने जाओ तो मन से बालक बनकर जाओ। संतों का नियम है कि वैष्णवभक्त मिले तो सत्संग करें, अन्यथा मौन रहें।

संत दुर्लभ हैं, पर उनका अभाव नहीं है। एकाधिक सती स्त्री और संत प्रत्येक ग्राम में रहते हैं। इसलिए पाप की वृद्धि होने पर भी पृथ्वी टिकी हुई है।

जिस प्रकार लोभी के जीवन का लक्ष्य पैसा है, उसी प्रकार वैष्णव के जीवन का लक्ष्य परमात्मा है।

सनातन धर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है। सदाचार नींव है और सद्विचार इमारत है। जिनके आचार-विचार शुद्ध हैं, उनके अन्तर में कलि कभी प्रवेश नहीं करता।

प्रेम में ऐसी शक्ति है कि निराकार साकार बनता है। जीव को प्रतिष्ठा की भूख होवे और संसार प्रतिष्ठा देवे, तो शान्ति नहीं मिलती। जब ईश्वर मान देता है, तब भूख मिटती है।

जो ईश्वर पर सब कुछ छोड़ देता है, उसकी चिन्ता प्रभु स्वयं करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्।।

7

सद्गुरुतत्त्व और गुरुतत्त्व एक ही हैं। जिसकी प्रत्येक क्रिया से ज्ञान अर्थात् बोध होवे, वह सद्गुरु है। ईश्वर देशकाल की उपाधि से परे है। परमात्मा सार्वदेशिक और सर्वकालिक है।

सद्गुरु जब प्रवचन करते हैं, तभी उपदेश देते हों – ऐसा नहीं है। उनके मौन में भी उपदेश है। सन्त नहीं मानते कि भक्ति का काल निर्धारित किया जावे। वे तो हमेशा भक्ति में लीन रहते हैं।

सब समय और सब स्थान में जो परमात्मा का अनुभव करता है, वह सद्गुरु है।

सब वस्तुएँ सुलभ हैं, पर सद्गुरु दुर्लभ है। शुकदेवजी राजा परीक्षित को परमानन्द का दान करने के लिए गए थे। गुरु निरपेक्ष थे। अतएव उन्होंने कहा कि मुझे जो मिला है, वही मैं देने को आया हूँ।

महापुरुषों ने कहा है कि ईश्वर ने संसार को ऐसा बनाया है कि दुःख पाने पर भी मनुष्य संसार को नहीं छोड़ सकता। सद्गुरु जीव को समझाकर संसार छुड़ाते हैं। सद्गुरु शिष्य को समझाते हैं कि संसार "अपूर्ण" है।

तीनों देव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश-एक एक काम करते हैं। पर सद्गुरु तीनों काम करते हैं। सद्गुरु के मिलने पर शिष्य का नया जन्म होता है। किसी सिद्ध महापुरुष की कृपा होने पर उसका दूसरा ही जीवन बन जाता है।

मन में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं। मन स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार का होता है। स्थूल मन कथा में होवे तो सूक्ष्म मन कदाचित् दुकान में रहता है।

मन का स्थूल मल साधन से जाता है। पर सूक्ष्म मल तो सद्गुरु की कृपा से ही जाता है। माता-पिता से जो शरीर मिलता है, वह पवित्र नहीं है। पर सद्गुरु से जो देह मिलती है, वह न स्त्री है और न पुरुष। वह तो "परम पवित्र" है।

सद्शिष्य को जब तक परमात्मा के दर्शन नहीं हो जाते, तब तक सद्गुरु को चैन नहीं पड़ती। वे तब तक यही समझते रहते हैं कि मैं देनदार

हूँ। शिष्य का श्रेय, कल्याण करना मेरा कर्तव्य है। यह सम्बन्ध अलौकिक होता है।

पिता के प्रेम में थोड़ा स्वार्थ रहता है कि वृद्धावस्था में पुत्र मेरी सेवा करेगा। पर गुरु-शिष्य के सम्बन्ध में स्वार्थ की भावना नहीं होती, केवल शिष्य के कल्याण की भावना होती है।

सतोगुण में निद्रा कम आती है। सन्त तीन-चार घण्टे से अधिक नहीं सोते। तमोगुण अधिक होता है तो ऊँघ बहुत आती है। तेल, मिर्च, खटाई, मिठाई छोड़ देने पर ऊँघ आनी कम हो जाती है।

सात्त्विक आहार और संयम से सत्त्वगुण बढ़ता है। सर्प निरपराध को नहीं डसता। पूर्वजन्म का जिसका अपराध होता है, उसी को डसता है। पर मनुष्य तो निरपराधी को भी काटता है।

पूर्वजन्म के अपराध से सर्प शिष्य को डसने आया। शिष्य के कल्याण के लिए गुरु ने सर्प से कहा कि मेरे को डस लो। सर्प ने कहा कि मेरा बैर तुम्हारे साथ नहीं है। जिसके साथ बैर है, उसे ही डसूँगा। अन्त में सर्प ने शिष्य का रक्त माँगा। गुरु ने चाकू से रक्त निकाल कर सर्प को दे दिया। बाद में जड़ी-बूटी से घाव को ठीक कर दिया।

क्या किसी ने कभी सुना है कि किसी पिता ने स्वयं को पुत्र के बदले सर्प को सौंप दिया ?

सद्गुरु जब कृपा करते हैं तब परमात्मा में आत्मा को लीन कराते हैं। अधिकार सिद्ध होने के बाद ही सद्गुरु मिलते हैं।

तुकाराम महाराज को स्वप्न में सद्गुरु मिले। उन्होंने विट्ठल से प्रार्थना की कि मुझे सच्चे सन्त का दर्शन कराओ।

अधिकार सिद्ध होने पर सद्गुरु स्वयं खोजते आते हैं, बिना चेष्टा के ही मिलते हैं।

मंत्रदीक्षा से स्पर्शदीक्षा श्रेष्ठ है। मस्तक पर ब्रह्मनिष्ठ का हाथ फिरने से परमात्मा के दर्शन होते हैं।

भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान को सुधारोगे तो भविष्य सुधरेगा।

तुमने सोचा भी नहीं है, ऐसी अनेक कठिनाइयाँ आयेंगी। लक्ष्यच्युत न

होने के संकल्प को पूर्ण रूप से दृढ़ करो और सावधान रहो। संसार–समुद्र की मौज ही तो मनुष्य को अटकाने वाली है।

अन्त समय में क्या होगा, यह कहा नहीं जा सकता। इसलिये जब शरीर ठीक होवे, तभी सत्कर्म करो। काल तो सबको सन्देश भेजता है, पर मनुष्य उसे समझ नहीं पाता। जन्म के समय तुम्हारे दाँत नहीं थे। जब दाँत गिर जाएँ, तो समझो कि खबर आ गयी है। जब दाँत गिर जाएँ तो मन को समझाओ कि अब दूध–भात खाकर भगवान का भजन करो।

आकाश में वसिष्ठ तारे के पास जिसे अरुंधती का तारा न दिखे, समझना चाहिये कि उसकी मृत्यु बीस दिनों में होगी।

डॉक्टर पर नहीं, भागवत पर विश्वास करो।

नाद में मन का लय करो। अंतर में बराबर नाद होता रहता है। ताली भी नादब्रह्म का स्वरूप है। भीतर हमेशा 'ॐ' की ध्वनि होती रहती है। प्रवृत्ति के अन्तर्मुख होने पर भीतर होने वाला प्रणव का नाद सुनाई पड़ता है।

कानों को अंगुली से बन्द करने पर प्रणव–नाद नहीं सुने, तो समझना चाहिये कि आठ दिन में मृत्यु होगी।

मृत्युकाल के नजदीक आने पर घर छोड़कर तीर्थ में चले जाना चाहिये। घर में मन पवित्र नहीं रहता। भोग–भूमि में अखण्ड भक्ति नहीं होती।

कई बार मन में ऐसे संस्कारों का उदय होता है कि मन भटक जाता है। इसलिए मन को समझाना चाहिये, जिससे वह भटके नहीं।

साधु और ब्राह्मण से कोई प्रश्न पूछो, तो विवेक पूर्वक पूछो। वाणी में विनय और मिठास होने पर सन्त कृपा करके कुछ कहेंगे।

मनुष्य के जैसा कोई टेढ़ा नहीं, और भगवान के जैसा कोई सरल नहीं।

मन की मान्यता है कि जहाँ ममता है, वहाँ सुख है, और जहाँ ममता नहीं है, वहाँ दुःख है।

सबको भगवद्स्वरूप समझकर सबको यथाशक्ति सुखी करो।

भक्ति–मार्ग में सबके साथ प्रेम रखकर सबकी सेवा करो। भगवान ज्ञान देते हैं। पर जब कोई अपने स्वरूप को भूल जाता है, तो ज्ञान को खींच लेते हैं। भक्ति में तभी आनन्द आएगा, जब स्वधर्म का पालन करोगे।

बाजार का (पकवान) नहीं खाओ। पेट में पवित्र अन्न के जाने पर ही बुद्धि धीरे-धीरे सुधरेगी।

पेट जब माँगे तभी खाना–यह पुण्य है। सिर्फ जीभ के स्वाद के लिए खाना पाप है।

जिसको रूखा-सूखा अच्छा लगता है, वही ईश्वर की चाकरी कर सकता है।

ज्ञान का अभिमान अज्ञान से निकृष्ट है। महापुरुषों के आदर्शों को ध्यान में रखकर उन्हीं के अनुसार चलो।

जो दीन नहीं है, वह प्रभु में कभी लीन नहीं होता।

स्वप्न की सृष्टि और जाग्रत अवस्था की सृष्टि एक ही है। इनमें बहुत अन्तर नहीं है। स्वप्न झूठा होने पर भी सुख अथवा दुःख देता है। इसी प्रकार माया को भी समझना चाहिये।

अज्ञान के आनन्द को कोई बता नहीं सकता। अज्ञान किस प्रकार हुआ, यह बताया जा सकता है। अज्ञान का अन्त किस प्रकार होगा, यह भी बताया जा सकता है।

माया रूपी "नर्तकी" के भय से छुटकारा पाना है तो "नर्तकी" को उल्टो, "कीर्तन" करो।

जब तक स्वप्न दिखता है, तब तक अपने स्वरूप का अज्ञान रहता है। स्वप्नद्रष्टा स्वयं ही स्वप्न का साक्षी होता है। स्वप्नकाल में जो देखा जाता है, वह सत्य लगता है। स्वप्न में साक्षी या द्रष्टा भिन्न है। पर स्वप्न के अन्त होने पर तो एक ही हैं।

भगवान शंकर निवृत्ति धर्म के आचार्य हैं। इसलिए वे भस्म रमाते हैं। जीव मात्र को शिव का यह उपदेश है कि अन्त में तो इस शरीर को राख होना है।

परमात्मा को पदार्थ की नहीं, प्रेम की भूख है।

बत-रस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करत भौंहनि हसत, देन कहत नट जाय।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

8

भागवत का फल निष्कामभक्ति है। गोपियों की तरह निष्कामभक्ति करो। भक्ति से मुक्ति मिलती है। भक्ति के बिना वैराग्य और ज्ञान नहीं मिलता। ज्ञान बिना भक्ति अंधी है और बिना भक्ति का ज्ञान पंगु है। अपनी आदत और आवश्यकता को घटाने वाला मनुष्य ही प्रभु में लीन हो सकता है।

मत्सर अर्थात् द्वेष बड़े से बड़ा शत्रु है। मत्सर सभी को बंधन में डालता है। मत्सर ज्ञानी पुरुषों को और योगियों को भी फँसाता है।

योग–सिद्धि के प्रभाव से चांगदेव चौदह सौ वर्ष तक जीवित रहे। मृत्यु को उन्होंने चौदह बार पीछे हटाया। प्रतिष्ठा के मोह के कारण वे सिद्धियों में फँसे हुए थे। जब उन्होंने ज्ञानेश्वर के यश को सुना, तो उनके मन में आया कि यह बालक किस प्रकार मेरे से बढ़कर है ? उस समय ज्ञानेश्वर की उम्र सिर्फ सोलह वर्ष की थी। क्या सम्बोधन लिखा जाए, पत्र लिखते समय यह प्रश्न सामने आया। पूज्य तो लिखा नहीं जा सकता और ज्ञानी पुरुष को चिरंजीवी भी नहीं लिख सकते। इसलिए ज्ञानेश्वर के पास कोरा कागज ही भेज दिया।

मुक्ताबाई ने इसके जवाब में लिखा कि चौदह सौ वर्ष की आपकी उम्र हुई, पर कोरे ही रहे।

जवाब पढ़कर चांगदेव को लगा कि ज्ञानेश्वर से मिलना चाहिये। अपनी सिद्धि बताने के लिए वे बाघ पर चढ़कर मिलने गये।

ज्ञानदेव को सूचना मिली कि चांगदेव बाघ की सवारी पर मिलने आ रहे हैं। अतएव जिस दीवार पर वे स्वयं बैठे थे, उसे चलने को कहा। पत्थर की दीवार सामने स्वागत करने गई। यह देखकर चांगदेव का अभिमान नष्ट हो गया।

चांगदेव को ऐसा लगा कि मैंने तो हिंसक पशु को ही वशवर्ती किया है, पर ज्ञानेश्वर तो जड़ पदार्थों को भी चेतन बना रहा है। दोनों महापुरुषों का मिलन हुआ। चांगदेव ज्ञानेश्वर के शिष्य बन गये।

हठयोग से मन को वश में करने की अपेक्षा प्रेम से मन को वश में करो। योग से मन तो एकाग्र हो सकता है, पर हृदय में विशालता नहीं आती। भक्ति ही हृदय को विशाल बना सकती है।

महाभारत समाजशास्त्र है। समाज में एक भी ऐसा घर नहीं है, जहाँ महाभारत नहीं होवे, दुःशासन अथवा दुर्योधन नहीं होंवे।

धर्मराज जागृति की बात कहते हैं, दुर्योधन सुषुप्ति की। महापुरुषों के मन में कोई द्विविधा अथवा शंका पैदा होती है तो वे स्वयं के मन को पूछते हैं। उसके कारण को भीतर ही खोजते हैं।

जीव धृतराष्ट्र है। जिसकी आँख में काम है, वह अंधा है, धृतराष्ट्र है।

दुर्योधन अधर्म है। युधिष्ठिर धर्म का स्वरूप है। धर्म मनुष्य को प्रभु के पास ले जाता है। अधर्म मनुष्य को संसार की ओर ले जाता है। धर्म रूपी ईश्वर की शरण में जाने पर धर्म की विजय होती है, अधर्म का नाश होता है।

व्यसनी मनुष्य की ऐसी चाह होती है कि मेरे ऐसे व्यसन दूसरों को भी लग जाएँ। घर में सत्संग होता होवे तो घर नहीं छोड़ना, पर नहीं होवे तो घर में रहना नहीं। सगा भाई भी पाप में लिप्त होवे तो उसे दूर से ही नमस्कार करो। उसका साथ छोड़ दो।

जीवन और भोजन सादा होगा तो जीवन में आनन्द आएगा। जीभ में हड्डी नहीं है, इसलिए इसका नाम 'लूली' है। जीभ का सम्बन्ध मन के साथ है। वह मन को बिगाड़ती है।

ईश्वर को आमंत्रित करने की शक्ति जीव में है। परमात्मा की तृप्ति प्रेम से होती है। परमात्मा जीव को प्रेम देता है और उससे प्रेम की माँग भी करता है। यह प्रेम की महिमा है कि विदुरजी के इच्छा करने पर, सारे जगत् को खिलानेवाला, स्वयं विदुरजी के घर माँग कर खाता है।

पति-पत्नी के जीवन में काम गौण है। यह धर्म का सम्बन्ध है। इसलिए पत्नी कामपत्नी नहीं धर्मपत्नी कही गई है। पिता कन्यादान देते समय कहता है कि मेरी पुत्री धर्माचरण करने के लिए देता हूँ।

पाप के अतिशय बढ़ जाने पर वंश का नाश करने के लिए पुत्र रूप में पाप जन्म लेता है।

श्रीराम पुण्य के आकर (भण्डार) हैं - तेज के पुंज हैं। पुण्य की अत्यन्त वृद्धि होने पर प्रभु के रूप में पुण्य अवतरित होता है।

पापी पुत्र के साथ प्रेम करनेवाला पिता अंधा होता है। बड़ों की कठोर वाणी जो प्रेम से सहन करते हैं, वे एक दिन सुखी होते हैं।

कितने सहन तो करते हैं पर मन को दुःखी करके। सहनशक्ति के अभाव में ही दुःख आते हैं। इसलिए सहनशक्ति धारण करो, गम खाना सीखो।

गम खाने वाला तपस्वी है। गम शब्द को उलटने पर "मग" होगा। सिर्फ १२ महीने "मग" (मूँग) खाओगे तो गम खाना सीख लोगे। बहुत तेल-मिर्च खानेवाला गम नहीं खा सकता।

प्रत्येक घर में एक पुण्यात्मा होता है, जिसको लेकर लीला का विस्तार होता है। उस जीव के जाने पर घर की दशा बिगड़ जाती है।

सरस्वती सत्कर्म की, यमुनाजी भक्ति की और गंगाजी ज्ञान-स्वरूपा हैं। ज्ञान और वैराग्य बालक हैं।

सनातन धर्म में चार पदार्थों को दिव्य माना गया है–तुलसी, ब्रज–रज, गंगा और यमुना।

ब्रज में श्रीकृष्ण नंगे पाँव फिरते थे, इसलिए ब्रज-रज को पवित्र मानते हैं।

वैष्णव को प्रणाम की आकांक्षा नहीं होती। वह सबका वन्दन करता। जिसको बहुत प्रणाम किया जाता है, उसके पुण्यों का क्षय होता है। इसलिए हमेशा वन्दन करो, सब को प्रणाम करो। जो हृदय से प्रणाम करता है, वह प्रभु को अच्छा लगता है। मन का अभिमान मनुष्य को झुकने नहीं देता।

मनुष्य के शरीर में ३१/२ करोड़ रोम हैं। भगवान तो क्या मनुष्य भी जल्दी नहीं कहता कि तू हमारा है। मंदिर में जो एक का होता है, वह घर जाने के बाद दूसरे का हो जाता है।

सत्कर्म तो करो, पर सावधान रहो कि अभिमान न बढ़े। अभिमान को मारने के लिए दीन वाणी से सत्कर्म करो। सत्कर्म तो करे पर दूसरे जीवों को हल्का समझे, वह सत्कर्म किस काम का ? इसलिए हृदय से नम्र बनो। विधिपूर्वक कर्म करके भी जो यह कहे कि मैंने कुछ नहीं किया, उसी पर प्रभु कृपा करते हैं।

वैष्णव कभी भक्ति की समाप्ति नहीं करते। बिना ज्ञान और वैराग्य की भक्ति निष्फल है। ज्ञान और वैराग्य के साथ होने पर भक्ति सफल होती है।

समर्पण में सब कुछ न्योछावर किया जाता है। पुण्यों का समर्पण होता है, पापों का नहीं।

देवता भूल करने पर मनुष्य होते हैं। मनुष्य भूल करने पर पशु होता है। इसलिए देवता न बन सको तो कोई बात नहीं। पशु तो न बनो।

दूसरा जन्म किसी वैष्णव के घर में होवे, ऐसा काम करो।

जीव ईश्वर का स्मरण करे, यह साधारण भक्ति है।

भगवान जीव का स्मरण करें, यह उत्तम भक्ति है। भगवान जिसपर कृपा करते हैं, उसकी प्रत्येक इन्द्रिय को भक्ति रस मिलता है।

बाल्यावस्था में काम बुद्धि में सुषुप्त रहता है, पर युवावस्था में मनुष्य काम की मार खाता है।

अन्तर में प्रवेश होने पर काम पतन करके ही निकलता है। अतएव ऐसा संयमी जीवन बिताओ कि काम को प्रवेश करने का मौका भी न मिले।

घर में विषमताओं को न पनपने दो। विषमता से वासना और क्लेश की उत्पति होती है।

सायंकाल में प्रभु के समीप दीप-दान करोगे तो तुम्हारा अन्तर प्रकाशित होगा। सायंकाल में लक्ष्मीनारायण घर आते हैं।

सौभाग्यवती स्त्रियों को सायंकाल में भटकना उचित नहीं। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी संयमपूर्ण जीवन बिताते हैं तो तपस्वी पुत्र जन्म लेता है। सायंकाल में सत्कर्म अवश्य करना चाहिये। सायंकाल में काम बुद्धि में प्रवेश करता है और इसके बाद रात्रि में जागता है। बुद्धि के देवता सूर्यनारायण हैं। सायंकाल में वे अस्त हो जाते हैं।

धर्म की मर्यादा का बराबर पालन करोगे तो ज्ञान स्वयं प्रकट होगा। धर्म के ऊपर स्थित रहोगे, तो ज्ञान–गंगा को प्रकट होना ही होगा।

जिसका स्वभाव सुन्दर होता है, वह भगवान को प्रिय लगता है। जिसका शरीर सुन्दर होता है, वह भगवान की परवाह नहीं करता। स्वभाव किस प्रकार सुन्दर बने–अपकार का बदला उपकार से देने पर ही स्वभाव सुन्दर बनता है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

साधुजनों की रक्षा के लिए, दुष्टों का विनाश करने एवं धर्म की संस्थापना हेतु मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

9

धर्म के चार पाद हैं-सत्य, तप, दया और पवित्रता। इन चार चरणों में सत्य सर्वोपरि है। महाभारत में सत्यदेव राजा की कथा आती है। चंचला होने के कारण लक्ष्मी अमुक समय में जाएगी।

एक दिन सुबह जब सत्यदेव उठे, तो उन्होंने एक सुन्दर स्त्री को घर में-से निकलते देखा। राजा ने आश्चर्य से उस स्त्री से पूछा-आप कौन हैं? जवाब मिला-"मेरा नाम लक्ष्मी है। अब मैं इस घर से जा रही हूँ।" राजा ने कहा कि आप जा सकती हैं।

लक्ष्मीजी चली गईं। उसके पीछे एक सुन्दर पुरुष को बाहर जाते देखकर राजा ने पूछा-आप कौन हैं ? उत्तर मिला-"मेरा नाम दान है। लक्ष्मी के जाने के बाद आप दान नहीं कर सकेंगे, इसलिए मैं आपका घर छोड़ कर जा रहा हूँ।" राजा ने कहा कि आप भी जा सकते हैं।

इसके बाद तीसरा सदाचार और चौथा यश, पुरुष के रूप में बाहर आये। राजा के पूछने पर लक्ष्मी तथा दान के साथ जाने की कहने पर राजा ने दोनों को जाने दिया। पर जब पाँचवाँ पुरुष सत्य जाने लगा, तो राजा ने हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहा-मैंने तो आपका कभी त्याग नहीं किया। आप मुझ को किस लिये छोड़ रहे हैं ? आपके लिये मैंने लक्ष्मी, दान आदि सबका त्याग किया है। मैं आपको नहीं जाने दूँगा-आपके जाने पर मेरा सब कुछ चला जाएगा और सत्य रह गया। सत्य घर में से बाहर नहीं आया, अतएव गयी हुई लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश भी वापस आये। सत्य ही सर्वस्व है। सत्य के बिना सदाचार, दान, कीर्ति, लक्ष्मी किस काम के? इसलिए घबराओ नहीं। जहाँ सत्य होगा, वहाँ इन सभी को रहना ही पड़ेगा।

सत्य परमात्मा है। सत्य प्रभु से भिन्न नहीं है। सत्य के द्वारा मनुष्य नारायण के निकट जा सकता है।

परमात्मा के लिए दुःख सहन करना तप है। प्रभु की आराधना करना तप है। दुःख सहन करते हुए जो प्रभु का भजन करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। वाणी और व्यवहार में संयमरूप तप का पालन करो।

कलियुग में पवित्रता नहीं है। कपड़ों पर लगा हुआ दाग छूट सकता है, पर कलेजे में लगा दाग नहीं छूटता। इसलिए मरने के बाद जो साथ जाने वाला है, उस मन की शांति को अक्षुण्ण रखो। मन को स्वच्छ रखो।

'दया' के लिए श्रुति में निर्देश है कि जो सिर्फ अपने लिये पका कर खाता है, वह अन्न नहीं खाता, पाप पका कर खाता है।

सत्य, तप, दया और पवित्रता धर्म के चार अंग हैं। ये चारों तत्त्व जिसमें होवें, वह धर्मी है।

कलियुग में दान प्रधान है। दया अर्थात् दान के एक पाँव के ऊपर धर्म टिका हुआ है। राजा परीक्षित ने जब कलियुग से राज्य को छोड़कर जाने को कहा तो कलि ने पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? मेरे रहने को जगह देवें। तब परीक्षित ने उसे रहने के लिए चार स्थान बताए-जुआ, हिंसा, स्त्री-संग और मदिरा। इन चार स्थानों में असत्य, निर्दयता, आसक्ति और मद ये चार अधर्म रहते हैं। इनसे कलि को संतोष नहीं हुआ। उसने कहा कि ये सब तो गन्दी जगह हैं, एक स्थान मेरे को और देवें। राजा ने उसे स्वर्ण में रहने की अनुमति दी, और इस प्रकार स्वर्ण के माध्यम से कलि को राजा में प्रवेश करने का अवसर मिला।

ज्ञान बहुतों में होता है, पर ज्ञान की दृढ़ता सब में नहीं होती। प्रारब्ध के अनुसार जो मिलना है, वही मिलेगा। फिर भी मनुष्य झूठ बोलता है। संपत्ति, संतान और लक्ष्मी तो प्रारब्ध प्रमाण से मिलती है। जितना लिखा है, उतना तो मिलेगा ही।

मृत्यु के समय मनुष्य में सयानापन आता है, पर वह किस काम का?

यदि प्रभु तुम्हें अधिक देवें, तो पाप न करो। पाप की निवृत्ति होने पर ही इन्द्रियों को भक्तिरस का सुख मिलता है। इन्द्रियाँ भोग का नहीं, भक्ति का साधन हैं। इसलिए इन्द्रियाँ नहीं बिगड़ें, इसका ध्यान रखो। जितेन्द्रिय होने की कोशिश करो।

सम्पत्ति होने पर यदि संतोष नहीं होवे तो सम्पत्ति दुःख का कॉरण बन जाती है। संतोषी व्यक्ति को जब सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, तो वह उसका उपयोग विवेक से करता है।

कितनों को तो खाने को नहीं मिलता, इसलिए दुःखी रहते हैं। पर कितने अधिक खाकर अजीर्ण से पीड़ित भी रहते हैं।

"लक्ष्मी" माता है। उसका उपय़ोग तो किया जा सकता है, पर उसका स्वामी नहीं बना जा सकता। उसका उपभोग नहीं करना है।

"लक्ष्मी" मेरी है, ऐसा समझने वाले को लक्ष्मी मारती है। पर लक्ष्मी नारायण की है, ऐसा समझने वाले का उद्धार करती है।

वृद्धावस्था में क्रोध और काम तो शांत होते हैं, पर लोभ बढ़ता है। लोभ पाप का जनक है। पाप बढ़ने पर लोग दुःखी होते हैं।

लोभ को संतोष से जीतो। मनुष्य जब सोचता है कि मुझ को कम मिला है, तभी पाप करता है। इसलिए जो भी मिला है, वह मेरी योग्यता से अधिक है-ऐसा समझकर संतोष रखो, जिससे पाप न करना पड़े।

जो संतोष से लोभ को मारता है, उसकी बुद्धि भगवान में स्थिर रहती है।

मन को शुद्ध करने के लिए सत्कर्म जरूरी है।

मन से पूछो कि मुझे जो मिला है-क्या मैं उसके योग्य हूँ ? इस पर जब विचार करोगे तो लगेगा कि जीव ने बहुत पाप किये हैं।

जीव जब देता है, तो उसके देने में संकोच रहता है। पर ईश्वर जब देता है तो उसमें कोई संकोच-सीमा नहीं रहती।

जीव और ईश्वर का सम्बन्ध पिता–पुत्र का है, जो प्राप्त हुआ है वह कर्म से नहीं, प्रभु-कृपा से मिला है, ऐसा बार–बार विचार करोगे तो प्रभु की कृपा होगी।

संकल्प करो कि अर्थोपार्जन के लिए प्रयत्न तो करना है, पर पाप से नहीं कमाना है।

अर्थ अमृत है, पर कभी-कभी वह जहर भी बन जाता है। जो नीतिं से आए और जिसका उपयोग रीति से हो, वह अर्थ अमृत है। पर अनीति से अर्जित धन जहर हो जाता है।

यदि धर्म की मर्यादा न रहे तो धन अनर्थ करता है। धन साधन है, धर्म साध्य है।

जहाँ लोभ होता है, वहाँ दम्भ होता है। भक्ति वे ही कर सकते हैं, जो काम सुख का त्याग करते हैं। आँखों में प्रेम, दया और प्रभु के स्वरूप को रखो। काम का प्रवेश न होने दो।

शरीर घड़े के समान है। इसमें नौ छेद हैं। कितनों का ज्ञान तो आँख और कान के मार्ग से निकल जाता है।

मनुष्य में ज्ञान-भक्ति थोड़े समय के लिए रहती है। फिर वह चली जाती है। ज्ञान प्राप्त करना सरल है, पर उसे टिका पाना कठिन है। लोग दुकान में भगवान का चित्र लगाते हैं, पर झूठ भी बोलते हैं।

मन को कोई अच्छा काम नहीं मिले तो उसमें बुरे विचार उठते हैं। यदि मन वश में रहेगा तो मित्र का काम देगा, अन्यथा शत्रु है।

शरीर जब तक खूब न थक जाए, तब तक सत्कर्म करते रहो। आराम हराम है। शरीर, इन्द्रिय, मन और प्राण-सबको सत्कर्म में लगाये रखो।

संसार को देखने से आँखें सफल नहीं होतीं, प्रभु के दर्शन से सफल होती हैं। जब इन्द्रियों को भगवद्-स्पर्श मिलता है, तभी इन्द्रियाँ सफल होती हैं।

जगत् "कार्य" है। ईश्वर "कारण" है। कारण का गुण कार्य में आता है।

जब तक संसार सुन्दर लगता है, भक्ति नहीं हो सकती। फूल कुम्हलाता है, इसी प्रकार जगत् का सौन्दर्य भी मुरझा जाता है। श्रीकृष्ण नित्य सुन्दर हैं, जो कभी कुम्हलाते नहीं।

शृंगार न भी करो तो भगवान सुन्दर हैं। मनुष्य का-संसार का-सौन्दर्य तो सविकार है, क्षणिक है। एक को जो सुन्दर लगता है, दूसरे को वह सुन्दर नहीं लगता। आँख की रुचि के अनुसार हर एक के लिए सौन्दर्य का रूप भिन्न-भिन्न है। विकारी सौन्दर्य सच्चा सौन्दर्य नहीं है।

परमात्मा से लौकिक सुख की चाहना करनेवाला अज्ञानी है।

भगवान से यदि कोई दूसरी वस्तु माँगोगे तो उसे देकर वे छिटक जायेंगे। इसलिए उनसे तो, स्वयं उन्हें छोड़कर अन्य वस्तु की याचना ही न करो।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

10

जिसका समग्र जीवन धन-संचय तथा कुटुम्ब के भरण-पोषण में बीतता है, मृत्यु के समय उसे वे बहुत याद आते हैं। एक वृद्ध बीमार हुए। उनका जीवन द्रव्य-संचय में ही बीता था। मृत्यु के समय पुत्रों ने वृद्ध से **"श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव"** कहने के लिए कहा। परन्तु वृद्ध के मुँह से भगवान का नाम नहीं निकला। वृद्ध की दृष्टि आँगन में गयी। वहाँ उसने बछड़े को बुहारी खाते देखा (गुजरात में बुहारी तृण की बनती है)। वृद्ध से यह देखा नहीं गया। वृद्ध बोल नहीं सकते थे, किन्तु बोलने के प्रयास में टूटे हुये शब्द वा.........सा वा.........सा उनके मुँह से निकले।

लड़कों ने समझा वृद्ध 'वासुदेव' बोलना चाहते हैं पर बोला नहीं जाता। उनके एक पुत्र को ऐसा लगा कि पिताजी ने कभी ईश्वर का नाम लिया नहीं था। पर वा.........सा शब्द से ऐसा लगता है कि उन्होंने अपने पास कुछ छिपा रखा है, जिसके विषय में कुछ कहना चाहते हैं। इसलिये पुत्रों ने वैद्य को बुलाया। वैद्य ने कहा कि इसकी दवा तो है। यदि १०००) रुपये खर्च करो तो दवा के प्रभाव से कुछ समय बोल सकते हैं। लड़कों को छिपा धन पाने की आशा थी, इसलिए उन्होंने स्वीकार कर लिया। वैद्य ने पुड़िया दी और लड़कों को पिताजी क्या कहते हैं, यह सुनने की बेचैनी हो गई। दवा का असर होते ही वृद्ध ने कहा-तुम सब मेरी ओर क्या देख रहे हो ? आँगन में बछड़ा बुहारी खा रहा है। बुहारी शब्द कहते-कहते वृद्ध की मृत्यु हो गयी।

माया में मन रमा रहे तो अन्तिम घड़ी में भगवान का नाम नहीं लिया जा सकता। माया अति प्रबल है, इसलिए इससे सम्भल कर चलो।

बिना ध्यान के प्रभु का साक्षात्कार नहीं होता। जैसा ध्यान पैसे में लगाते हो, वैसा ही प्रभु में लगाओ।

एकनाथ महाराज के पास एक भक्त आया। उसने कहा–मैं जब भी आपको देखता हूँ, आपका मन प्रभु में स्थिर रहता है। पर मेरा मन तो जरा देर भी स्थिर नहीं रहता। मन को स्थिर करने का कोई उपाय बतावें। एकनाथ महाराज ने कहा कि मैं यह तुम्हें पीछे बताऊँगा। पर मुझ को लगता है कि कुछ समय बाद ही तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। सात दिनों के बाद तुम आना, इसके बाद मैं तुम्हें समझाऊँगा।

मृत्यु का नाम सुनकर भक्त के तो होश उड़ गये। घर आकर उसने अपनी सम्पत्ति, माल–मत्ता पुत्र को सौंप दिया। दान और प्रभु का ध्यान करने में लग गया । सात दिन बीतने के बाद महाराज के पास आया। महाराज ने पूछा–सात दिनों में तुमने क्या किया ? तुम्हारे हाथ से कितना पाप हुआ ? इस पर भक्त ने जवाब दिया कि मरण–भय से सब कुछ छोड़ कर मैं सात दिन ईश्वर के ध्यान में रहा हूँ।

एकनाथ महाराज हँस कर बोले- मेरी स्थिरता का रहस्य यही है। मृत्यु के भय से मैं हमेशा ईश्वर का स्मरण करता रहता हूँ। इसलिए मेरा मन जगत् के विषयों को छोड़कर परमात्मा में ही लगा रहता है।

पनिहारिनें पानी के घड़े सिर पर लिऐ हुये घर की ओर जाती हैं। एक दूसरे से बातें करती रहती हैं, पर उनका ध्यान हमेशा सिर पर रखे घड़ों पर ही रहता है। इसी प्रकार संसार का व्यवहार ईश्वर स्मरण करते हुए करो। व्यवहार करो, पर मन परमात्मा में रखो। परमात्मा में मन तन्मय न होवे तो कोई बात नहीं, पर इस बात की तसल्ली रहे कि मन संसार के साथ तो तन्मय नहीं होता।

संसार का स्मरण दुःख है और विस्मरण सुख है।

वर राजा के विवाह (लगन) हेतु प्रस्थान करने के समय से ही गृहस्थाश्रम बिगड़ता है। ११ घोड़ों (इन्द्रियों) पर नियंत्रण रखने के लिये गृहस्थाश्रम है।

अकेला पुरुष और अकेली नारी भक्ति कर नहीं सकते। परस्पर का सहयोग ही भक्ति देता है।

संसार सागर में स्त्री नाव है और पुरुष नाविक है।

मनुष्य के लिए मर्यादा के भीतर ही सुख-भोग उचित है। मर्यादा के बाहर जाने पर वह रोगी हो जाता है।

विवाह का प्रयोजन स्त्री-संग नहीं, सत्संग है। सत्संग भक्ति में सहयोगी है।

एक स्त्री अथवा एक पुरुष में ही काम भाव मर्यादित रखने वाले ब्रह्मचारी हैं।

विवाह पाप नहीं, पुण्य है। इसलिये विवाह के समय वर-कन्या को सावधान किया जाता है।

सावधान होकर जो विवाह सम्पन्न होता है, उसका गृहस्थाश्रम संन्यास से अधिक दीप्त होता है।

पति में जिस स्त्री को परमात्मा के दर्शन नहीं होते, उसे मन्दिर की मूर्ति में भी प्रभु के दर्शन नहीं होते।

स्त्री हृदय स्नेहिल है। पुरुष में विवेक है। स्त्री-पुरुष मिलकर एक तत्त्व बनते हैं। स्नेह और विवेक के मिलने पर भक्तितत्त्व का उदय होता है। स्त्री-पुरुष का पवित्र धर्म- सम्बन्ध काम का विनाश कर, परमात्मा से मिला सकता है।

विलासी जीवन प्रभु को अच्छा नहीं लगता। इसलिए विलासी के यहाँ सन्त जन्म नहीं लेते। वे तो संयमी सरल सात्त्विक जीवन बितानेवाले के यहाँ ही जन्म लेते हैं।

योग्यतानुसार परमात्मा जीव को सांसारिक आनन्द भी देते हैं।

हृदय-मन्दिर में भगवान के विराजमान रहने के कारण वैष्णव के मानसिक संकल्प की जानकारी भगवान को पहले ही हो जाती है। वे उसकी पूर्व व्यवस्था भी करते हैं।

मन इतना निर्बल है कि सुन्दर वस्तु देखकर ललचता है और उसके पीछे दौड़ता है।

पैसा कमाना कठिन नहीं, उसका उपयोग करना कठिन है। पैसे का सदुपयोग हो तो वह सुख देता है और दुरुपयोग होने पर दुःख देता है। जीभ के स्वाद को तृप्त करने में आँखें बिगड़ती हैं। पैसा खर्च करके कोई अन्धेरे में बैठे तो वह सयाना है या मूर्ख है ? बाहर भी अन्धेरा और भीतर

भी अन्धेरा। बताओ फिल्म देखने के बाद मन बिगड़ता है या मनोरंजन होता है ?

ऐसा कोई जीव नहीं कि शृंगार रस देखने के पश्चात उसके विचार शान्त-शुद्ध रह सकें।

शरीर जैसी गन्दी वस्तु दूसरी नहीं है। भोग से वासना की तृप्ति नहीं होती। त्याग करने से वासनाओं का विनाश नहीं होता। भक्ति और प्रेम में रंगने पर ही धीरे-धीरे वासनाओं का शमन होता है।

सुख भोगने की इच्छा ही दुःख है। केवल ईश्वर आनन्द रूप है। आनन्द की कोई भाषा नहीं है।

संसार के सुख-दुःख पदार्थों से ही होते हैं। जो स्वयं में ही आनन्द-आत्मानन्द का अनुभव करते हैं, वे किसी दिन दुःखी नहीं होते।

जब तक दीपक में तेल रहता है, तब तक वह जलता है। इसी प्रकार जब तक मन में संसार है, तब तक ही संसार रहेगा। जब संसार मन में से निकल जाता है, तो मन शान्त हो जाता है।

निद्रा में मन जैसा शान्त रहता है, जाग्रत अवस्था में भी उसी प्रकार निर्विषयी बने तो मनुष्य को मुक्ति मिले। संसार कहीं जाने का नहीं, उसे तो मन में-से निकालना है। आनन्द जड़ पदार्थों में नहीं है। परमात्मा ही आनन्दरूप है। तुम्हारे में उन्हीं का निवास है, ऐसा समझो।

जो संसार को भूलकर परमात्मा के स्वरूप में लीन होता है, उसे आनन्द ही आनन्द, अखण्डआनन्द की प्राप्ति होती है।

दूसरे से आनन्द लेने की इच्छा न रखो। संसार के विषय तुम्हारे में प्रवेश न कर सकें, यह सावधानी बरतो। संसार के सुख भोगते समय परमात्मा को साथ रखो।

जन्म और मरण शरीर के धर्म हैं। आत्मा का कभी मरण नहीं होता।

व्यवहार में मनुष्य कहा करता है कि मेरा मन बिगड़ा है। सुख-दुःख का स्पर्श आत्मा को नहीं होता। आत्मा तो शुद्ध और चैतन्य है, किन्तु मन को हुए सुख-दुःख को, मन आत्मा पर लादा (आरोपित) करता रहता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

11

“जो नहीं होवे, उसका भास करावे” वह ‘माया’ है। “या” का अर्थ गति है। “मा” निषेधात्मक है। माया के तीन भेद हैं, स्वमोहिका, स्वजनमोहिका और विमुखजनमोहिका।

आत्मस्वरूप का विस्मरण माया है। माया जीव को मारती है। माया अर्थात् अज्ञान। अज्ञान का तुरन्त नाश आवश्यक है।

सुदामा ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि मुझे माया का दर्शन करावें। कहा कि मुझे आपकी माया देखनी है। श्रीकृष्ण ने जवाब दिया-पीछे बताऊँगा। अभी तो हम गोमती में स्नान करने को चलें। श्रीकृष्ण ने स्नान करके पीताम्बर पहिनना शुरु किया और सुदामा ने जल में डुबकी लगायी। तभी प्रभु ने अपनी माया का विस्तार किया।

सुदामा ने देखा कि नदी में बाढ़ आ गयी है और वे बहाव में पड़ गये हैं। बहते-बहते वे एक घाट के पास आये और वहाँ बाहर निकल कर पास के गाँव की तरफ चले। गाँव के नजदीक आने पर एक हथिनी दौड़ती हुई आयी और उसने सुदामा के गले में माला डाल दी। लोगों ने उन्हें बताया कि गाँव की प्रथा के अनुसार राजा के मर जाने पर हथिनी जिसे हार पहिनावे, वही राजा होता है। अब आप हमारे राजा हैं। उनका राज्याभिषेक हुआ और राजकन्या के साथ धूमधाम से उनका विवाह हुआ। इस प्रकार १२ वर्ष तक उन्होंने राज्य किया और उनके सन्तानें भी हुईं

रानी बीमार हुई और उसकी मृत्यु हो गयी। सुदामा करुण विलाप करने लगे। गाँव के लोगों ने उन्हें समझाकर कहा-“आप रोओ मत। गाँव की प्रथा के अनुसार आपको रानी के साथ जाना है। रानी के शव के साथ आपको भी जलाया जाएगा।” यह सुनकर रानी के लिए रोना तो बन्द हो गया और ‘मेरा मरण होगा’ यह जानकर सुदामा रोने लगे।

जब रानी की चिता नदी के किनारे चुनी गई तो उन्होंने कहा–मुझे एक बार स्नान कर लेने दो। राजा भाग न जाए इसलिये सैनिक चारों तरफ खड़े हो गये। भय से आतंकित सुदामाजी ने प्रभु का स्मरण करते हुए डुबकी लगायी। जब बाहर आये तो देखा श्रीकृष्ण अभी पीताम्बर पहिन रहे हैं। सुदामा को रोते देखकर पूछा–रोते क्यों हो ?

सुदामा ने कहा–सैनिक मेरे पीछे पड़े हुए हैं। रानी की मृत्यु हो गयी है। वे सब कहाँ गये ? यह सब क्या था ? मेरी समझ में नहीं आता। प्रभु मुस्कराते हुए बोले–तुमने माया के दर्शन की इच्छा प्रकट की थी, यह वही मेरी माया थी।

माया की दो शक्तियाँ हैं। एक आवरण शक्ति, जो प्रभु को ढक कर रखती है, और दूसरी विक्षेप शक्ति जो ईश्वर की सत्ता में जगत् का भास कराती है। इसमें जो नहीं होता, वह तो दिखता है और जो है, वह दिखता नहीं।

विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा कि दुर्योधन पापी है। यह तुम्हारा पुत्र नहीं, पापी है। इसलिये इसका साथ छोड़ दो। लड़का यदि दुराचारी हो तो माँ–बाप की दुर्गति होती है। यह तुम्हारे वंश का विनाश करेगा। माया के आवरण से आवृत्त धृतराष्ट्र ने जवाब दिया कि भाई तुम्हारी बात तो सत्य हैं, पर दुर्योधन जब मेरे पास आता है, तो मुझे यह ज्ञान रहता नहीं।

अहंकार और ममता के कारण ही मन सुखी या दुःखी होता है। जहाँ समता है, वहाँ मन दुःखी नहीं होता। पर जहाँ समता नहीं है, वहाँ मन दुःखी होता है-ये सब मन की कल्पनाएँ हैं।

चाह रखकर प्रेम न करो। चाह से दुःख और अशान्ति का जन्म होता है। यदि चाह रखनी ही है तो प्रभु-प्रेम की चाह करो।

आज जो अच्छा लगता है, वह कल खराब लगेगा। जगत् में कोई अच्छा नहीं है। मन का स्वभाव पानी की तरह है। पानी जिस प्रकार नीचे की ओर बहता है, उसी प्रकार मन की भी अधोगति है।

जिस प्रकार यन्त्र की सहायता से पानी ऊपर चढ़ता है, उसी प्रकार यदि किसी मंत्र से मन का साथ हो जाए तो मन ऊपर चढ़ता है। मन को किसी मन्त्र के साथ बाँधो। किसी मंत्र के साथ प्रेम करो।

निर्गुण निराकार भगवान केशव दीपक की तरह हैं। वे प्रकाश देते हैं, किसी का दुःख अथवा अज्ञान दूर नहीं करते। अनुग्रह और निग्रह भी नहीं करते।

सांसारिक वासनाओं में फँसने पर मन बिगड़ता है। अलौकिक वासना में लगने पर मन सुधरता है। काम काँटा है, काँटे को निकालने के लिये तो काँटा ही चाहिये। आसक्ति से बिगड़ा हुआ मन भक्ति से सुधरता है।

जब प्रभु -मिलन की चाह खूब प्रबल होगी, तो सांसारिक वासनाएँ स्वयं खत्म हो जाएँगी।

बिना क्रिया शक्ति के इच्छा शक्ति शुद्ध नहीं होती। सत्संग करने से मन सुधरता है। सन्त उपदेश नहीं करें, तो भी उनके हृदय से जानने और समझने योग्य भाव प्रकट होते हैं।

आज अनेक पाखंडी सन्त मिलते हैं, पर सच्चे सन्त भी संसार में हैं। सन्त को खोजने की अपेक्षा सन्त बनने की कोशिश करोगे; तो सन्त तुम्हारे घर आएँगे।

सन्तों के लक्षणों में सर्वप्रथम लक्षण तितिक्षा–अर्थात् सहन शक्ति है। मन को ईश्वर से दूर नहीं होने दो।

सन्त की परीक्षा प्रवचनों से नहीं, मनोवृत्ति से होती है।

साधारण मनुष्य का मन क्षण-क्षण में बदलता है। पर सन्त का मन हर एक स्थिति में एक समान शान्त रहता है। दुःख में भी उसकी शान्ति भंग नहीं होती।

जो प्रभु के नाम में स्थित रहते हैं, अशान्ति उनका स्पर्श नहीं करती।

मन को शान्त रखना महान् पुण्य है। प्रभु के नाम और ध्यान से ही मन शान्त रहेगा।

शरीर जहाँ कहीं भी रहे, मन को प्रभु के नाम में रखो।

समझकर सांसारिक सुख का त्याग करनेवाले को विशुद्ध शान्ति मिलती है।

सन्त संसार के विषयों को बुद्धिपूर्वक छोड़ते हैं। सन्तों को संसार की बातें अच्छी नहीं लगती।

सन्त जब बोलते हैं, तब इस तरह बोलते हैं कि सुननेवाले को शान्ति मिलती है।

बार-बार भगवान की कथा सुनने से उसमें प्रेम होता है। इस प्रकार प्रेमभक्ति का व्यसन लगता है और पीछे प्रभु के नाम और दर्शन के बिना जीव को शान्ति नहीं मिलती। जब इस प्रकार की स्थिति प्राप्त होती है, तो जीव "मुक्त" होता है।

भक्ति का अर्थ होता है-ईश्वर से विभक्त न रहो। ईश्वर को जाग्रत रखो।

सच्चा आनन्द योग में नहीं, भक्ति में है।

प्रत्येक इन्द्रिय के अधिदेव, अधिभूत और अध्यात्म तीन देवता होते हैं। कितने भक्ति तो करते हैं पर धर्माचरण नहीं करते। यह प्रभु को अच्छा नहीं लगता।

प्रभु ने जिसका जो धर्म निश्चित किया है, उस धर्म का पालन करते हुए जो भक्ति करता है, प्रभु उससे प्रसन्न रहते हैं।

जिसको परमात्मा का ध्यान करना हो, उसे अति उपवास और अति भोजन त्यागना चाहिये।

ध्यान में जिसे देह की विस्मृति होवे, उसी को प्रभु के दर्शन होते हैं। दूसरे की सम्पत्ति का चिन्तन मत करो। उसके चिन्तन से मन बिगड़ता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

12

तुम्हारा जीवन पवित्र बनेगा तो परमात्मा बिना आमंत्रण के तुम्हारे घर पधारेंगे। जो परमात्मा का हो उसके यहाँ ही प्रभु पधारते हैं। इसलिए ऐसा कीर्तन करो कि प्रभु तुम्हारे घर आकर द्वार खटखटावें।

विदुरजी भगवान के निष्काम भक्त थे। वे पाप से दूर रहते थे। दुर्योधन ने भरी सभा में "दासी-पुत्र" कह कर उनका अपमान किया। विदुरजी ने उसे सहन किया। अपमान से उन्हें दुःख भी नहीं हुआ और क्रोध भी नहीं आया। उन्होंने गम खाई।

विदुरजी ने विचार किया। दुर्योधन मेरा अपमान नहीं करता। उसके अन्दर बैठे हुये अन्तर्यामी मुझ को चेतावनी देते हैं कि तुम कौरवों का कुसंग छोड़ दो। निन्दा में भी विदुरजी ने सार-तत्त्व निकाला।

विदुरजी यात्रा के लिये चले गये। ३६ वर्ष यात्रा में व्यतीत करने के बाद पति-पत्नी वन में कुटिया बनाकर तपस्वी जीवन बिताने लगे। भगवान की भक्ति करने लगे। स्वयं भगवान हमारे घर पधारें, ऐसी भावना से उन्होंने १२ वर्ष प्रभु की आराधना की।

द्वारका से प्रभु सन्धि करवाने हस्तिनापुर आये। धृतराष्ट्र और दुर्योधन ने स्वागत की सुन्दर तैयारी कर रखी थी। छप्पन प्रकार के व्यंजन तैयार करवाये थे।

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को समझाया कि मैं दूत होकर आया हूँ। तुम और पाण्डव भाई-भाई हो। समझौता कर लो, इसी में कल्याण है। तब दुर्योधन ने अपमान करके कहा था कि भीख माँगने से राज्य नहीं मिलता। प्रभु का प्रयास निष्फल हुआ।

धृतराष्ट्र ने प्रभु से भोजन करने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि यदि तुम्हारे घर का भोजन करूँगा,तो मेरी बुद्धि बिगड़ेगी। प्रभु को विदुरजी की प्रतीक्षा का स्मरण हुआ।

भगवान तुरन्त विदुरजी की कुटिया में गये। विदुरजी और सुलभा द्वार बन्द करके प्रभु के कीर्तन में लीन थे। भगवान ने द्वार खटखटाये। दरवाजा खोलते ही चतुर्भुज नारायण के दर्शन कर दम्पति पवित्र हुए। हर्षातिरेक में स्वाग़त करना अथवा आसन देना भी भूल गये। भगवान स्वयं कुश का आसन लेकर बैठ गये। भगवान ने कहा–विदुरजी भूख लगी है। विदुरजी ने पूछा–आप दुर्योधन के यहाँ से भोजन करके नहीं आये ? भगवान ने कहा – काका, जिस घर का आप नहीं खाते, क्या मैं उस घर का खाऊँगा?

विदुर दम्पति मात्र शाक का भोजन करते थे। उनके मन में द्विविधा हो गई। पर भगवान ने स्वयं चूल्हे पर से भाजी उतार कर खाई। मिठास वस्तु में नहीं है, मिठास प्रेम में है। लौकिक सुखों को त्याग कर विदुर दम्पति ने प्रभु की आराधना की थी, अतएव प्रभु उनका द्वारा खटखटाते हुए आये।

मनुष्य को संग का रंग लगता है। सदाचार, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में जो अपने से आगे होवे, ऐसे महापुरुषों का आदर्श दृष्टि में रखो।

चोरी और व्यभिचार की गणना महापातकों में है। जिस प्रकार विदुरजी ने धृतराष्ट्र को छोड़ दिया था, उसी प्रकार सगा भाई या पुत्र भी यदि यह पाप करे, तो उसे त्याग देना चाहिये। धृतराष्ट्र ने विदुरजी के पास बहुत-सा द्रव्य भेजा, पर उन्होंने उसे अस्वीकार किया तथा उबली हुई भाजी में संतोष मानकर प्रभु का भजन किया।

पापी के घर का अन्न भजन में विघ्न उत्पन्न करता है। यह समझ कर विदुरजी ने तप किया और तप से बल प्राप्त किया।

दूसरे अनेक पाप क्षम्य हैं। पर चोरी, व्यभिचार क्षम्य नहीं हैं। कितने ही चोर जेल में रहते हैं और कितने ही महलों में रहते हैं। बिना मेहनत के दूसरे की कमाई पचाने वाले भी चोर हैं। दुर्योधन चोर था।

मेहनत से अधिक नफा लेने वाला चोर है।

माता-पिता की सेवा न करने वाला चोर है।

आँगन में आये हुये भिखारी को बिना दिये खाने वाला चोर है।

अग्नि में आहुति दिये बिना खाने वाला चोर है।

घर में अनेक प्रकार की हिंसा होती रहती है। अग्नि में आहुति देने से पापों का क्षय होता है।

अन्न से मन बनता है। पवित्र रसोई बनाकर भगवान को अर्पण करके भोजन करो। भगवान का हास अति मंगलमय है।

ध्यान में देह का भान नहीं रहता। देह-भान की जब विस्मृति होती है, तो ब्रह्म सम्बन्ध होता है।

जो भक्त देह-भान भूलता है, वह भक्त सर्वश्रेष्ठ है।

प्रभु न्यायाधीश का कार्य करते हैं। वे तो पाप-पुण्य के अनुसार सुख-दुःख देते हैं। पर कोई सन्त कृपा करे तो मनुष्य का जीवन दिव्य बनता है।

शरीर थकता जाता है, पर मन और वासना तो युवा ही रहती हैं।

पुत्र वृद्ध पिता की नहीं, पैसे की सेवा करते हैं। पैसा न हो तो दुर्दशा का अन्त नहीं रहता।

सम्बन्ध से कोई नहीं आता, सब लेने के लिये आते हैं। इसलिये "हाय हाय" नहीं "हरि-हरि" कहो।

पुण्यवान को भक्ति का मार्ग पहले से दिखता है।

मृत्यु-पथ पर धर्म ही साथ रहता है।

गर्भवास और नर्कवास दोनों समान हैं। गर्भ में नरक के-से दुःख भोगने पड़ते हैं, तब जीव प्रार्थना करता है।

भगवान कहते हैं कि तूने मुझे छोड़ दिया। जीव इसके बाद प्रभु को नहीं भूलने का वचन देता है। अतिशय दुःख में जीव को गर्भ में जो ज्ञान रहता है, बाहर आने पर वह ज्ञान जीव भूल जाता है।

भले ही राजा के घर में जन्म हो, पर गर्भ-दुःख तो भोगना ही पड़ता है।

जीव प्रेम करता है-पहले माँ के साथ, पीछे खिलौनों के साथ, पीछे पुस्तकों के साथ, पीछे अर्थ के साथ और पीछे स्त्री के साथ। इसके बाद स्त्री का पक्ष लेकर माँ-बाप के सामने खड़ा होता है। किन्तु स्त्री में भी उसका प्रेम स्थायी नहीं रहता ।

सयानापन आता तो है, पर शरीर के दुर्बल हो जाने के बाद। उस समय भक्ति के लिये समय नहीं रहता। इसलिये परमात्मा का ध्यान करो, चिन्तन करो।

जब स्वार्थ आता है तो मन बिगड़ता है। स्वार्थ में विवेक नहीं रहता। जिस प्रकार फूलों की माला में फूलों के अलग-अलग रहने पर भी डोरी एक होती है, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न शरीर में आत्मा एक ही है। जो सद्भाव से रहते हैं, उनका मन पवित्र रहता है। जो कुभाव से रहते हैं, उनका मन बिगड़ता है। जो तुम्हें गाली दे, उसे भी सद्भाव से देखो। सद्भाव का अर्थ है – "ईश्वर का भाव"।

किसी के लिये यदि तुम बुरा विचार करोगे, तो वह भी तुम्हारे लिये बुरा विचार करेगा।

किसी जड़ वस्तु के लिये भी कुभाव न रखो।

सद्भाव से किया हुआ अधर्म भी धर्म बन जाता है। बुरे भाव से किया हुआ धर्म भी अधर्म बन जाता है। कोई कटु शब्द कहे तो भूल जाओ। कर्कश वाणी हृदय में नहीं रखो। ऐसा करोगे तो हृदय जलेगा।

लकड़ी की चोट भूल जाती है। शस्त्र की चोट भी भूल जाती है, पर शब्दों की चोट नहीं भूलती। इसलिये किसी को कर्कश वाणी से नहीं मारो।

जिस काम के करने में शंका हो, वह काम न करो। ऐसा समझो कि प्रभु को यह काम अच्छा नहीं लगता।

तुम्हारे आँगन में शत्रु भी आवें तो उससे "जय श्रीकृष्ण" कहो। दूसरा कुछ नहीं बने तो ठंडा पानी ही पिलाओ।

काहू के बल धरम को, काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुंअरि के, सोवत पाँव पसार।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

13

जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो उसके अन्तर में अवतार अर्थात् परमात्मा का आविर्भाव होता है। परमात्मा का अवतार बाहर होवे, इसमें विशेष लाभ नहीं है।

भीतर भगवान हैं, इसलिए मनुष्य बोलता है। एक-एक इन्द्रिय को भगवान ही शक्ति देता है। भागवत में भगवान के एक-एक अवतार की कथा है। भागवत में मुख्य कथा श्रीकृष्ण की है, पर श्रीकृष्ण का प्राकट्य अन्त में होता है।

ईश्वर भीतर विराजते हैं, इसका अनुभव करो।

कपिल ज्ञान-स्वरूप हैं। वराह यज्ञ-स्वरूप हैं। परमात्मा जिससे प्रसन्न हों, ऐसा कोई भी कार्य यज्ञ है। प्रभु प्रसन्न हुए या नहीं, यह जानने की भी युक्ति है। यदि सत्कर्म करने के बाद मन प्रफुल्लित हो, तो समझो कि प्रभु प्रसन्न हुए। यदि मन चंचल अथवा विकारयुक्त होवे, तो समझना चाहिये कि प्रभु प्रसन्न नहीं हुए। ज्ञानी पुरुष हृदय से सरल होते हैं, उनके व्यवहार में हेरा-फेरी नहीं होती। वे कपट अथवा दंभ नहीं करते।

ज्ञानी पुरुष हृदय के भावों को छिपाकर, किसी को संशय में डालने की इच्छा नहीं करते।

ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि यह शरीर दुःखों का कारण है, मैं तो शुद्ध चेतन हूँ। इसलिये न तो वे किसी का मोह रखते हैं और न शरीर के आराम का ख्याल रखते हैं। वे शरीर को कष्ट भी देते हैं और ज्ञानसिद्धि के लिए अहंकार का भी त्याग करते हैं। वे समझते हैं कि मैं चेतन हूँ, इससे उनमें पूर्ण वैराग्य आता है।

भगवान शिव ज्ञानस्वरूप हैं, श्रीकृष्ण प्रेमस्वरूप हैं।

जिनको जगत् की जरूरत है, उसे शिवजी की जरूरत नहीं। जगत् जिसका त्याग करता है, उसे शिव अपनाते हैं। जहर से सब घबराते हैं, पर शिव जहर का पान करते हैं।

वैष्णव प्रेमी होते हैं। ज्ञानी त्यागी होते हैं। ज्ञानी सब वस्तुओं का मोह छोड़ते हैं, जबकि वैष्णव सबके साथ प्रेम करते हैं।

जिसे भक्ति-मार्ग में आगे बढ़ना होवे, वह भगवान श्रीकृष्ण के आदर्श को अन्तर में रखे। भक्ति-मार्ग में समर्पण है, जबकि ज्ञान-मार्ग में त्याग है। वैष्णव आरम्भ में चरणारविन्द का ध्यान करते हैं। चरण अतिशय कोमल हैं। चरण में स्वस्तिक का चिह्न है। उर्ध्व रेखा है। कमल का चिह्न है। चरणों से कमल की सुगंध निकलती है। इसलिये इसे चरण-कमल कहते हैं।

पीछे मुखारविन्द का ध्यान करो। जीव जब ठाकुरजी का ध्यान करता है, तब प्रभु को आनन्द होता है। प्रभु को लगता है कि अलग पड़ा हुआ मेरा बालक मुझसे मिलने आ रहा है।

जब ईश्वर की कृपा होती है, तभी जीव के प्रयत्न सफल होते हैं।

भगवान जीव से कहते हैं-"एक दिन जब तुम छिपे हुए थे, तब मैं तुझे खोजने के लिए आया था।" जगत् की उत्पत्ति के समय भगवान एक-एक जीव को खोजते हैं। पीछे कन्हैया छिप जाता है, जगत् को उसे खोजना रहता है। प्रभु कहते हैं कि अब तुम मेरे को खोजो। जीव ईश्वर को खोजने का प्रयत्न करता है।

प्रभु के साथ प्रेम करोगे, प्रभु के नाम के साथ प्रेम करोगे तो एक दिन प्रभु मिलेंगे।

नाम स्वतंत्र है, रूप परतन्त्र है। जो नाम के साथ प्रेम करते हैं, नाम में तन्मय हो जाते हैं, उन्हें ईश्वर अवश्य दर्शन देते हैं।

जब तक नाम में प्रेम पैदा नहीं होता, तब तक संसार की आसक्ति नहीं छूटती।

श्रीमद्भागवत् श्री भगवान का नामरूप है।

पैसों से तुम मनुष्य को खुश कर सकते हो, प्रभु को नहीं। वे तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं।

धन अर्थात् दान देना सरल है। नाम-स्मरण कठिन है। बिना जप के जीवन सुधरता नहीं। बिना जप के आसक्तिं का नाश होता नहीं।

बहुत जानकारी काम में नहीं आती। जो जीवन में उतारोगे, वही काम आएगा।

भगवान वैकुण्ठ में रहते हैं अथवा पाताल लोक में रहते हैं, इससे अपने को कोई लाभ नहीं। प्रभु हाथ में आवें, तभी लाभ है।

ज्ञान जब क्रियात्मक होवे, तभी भगवद्–स्मरण बनता है, मनुष्य नम्र बनता है।

जो ज्ञान को जीवन में उतारते हैं, उन्हें जीवन में चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है।

प्रकृति के आठ भेद हैं। व्यवहार में प्रकृति का उपयोग तो करो, पर उसके गुलाम न बनो।

माया का उपयोग करते समय ध्यान रखो कि मैं श्रीकृष्ण का दास हूँ। मेरे को प्रभु से मिलना है। यह ध्यान में रख कर माया का उपयोग करो।

अष्टधा प्रकृति के वशीभूत होने पर जीव बन्धन में पड़ता है।

मनुष्य के दुःखों का कारण स्वभाव है। स्वभाव सुधरता नहीं। अनेकों बार मनुष्य यह समझता है कि मेरा स्वभाव ठीक नहीं है। इतना होने पर भी वह स्वभाव को सुधार नहीं पाता।

काम प्रकरण के ग्यारह अध्याय बताये हैं। ग्यारह स्थानों में काम रहता है। काम को जो मार सके, उसे ही श्रीकृष्ण मिलते हैं।

दस इन्द्रियों में रहनेवाला काम ही रावण है। रावण सबको परास्त करता है।

काम से क्रोध उत्पन्न होता है। तुम्हें बिगाड़ने वाला तुम्हारा शत्रु तुम्हारे मन में ही बैठा है। ग्यारह इन्द्रियों में काम का निवास है। इसलिये प्रत्येक इन्द्रिय को भक्ति में लगाओ।

अर्थ के पाँच प्रकरण हैं। अर्थ अर्थात् धन। पाँच साधनों से अर्थ की प्राप्ति होती है।

धर्म प्रकरण के सात अध्याय हैं। सत्कर्म करने वाले के मन में शुद्ध भावना न होवे तो कर्म सिद्ध नहीं होते। भाव को महत्त्व दिया गया है, क्रिया को नहीं।

सत्यनारायण की पूजा धर्म है। पर चोर जब पूजा करता है तो

सत्यनारायण की पूजा नहीं होती। स्वयं की चोरी प्रकट न होवे, इसलिये पूजा करता है। यदि भाव से सत्यनारायण की पूजा करे तो चोरी करने ही नहीं जाए।

सब जीवों के साथ मेरा प्रेम है। किसी के साथ मेरा विरोध नहीं-ऐसा संकल्प करने से सत्कर्म का प्रारम्भ होता है।

सद्भाव से सत्कर्म सफल होते हैं, कुभाव से कुकर्म बन जाते हैं। अनेक बार अविवेक से धर्म भी अधर्म हो जाता है।

सबमें जो सद्भावना रखते हैं, वे महापुरुष हैं। सबमें सद्भावना रखने से प्रभु प्रसन्न होते हैं।

जीव के लिए धर्म की मर्यादा है, ईश्वर के लिए नहीं।

द्रोणाचार्य ब्राह्मण थे। उनके लिये युद्ध धर्म नहीं था। युद्ध करना पड़े तो धर्म के लिये करे, पर वे अधर्म के लिये लड़ रहे थे। इसलिये उनके कल्याण के लिये-अर्थात् द्रोणाचार्य पाप-कर्म से विरत हों, युधिष्ठिर ने उनसे कहा था – "अश्वत्थामा मारा गया।"

धर्म की गति अति सूक्ष्म है।

संसार के पीछे चलोगे तो दुःखी होवोगे। संसार को कोई खुश नहीं कर सका। परमात्मा को प्रसन्न करोगे, तो जगत् तुम्हारे पीछे-पीछे आवेगा।

परमात्मा को जो प्रसन्न करता है, शत्रु भी उसका मित्र बन जाता है।

चरन-कमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरी लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई।।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बन्दौं तेहि पाई।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

14

तीनों गुणों से जो परे हैं, वह अत्रि है। जो हमेशा ब्रह्म-सम्बन्ध में रहता है, वह अत्रि है। महापुरुष प्रारम्भ में ब्रह्म-सम्बन्ध करते हैं, इसके करने के लिये अत्रि होना पड़ता है।

अंगूठा (अंगुष्ठ) ब्रह्म है, अंगूठे के पास की अंगुली जीव है। तर्जनी के पास की अंगुली रजोगुण है। तर्जनी अंगुली सत्त्वगुण है। इन तीनों गुणों में जीव लिप्त हो गया है।

शरीर में जो तमोगुण है, उसे रजोगुण से मारना चाहिये और रजोगुण को सत्त्वगुण से। रजोगुण से काम और क्रोध की उत्पत्ति होती है। सत्कर्मों से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है। सत्त्वगुण भी बन्धन है। इसलिए सत्त्वगुण को सत्त्वगुण से मारो। सत्त्वगुण को त्याग कर निर्गुण बनो, गुणातीत बनो।

जीव जब अत्रि होता है तो बुद्धि अनसूया बनती है। मत्सरहीन बुद्धि ही अनसूया है।

नारदजी ने पार्वतीजी, लक्ष्मीजी और सावित्रीजी के पास अनसूया के पातिव्रत्य की महिमा का बखान किया। तीनों देवियों ने शिव, विष्णु और ब्रह्माजी से अनसूयाजी के पातिव्रत्य को खण्डित करने का दुराग्रह किया। शंकरजी ने कहा कि दूसरे को गड्ढे में गिराने की इच्छा करनेवाला स्वयं गड्ढे में गिरता है, इसलिये ऐसा करना उचित नहीं है। किन्तु स्त्री-हठ के सामने लाचार होकर तीनों देव सती अनसूयाजी के आश्रम में गये और भिक्षा की याचना की।

अनसूयाजी जब भिक्षा देने आई तो तीनों ने कहा कि जब आप नग्न होकर भिक्षा देंगी, तभी लेंगे। सती को लगा कि इस रीति से भिक्षा देने पर तो पातिव्रत्य की मर्यादा टूटेगी, और भिक्षा नहीं देने से अतिथि को निराश लौटाने का पाप लगेगा।

अनसूया के मन में कोई वासना नहीं थी, इसलिये ध्यान करके उन्होंने तीनों पर पानी के छींटे मारे। तीनों बालक बन गये। अधिक समय बीत जाने पर तीनों सती अपने स्वामियों को खोजने निकलीं। रास्ते में नारदजी मिले। उन्होंने बताया कि उनके स्वामी बालक बनकर पालने में झूल रहे हैं। अब देवियाँ आश्रम में आईं। इतने में अत्रि ऋषि भी आ गये। बालकों को देखकर उन्होंने अनसूया से उनका परिचय पूछा। सती ने जवाब दिया कि ये मेरे बालक हैं और ये आयी हुई स्त्रियाँ उनकी पत्नियाँ हैं। पतिव्रता स्त्रियों को वे कभी कष्ट नहीं देवेंगी, यह वचन लेकर उनके पतियों को उन्हें वापस दिया। तीनों देव प्रकट होकर बोले कि हम तुम्हारे घर में बालक रूप में खेले हैं। इसलिये संयुक्त रूप में तीनों देव गुरु दत्तात्रेय के स्वरूप में अनसूयाजी के घर में प्रकट हुए।

ब्रह्म-सम्बन्ध हमेशा टिकाये रखना कठिन है।

कुम्भकर्ण तमोगुण, रावण रजोगुण और विभीषण सत्त्वगुण है।

निद्रा, आलस्य और प्रमाद तमोगुण के लक्षण हैं। जब सत्त्वगुण में अभिमान आता है, तब सत्त्वगुण का नाश होता है। इसलिये हमें अभिमान से बचाने के लिये प्रभु ही सब कुछ करते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

जिस बुद्धि में मत्सर न हो, वह अनसूया है। मत्सर ऐसा दुर्गुण है कि इससे घर में क्लेश आता है। किसी को सुखी देखकर तुम्हारे मन में दुःख होवे, तो समझो कि मन में मत्सर बैठा है। मत्सर मनुष्य का पतन करता है।

अत्रि ऋषि को प्रभु ने अपना-स्वयं का दान किया था। इसलिये नाम पड़ा-दत्तात्रेय भगवान।

धर्म की १३ पत्नियाँ हैं। एक पत्नी श्रद्धा है, जिसका पुत्र शुभ है।

धर्म की दूसरी पत्नी मैत्री है। किसी जीव के साथ विरोध न करो। धर्म की अन्तिम पत्नी मूर्ति है।

बद्रिनारायण की माता मूर्ति देवी हैं और पिता धर्म हैं। उनसे नर-नारायण का जन्म हुआ है।

कलियुग में कोई सद्गुरु न मिले तो शिवजी को सद्गुरु मानो। भगवान शंकर जगत् के गुरु हैं। प्रयाग तीर्थों का राजा है।

एक देवता को मानना ही अनन्य भक्ति हो, ऐसा नहीं है। इष्टदेव एक रखो पर दूसरे देवों को भी वन्दन करो। उनका आदर करो।

वाणी के पति शिव हैं।

मनुष्य को दग्ध करने के लिये श्मशान गाँव के बाहर होता है। पर मत्सर को जलाने का श्मशान तो घर ही है।

शिव श्मशान-वासी हैं, अतएव जगत्-वासी हैं।

थोड़े को भी जो बहुत माने वह शिव है। अधिक मिलने पर भी, जो थोड़ा समझे वह जीव है।

शिवजी के दरबार में भूत-प्रेतों को प्रवेश मिलता है, राम के दरबार में नहीं। वहाँ तो हनुमानजी गदा लिये खड़े हैं। रामजी के दरबार में तो वे ही जीव जा सकते हैं, जो रामजी की मर्यादा का पालन करते हैं।

शंकर अति-सरल हैं, जो माँगो वही देते हैं।

शंकर बाबा किसी से सेवा नहीं लेते। इसी तरह वैष्णव भी किसी से सेवा नहीं करवाते, वे तो सेवा करते हैं। जब तक तुम्हारे में शक्ति रहे, घर में भी किसी से सेवा नहीं करवाओ।

माँगना मरने के समान है। जो माँगे उसे थोड़ा अवश्य दो। बिना दिये लौटा देना भी मरने के समान है।

श्रीकृष्ण सरल हैं, पर कपटी भी हैं। कन्हैया कहता है कि कोई कपट करता है तो मुझे भी कपट करना अच्छा लगता है।

सुदामा के साथ श्रीकृष्ण सरल थे, पर द्रोणाचार्य के साथ वे कपटी-टेढ़े बने। वे बांकेबिहारी हैं।

भगवान शंकर यज्ञपति हैं, देवताओं को आहुति देने के पश्चात् जो बचता है, वह सब शंकर को दिया जाता है।

रुद्र का जन्म होता है, पर महारुद्र तो अनादि हैं। ज्ञान-गंगा को मस्तक पर धारण करो। गंगाजी को बुद्धि में रखो।

शिव की निन्दा नहीं करो। शिव निन्दा करनेवाला मुक्त नहीं होता। वह कामी होता है। उसे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति नहीं होती। वह संसार में सिर रगड़ता रह जाएगा।

जिस यज्ञ में शिवपूजन नहीं होता, उसमें श्रीकृष्ण नहीं जाते।

शिवजी का अपमान करने के लिये दक्ष ने यज्ञ किया था।

ब्राह्मणों ने बिना शिव का पूजन किये यज्ञ करने से मना किया था। दक्ष के यज्ञ में विष्णु और ब्रह्मा नहीं गये थे।

हरि और हर एक हैं। इसी तरह भगवान और भक्त भी एक हैं।

शिवजी कहते हैं कि मैं शरीर से किसी को नहीं मिलता, पर मन से सबसे मिलता हूँ। मैं हमेशा अन्तर्यामी नारायण का ध्यान करता हूँ, इसलिये सबको मन से मिलता हूँ।

जहाँ प्रेम हो, वहाँ आमन्त्रण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। बिना आमन्त्रण के जाने से प्रेम बढ़ता है। जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ आमन्त्रण मिलने पर भी जाना ठीक नहीं है।

ज्ञानी पुरुष देह को मान नहीं देते। वे तो नारायण का मान करते हैं, नारायण का ध्यान करते हैं।

यज्ञ मण्डप में ईशानकोण में शिवजी की स्थापना की जाती है। ब्रह्म विद्या अर्थात् कृष्णभक्ति शिवकृपा बिना नहीं मिलती।

जो दूसरों को रुलाता है, उसके अपने रोने का प्रसंग भी उपस्थित हो जाता है, इसलिये किसी को रुलाओ नहीं।

जीव का शिव के साथ जब सम्बन्ध होता है, तब जीव कृतार्थ हो जाता है।

जो शरीर का बहुत शृंगार करता है, वह किसी भी समय नीति के मार्ग से विचलित हो सकता है। महापुरुष तो धैर्य, तप और समता से मन का शृंगार करते हैं।

अनेकों प्रवृत्तियों में लिप्त मनुष्य को भजनानन्द, ब्रह्मानन्द नहीं मिलता। थोड़ी निवृत्ति लेकर आनन्द-प्राप्ति का अनुभव करो।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

15

मनुष्य जन्म तपश्चर्या के लिये है। अज्ञान के कारण पशु तप नहीं कर सकता। स्वर्ग में देवता पुण्य भोग तो करते हैं, पर नये पुण्य अर्जित नहीं कर सकते। मानव शरीर से ही पाप और पुण्य संभव हैं। यदि मनुष्य चूहे की हत्या करे, तो पाप का भागी होता है। बिल्ली जब चूहे को मारती है, तो उसे पाप नहीं लगता। पशु से पाप-पुण्य नहीं बनते। रोज समझ कर थोड़ा तप करो। तप से पापों का नाश होता है। थोड़ा कष्ट उठाकर भजन करना ही तप है।

सम्पत्ति केवल भोग के लिये नहीं, उपयोग के लिये भी है।

चन्द्रमा और सूर्य मन और बुद्धि के अधिष्ठाता देव हैं।

"तप" का उलटा शब्द "पत्" है। जो तप नहीं करता उसका पतन होता है। महापुरुषों ने तप की व्याख्या अनेक प्रकार से की है। ब्रह्मचर्य, उपवास, ४-५ घंटे मौन रहकर जप करना-ये सब तप हैं। प्रत्येक तप में शरीर को कुछ न कुछ सहन करना पड़ता है।

सबमें सद्भाव रखना महान तप है। सद्भाव शब्द का अर्थ है- "ईश्वर का भाव"। ईश्वर केवल मन्दिर में ही नहीं हैं, वे तो सर्वत्र हैं।

जिसने तुम्हें बहुत दुःख दिया हो, उस जीव में भी ईश्वर-भाव रखो। सब में सद्भाव रखोगे, तो सारे जीव तुम्हारे में भी सद्भाव रखेंगे।

सृष्टि भावमय है। जिसकी जैसी दृष्टि होती है-सृष्टि उसके लिये वैसी ही है। किसी को सुख रूप में दिखती है, तो किसी को दुःख रूप में। इसलिये जिनके भीतर सद्भाव है, उन्हें जगत् सुखमय लगता है।

जैसी ध्वनि होगी, वैसी ही प्रतिध्वनि होगी। तुम जैसा भाव रखोगे, संसार भी तुम्हारे प्रति वैसा ही भाव रखेगा। "सब सुखी रहें"-ऐसा भाव रखने वाला स्वयं कभी दुःखी नहीं होता। किसी को सुखी बनाकर अथवा किसी को सुखी देखकर प्रसन्न रहो।

दुराग्रही दुःखी रहते हैं। प्रारब्ध के कारण ही जीव आग्रही बनता है, इससे दुःखी होता है।

भक्ति में "राग-द्वेष" नहीं होता। भक्ति में तो अनेक में एक के दर्शन होते हैं। अनन्य भक्ति का यह अर्थ नहीं है कि किसी दूसरे देव को नहीं माने। अनन्य भक्ति में स्त्री का दृष्टांत समझना चाहिये। स्त्री घर में ससुर, जेठ, देवर आदि सभी की सेवा तो करती है; पर लक्ष्य तो उसका अपना पति रहता है। यही भाव तुम इष्टदेव में रखो। दूसरे देवों को अपने इष्टदेव का अंश समझकर उनका भी वन्दन करो। उनका भी पूजन करो।

शरीर "पंचायतन" है। पंचतत्त्व के स्वामी पाँच देव हैं। पाँचों देवों की पूजा जरूरी है। ये देवता-गणपति, शिव, दुर्गा, सूर्यनारायण और भगवान श्रीकृष्ण हैं।

गणपति पूजन से विघ्न दूर होते हैं। शिव के पूजन से शिव ज्ञान देते हैं। समाधि में बैठे हुए शिव के रूप का ध्यान करने से वासनाओं का विनाश होता है। दुर्गा-पार्वती की पूजा करने से सम्पत्ति मिलती है। सूर्यनारायण के पूजन से आरोग्य की प्राप्ति होती है।

सूर्य के प्रकाश का उपयोग करनेवाला मनुष्य सूर्य का ऋणी है। सूर्योदय के पहले ही स्नान करो। फिर सूर्य को नमस्कार करो। दूसरे देवताओं का आह्वान तो भावना में करना पड़ता है, पर सूर्यनारायण तो प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। ये प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। सूर्यदेव बुद्धि के स्वामी हैं।

परमात्मा श्रीकृष्ण की सेवा अनिवार्य है। श्रीकृष्ण परम प्रेम देते हैं। जब तक हृदय प्रेम में पिघले नहीं, तभी तक विचारों का जन्म होता है। प्रेम-दान श्रीकृष्ण ही करते हैं।

अपने इष्टदेव को मध्य में स्थापित करो और दूसरे चारों देवों को चार दिशाओं में स्थापित करके नित्य पंच देवों की पूजा करो।

भक्ति में अनन्यता रखो। पर भक्ति में राग-द्वेष का प्रवेश नहीं होवे, इसकी सावधानी बरतो।

हम सभी "उत्तानपाद" हैं। पाद अर्थात् पैर। जिसका पैर नीचे है और मस्तक ऊपर है, ऐसा जीव जब गर्भ से बाहर आता है तो उसका मस्तक नीचे और पैर ऊपर की ओर हो जाते हैं।

जीवात्मा की दो पत्नियाँ हैं–सुरुचि और सुनीति। जीव को नीतिमय जीवन अच्छा नहीं लगता। उसे तो रुचिप्रिय जीवन पसन्द है।

मनुष्य अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखने में असमर्थ रहता है। इन्द्रियाँ जैसा भोग चाहती हैं, जीव उन्हें ही भोगता है।

सुनीति का पुत्र ध्रुव है। "ध्रुव" अर्थात् जिसका विनाश न होवे। नीति में रहकर जीवन बिताओगे तो स्थायी आनन्द की प्राप्ति होगी। भजनानन्द अविनाशी है।

सुरुचि का पुत्र उत्तम है। "उत्त" अर्थात् ईश्वर। "तम" शब्द का अर्थ है–अन्धकार अज्ञान। जो इन्द्रिय के अधीन रहता है, उसे किसी भी दिन परमात्मा का अनुभव नहीं होता।

जब तक दाद को खुजलाओगे, तभी तक सुख मिलेगा। पीछे रोग बढ़ेगा। यदि खुजलाओगे नहीं, तो आराम हो जाएगा। यही बात इन्द्रियों की है, उन्हें खुजलाओ नहीं।

जीवन की आवश्यकताओं का दमन विवेकपूर्वक करो।

विषयानन्द में प्रथम थोड़ा-सा सुख दिखता है, पर परिणाम दुःख है।

भजनानन्दी को प्रारम्भ में थोड़ा दुःख तो होगा, पर पीछे जिस आनन्द की प्राप्ति होगी, वह आत्मानन्द देवों को भी दुर्लभ है।

उत्तानपाद राजा की दो रानियों के दो पुत्र थे। राजा की चहेती रानी थी सुरुचि और अनचाही सुनीति।

सिंहासन पर बैठे उत्तानपाद राजा पुत्र उत्तम को खिला रहे हैं। इतने में ध्रुव आते हैं–उनका भी मन पिता की गोद में बैठने का होता है। वे दौड़कर पिता के पास जाते हैं और स्वयं को गोद में बैठाने का आग्रह करते हैं।

ध्रुव को गोद में बैठाने में सुरुचि बाधा देती है। कामान्ध राजा रानी की अवहेलना करने में असमर्थ है। रानी ध्रुव से कहती है कि यदि तुम्हारी इच्छा पिता की गोद में बैठने की है, तो मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करो और इसके लिये तप करो।

अपमान से रोता हुआ बालक अपनी माता के पास आता है और राजा की गोद में बैठने हेतु तप करने जाने को कहता है। माता समझाती है कि मैं पति को छोड़कर नहीं जाऊँगी। तू अकेला ही जा। माँ का आशीर्वाद लेकर ध्रुव जंगल में तपस्या करने जाता है।

मार्ग में नारदजी मिलते हैं। माता की सीख के अनुसार ध्रुव नारदजी का वन्दन करता है। नारदजी पूछते हैं-बेटा कहाँ जाते हो ? ध्रुवजी जवाब देते हैं-भगवान् का दर्शन करने के लिये। मेरी माँ ने बताया है कि सच्चे पिता तो नारायण ही हैं, इसलिये उनसे मिलने जा रहा हूँ।

ध्रुव की परीक्षा लेने के लिये नारदजी उन्हें बहुत समझाते हैं। पर पाँच वर्ष का बालक ध्रुव अपने निश्चय पर अडिग है। नारदजी यह जानकर बड़े प्रसन्न होते हैं और ध्रुव को मधुवन में जाने और तप करने को कहते हैं।

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"

महामंत्र के जप का उपदेश देते हैं। यह आशीर्वाद भी देते हैं कि छः महीने की अवधि में तुम्हें परमात्मा दर्शन देंगे।

मधुवन में आकर प्रथम दिवस ध्रुव ने उपवास किया। फिर एक आसन पर बैठकर ध्यान करने लगे। जब तक भगवान नहीं मिलेंगे, तब तक मैं नहीं उठूँगा, ऐसा निश्चय कर छः महीने तक प्रभु के ध्यान में रहे। भगवान नारायण ने प्रकट होकर ध्रुव को दर्शन दिया।

वैष्णव जिस प्रकार भगवान के दर्शनों के लिये आतुर रहता है, उसी तरह भगवान भी भक्त के दर्शन के लिये आतुर रहते हैं।

मीरा, नरसी और शबरी जैसी दृढ़ भक्ति होवे तो भगवान का कहना है कि मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा और तुम्हारी सम्भाल रखूँगा।

प्रभु ने जिन्हें अपनाया, वे कामान्ध तथा अभिमानी नहीं हुए। प्रभु जिन्हें सम्भालते हैं, वे काम और क्रोध के अधीन नहीं होते।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

16

केवल साधना से प्रभु के दर्शन नहीं होते। श्रीकृष्ण कृपा ही "साध्य" है। साधना का सहारा तो लेना ही है। ऐसा करते-करते जब जीव थक जाता है और दीन होकर रो पड़ता है, तभी परमात्मा कृपा करते हैं।

ध्रुव ने प्रार्थना की। प्रभु-दर्शन से उन्हें ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई। मनुष्यों, गन्धर्वों, देवों और इन्द्र के आनन्द से भी श्रेष्ठ ब्रह्मानन्द की उन्हें प्राप्ति हुई।

प्रभु ने ध्रुव से कहा कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ-जो इच्छा हो सो माँगो। ध्रुव कुमार ने जवाब दिया कि क्या माँगू, इसका तो मुझे भी ज्ञान नहीं है। आपको जो अच्छा लगता हो, वह देवें। भगवान ने कहा कि तुम अमुक कल्प तक राज्य करो, पीछे तुम्हें मेरे लोक में ले चलूँगा।

ध्रुवजी को पिछला जन्म याद आ गया और उन्हें भय हुआ कि रानी को देखकर मेरे मन में विकार आ गया था, इसलिये यह जन्म लेना पड़ा। अतः यदि मैं पुनः राजा बनूँगा तो मोहमाया में फँस जाऊँगा। अतएव ध्रुव ने प्रभु से विनती की कि मुझे राज्य अच्छा नहीं लगता। प्रभु ने उसे समझाया-भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। तुम्हारी इच्छा न भी होवे, पर मेरी इच्छा तुम्हें राजा देखने की है। मेरा एक नियम है। जो मेरे पीछे पड़ता है, मैं उसके पीछे-पीछे रहता हूँ। मेरी माया तुम्हें कष्ट नहीं देगी। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इस प्रकार समझा कर प्रभु ने ध्रुवजी को घर भेजा।

मार्ग में राजसेवकों ने ध्रुवजी को देखा। उन्होंने दरबार में जाकर उनके आगमन की बात कही। छः माह पूर्व जिस पिता ने पुत्र का अपमान किया था, वही राजा उत्तानपाद ध्रुवजी के स्वागत के लिये दौड़ा। उसके मन में विचार आया कि ५ वर्ष का बालक ध्रुव प्रभु दर्शन करके आया है ! मैं ५५ वर्ष का होकर भी सुरुचि के मोह में फँसा हुआ हूँ।

ध्रुवकुमार ने आकर पिता को प्रणाम किया और राजा ने उठाकर उन्हें छाती से लगाया। अतिशय आनन्द हुआ।

बाद में माँ के वचनों का स्मरण कर ध्रुवजी ने विमाता सुरुचि को प्रणाम किया। सुरुचि का हृदय भी भर आया।

ध्रुव ने माता सुनीति को प्रणाम किया। उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पाया। उनके मन में भाव आया कि मेरा पुत्र आज प्रभु-दर्शन करके आया है ! आज मैं सच्चे अर्थों में पुत्रवती हुई।

ध्रुवजी प्रभुदर्शन करके आये हैं, यह समाचार सुनकर राज्य के लोग अत्यन्त हर्षित हुए और उन लोगों ने ध्रुवजी की सवारी निकाली। ध्रुवजी को हाथी पर बैठाया। पहले उत्तम को हाथी पर बैठाकर ध्रुवजी पीछे बैठे। यह था ध्रुवजी का भ्रातृ-प्रेम ! ध्रुवजी का राजतिलक हुआ और विवाह हुआ।

वृद्धावस्था में ध्रुवजी गंगातट पर आये। जब बालक थे तो यमुना किनारे गये थे। गंगातट पर जब ध्रुवजी तप करने बैठे, तो गंगाजी के प्रवाह के कल–कल शब्द से उन्हें विक्षेप होने लगा और ध्रुवजी ने उस स्थान से अन्यत्र जाने का विचार किया। इस पर गंगा माता शान्त हो गईं। आज भी ऋषिकेश के पास जहाँ ध्रुवजी ने तप किया था, वहाँ गंगा माता शान्त होकर बहती हैं। ध्रुवजी का आश्रम भी वहीं है।

समय आने पर भगवद्-आज्ञा से पार्षद विमान लेकर ध्रुवजी को लेने आये। गंगाजी के शान्त सात्त्विक तट को छोड़कर ध्रुवजी की इच्छा जाने की नहीं हुई। इस पर गंगामाता ने समझाया कि यह मेरा भौतिक स्वरूप है। आधिदैविक स्वरूप में मेरा निवास वैकुण्ठ में है, अतएव ध्रुवकुमार वैकुण्ठ में गये। इसी समय मृत्युदेव ने आकर उनके समक्ष मस्तक नवाया। ध्रुवजी ने एक पाँव मृत्यु के सिर पर रखा और दूसरे चरण से विमान पर आरूढ़ हुए। ध्रुव-चरित्र से आपने यह देखा कि भगवान के लाडले भक्त काल के मस्तक पर पैर रखकर वैकुण्ठ में जाते हैं।

जो भक्ति का आश्रय लेते हैं, वे निर्भय रहते हैं। निश्चय-बल से कठिन कार्य भी सिद्ध होते हैं।

भक्ति मार्ग में आगे बढ़ने में मन, वाणी और कर्म को एक रखो। ईख के जैसा मिठास रखो। आँखों में अमृत (प्रेम) रखो। कभी भी अभिमान अथवा अहंकार की वाणी न बोलो। जिनकी वाणी में विनम्रता है, वे परमात्मा को अच्छे लगते हैं।

बालक तुम्हारे पास आवें तो उनमें बालकृष्णलाल की छवि का दर्शन करो। सन्त भी बालकों के साथ खेलते हैं। स्वामी रामदास बालकों के साथ खूब खेलते थे।

बालक की आँखों में विकार नहीं होता। उसके हृदय में कपट नहीं होता। उसके मन, वाणी और क्रिया तीनों एक होते हैं।

माँ-बाप से बालक अधिक सीखता है। बालक को अच्छे संस्कार मिलें, इसलिए बालक के सामने पाप नहीं करो। माता–पिता के आचार विचार बालक में उतरते हैं।

सम्पत्ति से थोड़ा सुख मिलता है। संस्कार और संयम से अविनाशी सुख मिलता है।

स्त्री के अतिशय वश में रहने वाले पुरुष बहुत दुःखी होते हैं। स्त्री जो कहती है वह उचित है या अनुचित इसका विचार करो। कामी पुरुष स्त्री के अधीन होते हैं।

जिस घर में मान न मिले, उस घर में नहीं रहना चाहिये।

बाल्यावस्था में स्त्री पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती है। मान-अपमान, लाभ-हानि, पूर्वजन्मों के कर्मों के फल हैं।

यदि भीख माँगनी है, तो परमात्मा से माँगो। अपने दुःखों की बात किसी मनुष्य से न कहकर बालकृष्णलाल से ही कहो।

प्रथम कीर्तन करके पीछे परमात्मा से कहो- मैं बहुत दुःखी हूँ। वह सुनेगा। कन्हैया किसी भी दिन यह नहीं कहता कि मैं देता हूँ । पर जब देता है तो इतना देता है कि जीव लेते-लेते थक जाता है। मनुष्य तो थोड़ा देकर भी बार-बार गाया करता है।

वीर पुरुष जूठन को ग्रहण नहीं करते। वीर पुरुष स्वयं सम्पत्ति का उपार्जन करते हैं। वेद में परमात्मा का कथन है कि जीव मेरा पुत्र है।

वैष्णव वैर का बदला प्रेम से देते हैं। स्वभाव से मन हमेशा शत्रु का स्मरण रखता है। जो सद्भाव से शत्रु का वन्दन करते हैं, उनपर भगवान दया करते हैं।

परमात्मा की कृपा से स्वभाव सुधरता है। तीर्थाटन करने से स्वभाव सुधरता नहीं।

सदगुरु माँ के समान हैं। माँ तो जन्म ही देती है, पर सदगुरु रूपी माता जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ाती है।

ज्ञानी पुरुष बहुत काल तक तपस्या करते हैं, पर भगवान नहीं मिलते। खंभे को जमीन में गाड़कर लोग उसे हिलाते हैं, पर हिलाने के उद्देश्य से नहीं। यह देखने के लिये हिलाते हैं कि उसमें कितनी स्थिरता आयी है।

यदि लड़का योग्य न होवे तो पिता उस पर प्रेम नहीं रखता -पर माँ का प्रेम तो रहेगा ही।

पाँच स्थानों में प्रभु अखंड रूप में विराजमान हैं।

१–मधुवन में

२–वृन्दावन (सेवाकुंज) में

३–द्वारका में

४–दक्षिण भारत के कावेरी तट पर श्रीरंगम में

५–नेपाल के मार्ग में गंडक नदी में

मानसी सेवा में ध्यान करो। मानस सेवा से मन शुद्ध होता है। मानसी सेवा प्रातःकाल ४ से ५१/२ के बीच करनी चाहिये। यह समय अति पवित्र होता है और ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है। मन से भोग लगाओ तो उसमें विशालता रखो। चरण, उरु, वक्षस्थल, मुखारविन्द और तत्पश्चात् सर्वांग की आरती उतारो।

बिना भजन किये भोजन करना महापाप है। मानसी पूजा के पश्चात् ध्यान में दर्शन तथा जप करो। ठाकुरजी का एक-एक अंग आँखों में पिरो लो और जप करते रहो।

जप और ध्यान साथ-साथ चलने चाहिये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

17

ध्रुव के वंश में अनेक राजा हुए। उनमें एक प्राचीनबर्हि राजा था। इस राजा ने अनेकों यज्ञ किये पर मन को शान्ति नहीं मिली। एक बार नारदजी आए। राजा ने उनसे मन की बात कही।

नारदजी ने प्राचीनबर्हि राजा से कहा कि चित्त–शुद्धि के बिना यज्ञों से शान्ति नहीं मिलेगी। चित्तशुद्धि होने के बाद एकांत में बैठकर प्रभु का ध्यान करना चाहिये। यज्ञ करने से स्वर्ग में तो जाओगे, पर प्रभु का दर्शन नहीं होगा। इसलिये परमात्मा की आराधना करो।

राजा ने नारदजी से उपदेश करने की प्रार्थना की। नारदजी ने आत्म–स्वरूप पहचानने के लिये एक कथा कही।

पुरन्दर नाम का एक राजा हुआ। उसका मित्र था अविज्ञात। राजा को सुखी रखने के लिये राजा के अनजाने में ही अविज्ञात बहुत उपाय किया करता था। किस कारण से मेरे को इतना सुख मिल रहा है, पुरंदर कभी इसका विचार नहीं करता था।

पुरंदर जीव है। अविज्ञात ईश्वर है। संसार में प्रभु की लीला अविज्ञात लीला है। इस लीला के समक्ष बुद्धि काम नहीं करती। जीव खाता है, ईश्वर खुराक को पचाते हैं। जीव सोता है, प्रभु जाग कर जीव का रक्षण करते हैं। भगवान के सो जाने पर "अच्युतम् केशवम्" ही हो जाए।

जीवात्मा रूपी पुरन्दर कभी विचार नहीं करता कि मैं किसके द्वारा सुखी हूँ। मनुष्य शरीर रूपी नवद्वार वाली नगरी में प्रवेश करता है।

इस नगरी में पहले एक स्त्री मिलती है। उससे वह पूछता है कि तू कौन है ? स्त्री जवाब देती है कि मैं कौन हूँ, यह तो मैं स्वयं भी नहीं जानती। पर मैं तेरे को सुखी रखूँगी। पुरन्दर उसके साथ विवाह कर लेता है।

उस सुन्दरी में पुरन्दर इतना आसक्त है कि स्वल्प समय में ही उससे उसे ११०० पुत्र प्राप्त होते हैं। वह सुन्दरी पत्नी बुद्धि ही है, और ११ इन्द्रियों से सुखभोग की मनोकामना का संकल्प ११०० पुत्र हैं।

संकल्प-विकल्प बालकों के परस्पर लड़ने के समान हैं। संकल्प-विकल्प मनुष्य को बंधन में रखते हैं। बुद्धि के संकल्प मनुष्य को अनेक बार रुलाते हैं।

फिर जीव पर जरा अर्थात् वृद्धावस्था अधिकार करती है। भोगों के अति सेवन से जरा समय से पहले आती है। उसके साथ संबंध करने की जीव की इच्छा नहीं होती। जरा काल की पुत्री है। वृद्धावस्था योगियों को विचलित नहीं करती, भोगीजनों को विचलित करती है। अन्त में स्त्री का चिंतन करते हुए मृत्यु को प्राप्त होने पर, पुरन्दर को कन्या के रूप में जन्म लेना पड़ता है।

विदर्भ नगरी में पुरन्दर का जन्म कन्या–रूप में हुआ था। विदर्भ अर्थात जिस ब्राह्मण के घर में दर्भ (कुश) बहु उपयोग में आवें, ऐसे पवित्र ब्राह्मण के यहाँ उसका जन्म हुआ था।

कर्मों का विधिवत् पालन करने से उसकी चित्त-शुद्धि हुई और द्रविड़ देश के राजा के साथ कन्या का विवाह हुआ। द्रविड़ देश भक्ति का पीहर है। जिस राजा के साथ विवाह हुआ था, वे पांड्य राजा भक्तिपति थे। उनके एक कन्या व सात पुत्र हुए, कन्या का नाम रुचि था। सात पुत्र थे–श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद–सेवा, अर्चन, वन्दन, और दास्य। इस प्रकार सात प्रकार की भक्ति सिद्ध होती है।

सात प्रकार की भक्ति तो जीव प्रयत्न करके पा भी सकता है, किन्तु आठवीं सख्य भक्ति तथा नौवीं आत्मनिवेदन भक्ति जिस पर परमात्मा कृपा करते हैं, उन्हें ही मिलती है।

नारदजी कहते हैं कि जीव संसार के सुखों में इतना अधिक फँसा रहता है कि आत्मस्वरूप का विचार नहीं करता ।

बारह वर्ष तक किसी भी सत्कर्म को नियमपूर्वक करने पर, वह सत्कर्म सिद्ध होता है। गीताजी में बताया गया है कि ज्ञानी को भी तीन जन्म तो लेने ही पड़ते हैं। किन्तु ध्रुवजी को तो छः महीने में ही प्रभु के दर्शन हुए।

नाम का जप करने पर श्रीकृष्ण धीरे-धीरे अपनी ओर खींच लेते हैं। हरिनाम के जप से पाप का नाश होता है और रामनाम के जप से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

धीरे-धीरे संयम बढ़ाओगे, तो बड़ा आनन्द आएगा।

जिसका शरीर और जिसकी आँखें स्थिर रहती हैं, उसका मन स्थिर हो जाता है।

मनुष्य में भक्ति नहीं होवे, तो दर्शन नहीं मिलते। पर जिस देव का स्मरण करते हो, वे देव सदा तुम्हारे साथ ही रहते हैं।

परमात्मा को जानने के बाद दूसरा कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता। ज्ञान की समाप्ति श्रीकृष्ण-दर्शन में है।

श्रीकृष्ण साधन-साध्य नहीं, कृपा-साध्य हैं। साधन से मनुष्य का अभिमान बढ़ता है।

पर्वत के समान पापों का साधन कुछ भी नहीं कर सकते। इसलिये साधन करने के साथ श्रीकृष्ण-शरण की याचना करो।

जिसे परमात्मा का अनुभव हो गया, उसके जीवन से कोई चीज अलग नहीं है।

ज्ञान और भक्ति परमात्मा के साथ एकरूपता देते हैं। पर वैष्णव एकरूप होने के बाद भी सेवा व स्मरण को नहीं छोड़ते। साध्य की प्राप्ति होने पर जो साधन छोड़ देता है, वह कृतघ्न नहीं है। पर श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के पश्चात् जो सेवा और स्मरण छोड़ देता है, वह कृतघ्न है।

विद्वान की कथा में और भक्त की कथा में अन्तर है। विद्वान कथा में अपनी विद्वता को प्रकाशित करता है, पर भक्त तो अपने अनुभव की कथा कहता है। भगवान के दर्शन करते हुए, वह कथा के शब्दों को कहता है। किसी समय तो ठाकुरजी स्वयं ही बोलते हैं। भक्त-हृदय जो कुछ भी कहता

है, उसकी वाणी में दिव्यता रहती है। भक्त-मुख से कथा का श्रवण करके वैष्णवों को जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, वह समाधि से भी श्रेष्ठ आनन्द है।

उपनिषदों का कथन है कि समाधि श्रेष्ठ है। ध्रुवजी कहते हैं कि कथा-श्रवण का आनन्द श्रेष्ठतर है। जिसके मन में कोई वासना या विकार नहीं होता, उन्हें समाधि के आनन्द की प्राप्ति होती है। भागवत के टीकाकारों ने इस आनन्द के स्वरूप का विचार किया है। श्रीधरस्वामी ने समाधि के आनन्द को श्रेष्ठ बताया है। ८०० वर्ष पहले श्रीधरस्वामी हुए थे। काशी में माधवरायजी के चरणों में बैठकर उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' की कथा लिखी थी।

समाधि का आनन्द तो एक को मिलता है, जबकि कथा-कीर्तन में एक के आनन्द को अनेक प्राप्त करते हैं। कथा में कुछ ऐसा आनन्द मिलता है कि इससे भूख और प्यास की विस्मृति हो जाती है।

इसलिंये कहा है कि समाधि के आनन्द से कथा-श्रवण का आनन्द श्रेष्ठ है।

नरसी मेहता ने शंकरजी से माँगा कि आपको जो प्रिय होवे, वही मुझे देवें। भगवान शिवको श्रीकृष्ण प्रिय थे, अतएव उन्होंने श्रीकृष्णलीला बतायी।

भगवान के पास तुम ऐसी ही प्रिय वस्तु माँगो।

ध्रुवजी की राजा बनने की इच्छा थी। पर प्रभु-दर्शन होने के बाद ऐसी इच्छा रहती नहीं। ध्रुवजी की तपश्चर्या पूर्व जन्म की थी, इसलिये राजा बनने का उनका मोह नष्ट हो गया था। किन्तु प्रभु ने उनसे कहा कि भले ही तुम्हारी राजा बनने की इच्छा न हो, पर मेरी इच्छा तुम्हें राजा देखने की है।

जीव में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह काम पर विजय प्राप्त कर सके। यह तो भगवान की शक्ति है, जो भक्त का रक्षण करती है।

हृदय में जिसे भगवान नहीं दिखते, उन्हें मन्दिर में भी नहीं दिखते।

घर के प्रत्येक जीव के साथ दिव्य-प्रेम रखो। भाई के साथ बैर रखकर तुम भक्ति प्राप्त नहीं कर सकोगे। भिखारी भी भगवान का अंश है, ऐसा मानो। जो प्रत्येक इन्द्रिय को वश में रखने का प्रयत्न करता है और सब जीवों के साथ मैत्री रखता है, उसके ऊपर परमात्मा जरूर कृपा करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

यं ब्रह्मावरुणेन्द्र रुद्रमरुतः स्तुवन्ति दिव्यैःस्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुःसुरासुरागणा देवाय तस्मैनमः।।

18

सन्तों की दृष्टि में मिट्टी और सोना समान है। यह अनासक्ति सब में होनी चाहिये।

सन्त कभी किसी के पास पढ़ने नहीं जाते। वे सादा जीवन बिताते हैं और प्रभु का कीर्तन करते हैं। मीराबाई कहीं पढ़ने नहीं गई थी। वह तो प्रभु-प्रेम में पागल हो गई थी।

सन्त किसी का लिखा हुआ अथवा कहा हुआ नहीं कहते। वे तो अपने अन्दर होने वाली स्फुरणा के वचन बोलते हैं।

धूल, पत्थर व सोना तीनों समान हैं। ऐसी दृष्टि रखने वाले रांका-बांका नाम के दम्पति का दृष्टान्त अनुकरणीय है।

रांका-बांका नाम के पति-पत्नी राजमार्ग पर जा रहे थे। पति आगे-आगे व पत्नी पीछे-पीछे चल रही थी। रास्ता चलते हुये रांका ने सोने का एक हार पड़ा देखा। उसे लगा कि कहीं पत्नी की दृष्टि हार को देखकर बिगड़ न जाए। अतः वह हार को रेत से ढकने लगा। पीछे पत्नी की जानकारी में जब सोने के हार की बात आई तो उसने हँस कर कहा कि आप धूल पर धूल किसलिये डाल रहे थे ? क्या आपके मन में अभी भी सोने और मिट्टी में भेद है? तब पति ने कहा कि तू मेरे से श्रेष्ठ है। तेरा वैराग्य "बाँका" है। तब से पत्नी का नाम बांका पड़ गया।

मन तो प्रभु की कृपा से ही शुद्ध होता है। मनुष्य की वृत्ति तो "ऐरण की चोरी करे, करे सुई का दान" की है।

रांका-बांका के चरित्र से शिक्षा मिलती है कि गृहस्थाश्रम बाधक नहीं, साधक है।

अनेक जन्मों से जीवात्मा कामवासना भोगता आ रहा है। यह वासना विवाह द्वारा दूर होती है। प्रभु की माया जीव को अनेक प्रकार से मारती है। विवाहित भी पछताता है। कुंआरा भी पछताता है।

प्रभु-सेवा के बिना देश-सेवा भी फलीभूत नहीं होती। अतः परम कृपालु परमात्मा की सेवा द्वारा उनका कृपा-भाजन बनने का प्रयत्न करो।

भरत मुनि के दृष्टान्त से यह समझना चाहिये कि परोपकार भी कितनी ही बार ईश्वर प्राप्ति में बाधक होता है। केवल परोपकार द्वारा ही प्रभु की प्राप्ति नहीं होती।

सारे संसार को अथवा समाज को कोई खुश नहीं रख सका। संसार को खुश रखना कठिन कार्य है।

अतः सात दिनों में मुक्तिप्रदायिनी 'श्रीमद्भागवत' कथा का प्रेम, श्रद्धा व भक्ति के साथ श्रवण करो।

वक्ता अधिकारी हो, और श्रोता सावधान होकर कथा सुने तो संसार के विषयों में अरुचि पैदा होती है। 'भागवत' की कथा सुनने के बाद यदि मुक्ति न मिले, तो समझो कि 'पूर्वचित्ती' अप्सरा मन में चिपकी बैठी है। पूर्वजन्म में जिन कामनाओं अथवा विषयों का भोग किया था, वे चित्त में जमें हुए हैं। वे भोग-वासनाएँ अप्सरा के रूप हैं। वासना जीव तथा शिव के मिलन में बाधक है। संग-दोष से वासना बढ़ती है। अतः ज्ञानी संग-दोष से बचते हैं।

'श्रीमद्भागवत' परमहंस संहिता है। हंस, श्रीहंस तथा परमहंस इस प्रकार तीन भेद बताये गये हैं। हंस में ऐसा सद्गुण होता है कि वह जल मिले दूध में से केवल दूध पी लेता है।

जड़ और चेतन की समष्टि देह है। परमहंस जड़ शरीर में-से चेतन आत्मा को अलग कर लेते हैं।

शरीर और इन्द्रियों का सुख सच्चा सुख नहीं है। इसे जानते तो बहुत हैं, पर इसका अनुभव कम लोगों को होता है।

नारियल में कठोर आवरण के भीतर कोमल गिरी रहती है, गिरी आवरण से चिपकी रहती है। परन्तु आवरण व गिरी भिन्न-भिन्न हैं। शरीर आवरण के समान है और उसमें रहने वाली आत्मा गिरी के समान रसमय है। जब तक नारियल में पानी रहेगा, गिरी आवरण के साथ चिपकी रहेगी।

संसारासक्ति रूपी पानी के सूख जाने पर गोला कठोर आवरण को छोड़ देगा है।

आत्मा आनन्दस्वरूप है। आनन्द बाहर नहीं, भीतर है। जिसे जड़ वस्तु में आनन्द आता है। वह आत्मा के आनन्द को नहीं जानता। इन्द्रियों का सुख सच्चा नहीं, कच्चा सुख है।

परमहंस संसार को छोड़कर आत्मचिन्तन में लीन रहते हैं। आत्मा देह से अलग है, वे हमेशा ऐसा अनुभव करते हैं।

ज्ञानी परमहंस और भागवत परमहंस का लक्ष्य एक होने पर भी मार्ग अलग-अलग हैं। ज्ञानी परमहंस की मान्यता है कि "दृश्य मिथ्या है, द्रष्टा सच्चा है।" इसलिये वे द्रष्टा में दृष्टि को स्थिर करते हैं।

किन्तु भागवत परमहंस भक्ति द्वारा द्रष्टा को भगवान मानते हैं। भक्ति करनी सरल नहीं है। भागवत परमहंस जगत् को ब्रह्म-रूप में देखते हैं।

ज्ञानी परमहंस आँखें बन्द रखते हैं। भागवत परमहंस आँखें खुली रखकर भगवद्-भावना से संसार का दर्शन करते हैं। सिद्धि के उपयोग से प्रसिद्धि स्वयं आ जाती है। न निष्ठुर बनो और न अति दयालु बनो।

ज्ञानी परमहंस न निष्ठुर होते हैं और न दयालु। वे मन का विश्वास नहीं करते।

मन का विश्वास करोगे तो वह खड्डे में गिराएगा।

सिद्धियाँ प्रभु के मिलन में बाधा देती हैं, बीच में जंजाल खड़े कर देती हैं।

संसार को छोड़ने की अपेक्षा मन से संसार को निकालने का प्रयत्न करो।

बिना वैराग्य के जो घर छोड़ते हैं, उनका पतन होता है। अतः बार-बार इन्द्रियों को समझाओ। एक-एक इन्द्रिय को संयमित करो। गृहस्थाश्रम में रहते हुए धीरे-धीरे मन को समझाकर संयम में लाओ।

आनन्द-जड़ वस्तु में नहीं मिलता, वह तो चेतन परमात्मा में ही मिलता है।

वासना का प्रवाह ऐसा होता है कि ज्ञान उसमें बह जाता है। जो माया के प्रवाह में बहता रहता है, उसे माया दुःख नहीं देती। पर जो माया के

विपरीत जाएगा, उसे तो वह त्रास ही देवेगी।

ध्यान रखो कि संसार के विषय मन में नहीं आवें। मन में परमात्मा के सिवाय अन्य किसी को नहीं रखो।

एकादशी के दिन भिखारी को भी फल का ही दान दो, अन्नदान नहीं।

मन के ऊपर विश्वास नहीं–"पहरा" रखो।

संसार का चिन्तन करने से मन बिगड़ता है। इस बात की सावधानी रखो कि तुम्हारा मन मनुष्य व जड़ पदार्थों का चिन्तन न करे।

जो प्रत्येक व्यवहार में सावधान है और लक्ष्य को भूलता नहीं, वही सन्त है। सच्चे संतों के प्रवचन में ही उपदेश प्राप्त होवे–ऐसा नहीं है। संत की प्रत्येक क्रिया उपदेश है। बोलो तो ऐसे वचन बोलो कि सुनने वाले के पाप नष्ट होवें।

वाणी व पानी, वचन तथा जल का दुरुपयोग पाप है। ध्यान में जिसका मन प्रभु में लीन हो जाता है, उसके लिये संसार भाररूप नहीं है।

अनादिकाल से जीव संसार रूपी जंगल में भटक रहा है।

'गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः'

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

19

कथा सुनने वाले के हृदय पर कथा की एक बात भी असर करे, तो उसका जीवन सुधर जाता है। कथावाचक यदि केवल शाब्दिक कथा ही कहे और स्वयं भक्ति नहीं करे, तो वह कथा कहता ही रह जायेगा। नारदजी और ध्रुवजी के जीवन से यह सत्य समझ में आता है।

हाथ में मशाल लेकर चलने वाला मशालची दूसरों को प्रकाश देता है, पर स्वयं वह अंधकार में रहता है।

ज्ञान-दान श्रेष्ठ दान है। अन्न-दान और वस्त्र-दान से थोड़े समय के लिये शान्ति प्राप्त होती है। किन्तु ज्ञान-दान अर्थात् जहाँ अध्यात्म ज्ञान का दान होता है, वहाँ सारे तीर्थ आ जाते हैं।

अधिक अनर्थ होने पर धरती माता रसातल में चली जाती है।

यज्ञ समाज-सुख के, आरोग्य के केन्द्र हैं। यज्ञ में समाज के प्रत्येक अंग का पोषण होता है।

यज्ञ श्रौत व स्मार्त भेद से दो प्रकार के होते हैं। श्रौत यज्ञ वे ही ब्राह्मण कर सकते हैं, जो तीनों वेदों के ज्ञाता होवें। दक्षिण भारत में कभी-कभी ऐसे यज्ञ होते हैं।

परमात्मा जीव से कहता है कि धरती खोदने का काम तेरा है और बरसात भेजने का काम मेरा है। बीजारोपण का काम तेरा है और अंकुर के पालन का काम मेरा है। खेत के रक्षण का काम तेरा है और अनाज देने का काम मेरा है। अन्न खाने का काम तेरा है और अन्न पचाने का काम मेरा है।

अन्न ब्रह्म है, अन्न में भगवान की भावना रखो। प्रभु का स्मरण रखते हुए जो भोजन करता है, उसे उपवास का पुण्य मिलता है।

भोजन के पश्चात् सोने का काम जीव का है, और जीव के रक्षण का काम ईश्वर का है।

प्रत्येक काम में ईश्वर जीव की मदद करता है। किन्तु लौकिक सुखों में जीव इतना अधिक फँसा रहता है कि उसे परमात्मा की खबर नहीं रहती।

परमात्मा को साथ रखकर जो काम करोगे, वह सुख रूप होगा। जीभ नाम-जप करे और मन उसका स्मरण करे।

अनेक जन्मों से जीव कामनाएँ करता आया है, इसलिये विवाह के बाद 'संन्यास-भावना' से रहो।

विवाह के पश्चात् परमात्मा सम्पत्ति नहीं माँगते, समय माँगते हैं। रोज चार घण्टे प्रभु को दो।

"जो गृहस्थ रोज ३ से ४ घण्टे मेरा स्मरण करते हैं उन्हें मैं पाप करने से अटकाता हूँ"।

संसार तुम्हारा यश गावे, ऐसी भावना नहीं रखनी चाहिये। जगत् के साथ मेरा सम्बन्ध सच्चा नहीं है,मेरा सम्बन्ध तो परमात्मा के साथ है, बार-बार ऐसा चिन्तन करो। जिस वृक्ष की जड़ में पानी ठहरा रहता है, वह पनपता नहीं।

जिस दिन पाप-कर्म हो जावे, उस रात्रि में सोने से पहले प्रभु के पास अपने पापों को मंजूर करो। हो सके तो उपवास करो। प्रभु के नाम का जप अधिक रूप से करो, नहीं तो पाप की सजा भी अधिक मिलती है।

गाय को जौ खिलाओ। गोबर में से जौ निकालकर और उसे जला कर, उस राख पर बैठकर जप करने से महापाप का नाश होता है। प्रायश्चित करने से वासना का नाश नहीं होता। जो जाति-अभिमान को परमात्मा को अर्पण कर देता है, उसकी पाप करने की इच्छा ही नहीं होती।

स्वयं को परमात्मा को समर्पित करो। इसके लिये प्रतिक्षण प्रभु के नाम का स्मरण करो। प्रति श्वास प्रभु-स्मरण की आदत बनाओ।

जिस प्रकार लोभी मनुष्य पैसे की संभाल रखता है, उसी प्रकार प्रभु का चिन्तन करोगे, तो बेड़ा पार हो जायेगा।

नाम में से ही रूप प्रकट होता है। यदि प्रभु-नाम का सतत जप करोगे, तो परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव होगा।

हनुमानजी के जैसा बुद्धिशाली न कोई हुआ है और न होगा।

परमात्मा जिसे हाथ पर रखते हैं, वह डूबता नहीं। जिसे फेंक देते हैं, वही डूबता है।

हनुमानजी प्रभु से कहते हैं कि प्रभु आपमें जो शक्ति नहीं है, वह आपके नाम में है। जब राम-नाम से जड़ पत्थर भी तैरते हैं, तो मनुष्य क्यों नहीं तरेगा।

'अजा' अर्थात् माया। जो माया में घुलमिल गया है, वह अजामिल है। व्यवहार में माया की बड़ी जरूरत रहती है।

माया का उपयोग विवेकपूर्वक करो, पर माया में घुलमिल न जाओ। अग्नि की तरह माया को चिमटे से पकड़ो।

मुझे प्रभु के साथ एकरूप होना है-ऐसा लक्ष्य रखकर माया का उपयोग करो।

द्रव्य, भोजन, वस्त्र, कामसुख, घर और पुस्तक ये छः माया के स्थान हैं। इनमें मन अलग-अलग तरीके से अटकता है।

पढ़े-लिखे लोगों का मोह पुस्तकों की माया से नहीं छूटता। जो पुस्तक की चोरी करता है, वह गूंगा होता है। स्वर्ण का चोर अन्धा होता है और अन्न का चोर भिखारी होता है।

माया का उपयोग करते हुये हमेशा यही लक्ष्य रखो कि मैं श्रीकृष्ण का दास हूँ।

सच्चे सन्त जिसके यहाँ भोजन करते हैं, उसका कल्याण किये बिना वहाँ से नहीं जाते। मन से ही उनका कुछ कल्याण करते हैं। अपने को सुधरा हुआ मानने वाले लोग दूसरों को खराब समझते हैं। सुधरे हुए की पहचान विवेक से करो। दूसरे इतने खराब तो नहीं हैं ?

अति कामी पुरुष पूरी आयु नहीं भोगते हैं। अति कामी और अति पापी अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। काम पहले आँखों में आता है, और पीछे मन में।

अनजाने में भी मुँह से प्रभु का नाम निकलने पर लाभ ही होता है।

जल्दी में भोजन करने वाले को भले ही स्वाद न आए, पर भूख तो मिटती ही है। इसी तरह व्यग्र चित्त से प्रभु का नाम लेनेवाले के भी थोड़े पाप नष्ट होते हैं।

अच्छा लगे सो करो, पर हृदय को न जलाओ। हरि-हरि कहो।

जिसका भोजन नीरस होता है, उसका भजन सरस होता है। जिसका भोजन सरस होता है, उसका भजन नीरस होता है।

अजा अर्थात् माया और अज अर्थात् ईश्वर।

जीव के सुधरने पर जीवन सुधरता है।

दृष्टि के सुधरने से आत्मा सुधरती है। संसार तो मन की कल्पना है।

माँ को अपने बालक का बोझ नहीं लगता, क्योंकि बालक में ममता होती है। अपना बालक उसे फूल की तरह हल्का लगता है और दूसरे का बालक अधिक भारी लगता है।

यदि मनुष्य का मन विषयों में आसक्त होगा, तो दुःखों को देने वाला बनेगा। ईश्वर-भजन में लीन होने वाला तो मोक्ष का अधिकारी बनेगा।

जगत् स्वप्न के समान है। जिस प्रकार मिथ्या स्वप्न निद्रा में रुलाता है, उसी प्रकार यह मिथ्या संसार भी जीव मात्र को रुलाता है।

स्वप्न मिथ्या है, यह तो जागने पर ही समझ में आता है। इसी प्रकार जिसका मन विषयभोगों से हट गया है, उसे जाग्रत समझना चाहिये।

जानिय तबहिं जीव जग जागा।
जब सब विषय बिलास बिरागा।।

सत्संग के बिना ज्ञान नहीं मिलता। मन को खेल से हटा-कर सन्तों का समागम करो। सन्तों की सेवा से ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

दया धरम हिरदै बसै बोलै अमरित बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन।।

–मलूकदास

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

20

कथा मनुष्य के जीवन में मार्ग-दर्शक है। कथा सूक्ष्म दोषों का भान कराती है। मनुष्य का उद्धार मात्र नाम-स्मरण से हो जाता है।

वेदान्त के सिद्धान्तों को समझना कठिन है, किन्तु नाम-स्मरण सरल है। नाम-जप की महिमा अनुपम है। श्री तुलसीदासजी ने नाम की महिमा का गान किया है।

मन्त्र महामनि विषय ब्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के।।
भाव कुभाव अनख आलस हूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

परमात्मा के ध्यान से मन की शुद्धि होती है। ध्यान में एकाग्रता न आए, तो नाम-स्मरण करो।

मनुष्य को जीवन का ध्येय निश्चित कर लेना चाहिये। जिसके जीवन में ध्येय नहीं है, वह बिना नाविक की नौका के समान है।

कलियुग में स्वरूप-सेवा शीघ्र फलप्रद नहीं होती। अतः नाम-सेवा का महत्त्व अधिक बताया है। कलिकाल में नाम-निष्ठा श्रेष्ठ साधन है।

जनाबाई का जप समझने की बात है। जनाबाई के पाथे हुए उपलों को कोई चुरा कर ले जाता था। उन्होंने नामदेव से फरियाद की। नामदेव ने कहा कि सारे उपलों में से तुम्हारे उपले किस तरह पहचान में आवेंगे। जनाबाई ने जवाब दिया कि मेरे उपले पहचानने सरल हैं। मेरे उपलों को जब कान के निकट लाया जाएगा तो उनमें से 'विट्ठल-विट्ठल' की ध्वनि निकलेगी। जनाबाई उपले पाथते समय विट्ठल-नाम जपती थी। नामदेव ने परीक्षा की तो उपलों से विट्ठल-नाम की ध्वनि सुनाई पड़ी। तब उन्होंने जनाबाई से कहा कि "नामदेव" मैं नहीं, तुम हो। नाम तल्लीनता के

कारण ही जनाबाई के उपलों में विट्ठल-ध्वनि निकलती थी।

एक दिन देवगुरु इन्द्रसभा में गये। इन्द्र ने खड़े होकर गुरु बृहस्पति का स्वागत नहीं किया। इस अपमान के कारण बृहस्पति ने देवताओं को त्याग दिया। दैत्यों व देवताओं का युद्ध हुआ। स्वर्ग के राज्य पर दैत्यों ने विजय प्राप्त की। देवगण ब्रह्माजी के पास गये और कहा कि देवगुरु के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये कोई ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण बताइये। ब्रह्माने प्रजापति के पुत्र विश्वरूप की सलाह दी।

विश्वरूप ब्रह्मज्ञानी व ब्रह्मनिष्ठ थे। उन्होंने देवताओं को नारायण कवच दिया। देवताओं ने पुनः स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया।

कवच का अर्थ है बख्तर। मन्त्र में ऐसी भी शक्ति है। नारायण कवच का अन्तिम श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है।

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्।
स्थलेषु मायावटु वामनोव्यात त्रिविक्रमः खेवतुविश्वरूपः।।

(स्थल पर भगवान वामन, जल में भगवान मत्स्य, जंगल में भगवान नृसिंह और प्रवास में भगवान राम रक्षण करें।)

भेद-भाव से भय लगता है। ज्ञानी महापुरुष तो अभेद का भाव ही रखते हैं।

जब भय लगे अथवा मन में उद्वेग होवे तो नारायण कवच के श्लोकों का पाठ करो।

सकाम कर्म में थोड़ी त्रुटि रह जाने पर विपरीत फल मिलता है। निष्काम कर्म की भूल क्षम्य है।

यज्ञ के मंत्रों में उच्चारण की भूल होने पर, इन्द्र को मारने वाले पुत्र के स्थान पर इन्द्र के हाथों मरने वाले पुत्र का जन्म हुआ।

ब्राह्मण के ठीक-ठीक मन्त्रोच्चारण करने पर यजमान को फल की प्राप्ति होती है, और अशुद्धि रहने पर सजा मिलती है। शुद्ध मन्त्रोच्चारण अमृत - तुल्य है। अशुद्ध होने पर वही जहर - तुल्य फल देता है।

यज्ञ-कुण्ड से वृत्रासुर की उत्पत्ति हुई और वह देवताओं को त्रास देने लगा। देवगण परमात्मा की शरण में गये। परमात्मा ने सलाह दी कि दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र बनाओगे तो वृत्रासुर मरेगा। इसी वज्र के प्रहार से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था।

त्रास देने की वृत्ति "वृत्रासुर" है। जब वृत्ति बहिर्मुख होती है, तब दुःख देती है। वृत्ति के अन्तर्मुख होने पर जीव और शिव का मिलन होता है।

ज्ञानरूपी वज्र से बहिर्मुख वृत्ति का छेदन करो। जब जीव दीन होकर प्रभु की शरण में जाता है, तब प्रभु उसे अपनाते हैं। वृत्रासुर दीन बना तभी प्रभु ने उसे अपनाया।

जो संसार की कल्पना को मन में रखता है, उसका मन और जीवन बिगड़ता है। वह "वृत्रासुर" हो जाता है।

मनुष्य दूसरों के लिये रोता है, पर अपने लिये रोता नहीं। अपने लिये रोना चहिये।

माता-पिता प्रत्यक्ष परमात्मा के स्वरूप हैं। एक ऋणानुबंध पुत्र होता है, दूसरा सेवक पुत्र। "ऋणानुबंध" ऋण शोध के लिये आता है और ऋण का भुगतान लेकर चला जाता है।

माता-पिता की सेवा करने वाला पुत्र कभी दुःखी नहीं होता।

मनुष्य सयाना होने पर भी जब तक स्वयं को प्रेरित नहीं करे, तब तक मन गतिशील नहीं होता।

सूर्यनारायण सबको समान प्रकाश देते हैं, उनमें विषमता नहीं है। वे सब पर सम भाव रखते हैं।

ईश्वर सम भाव रखते हैं, पर उसमें दिखती है विषमता। बिल्ली और चूहा दोनों में ईश्वर है।

परमात्मा तो सम भाव रखते हैं। जो विषमता दिखती है वह माया के कारण है।

ईश्वर व्यापक है, निष्क्रिय है। माया की क्रिया का आरोप ईश्वर में भासता है।

कुछ नहीं करने पर भी दीपक बहुत करता है और सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। बम्बई की कोई क्रिया नहीं है। क्रिया है गाड़ी की। बम्बई आ गई ऐसा नहीं, मैं बम्बई आया हूँ, ऐसा है।

वैष्णव आचार्यों की मान्यता है कि "ब्रह्म निष्क्रिय है।" यह सच होने पर भी ब्रह्म लीला करता है।

स्वार्थ और अभिमानपूर्वक जो किया जाये, वह "क्रिया" है।

निःस्वार्थ और निरभिमान भाव से जो किया जाये, वह "लीला" है।

रास करने से श्रीकृष्ण को सुख नहीं मिलता, पर गोपियों को प्रेमदान-रसदान करने के हेतु श्रीकृष्ण लीला करते हैं।

श्रीकृष्ण जिसे मारते हैं, उसे तारते भी हैं। उनके क्रोध में भी प्रेम है।

यह ध्यान में रखो कि क्रिया की विषमता में भी भाव ठीक रहे। क्रिया में विषमता तो रहने वाली ही है।

अन्तर में आनन्द आए तो समझो कि भगवान प्रकट हुए।

पायो जी मैने राम-रतन धन पायो।।
वस्तु अमोलिक दी मेरे सतगुरु,
किरपा कर अपनायो।।१।।
जनम जनमकी पूँजी पाई,
जग में सभी खोवायो।।२।।
खरचै न खूटै, वाको चोर न लूटै,
दिन-दिन बढ़त सवायो।।३।।
सतकी नाव, खेवटिया सतगुरु
भवसागर तर आये।।४।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
हरख-हरख जस गायो।।५।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

21

विषमता माया की है, ईश्वर सम हैं। भगवान दैत्यों को मारते हैं, पर भगवान की मार में भी प्रेम है।

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों आत्मा के नहीं, प्रकृति के गुण हैं। जीव के पालनहेतु सत्त्वगुण और संहारहेतु तमोगुण है।

परमात्मा कहते हैं कि किसी भी भाव से मेरे में कोई तन्मय होता है, तो उसे मैं मेरे स्वरूप का दान करता हूँ। इसलिये किसी भी भाव से परमात्मा के साथ एकाकार होना जरूरी है।

कंस ने भय से, शिशुपाल ने द्वेष से और गोपियों ने मिलन की तीव्र आकांक्षा से प्रभु में मन को लगाया था।

सब दुःखों का मूल "भेद-बुद्धि" है। भेद-बुद्धि से ही हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की उत्पत्ति हुई। "मैं दूसरों को मारूँ"-यह विचार भेद-बुद्धि की सन्तान है।

जब तक अंहकार और ममता का विनाश नहीं होता, तब तक ज्ञान प्रकाशित नहीं होता। ज्ञान-प्राप्ति सुलभ है। हिरण्यकशिपु ज्ञानी था, पर उसके ज्ञान में अहंता और ममता थी। अपने भाई की मृत्यु होने पर उसने ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश किया था। इसलिये कहा है कि दूसरों को ज्ञान देने वाला यदि स्वयं उस ज्ञान को अपने जीवन में नहीं उतारे, तो वह असुर है। जब तक अहंकार है, तब तक ज्ञान आत्मसात नहीं होता। बिना वैराग्य के ज्ञान का अनुभव नहीं होता।

हिरण्याक्ष के मरने का समाचार सुनकर हिरण्यकशिपु तप करने निकला तो उसकी पत्नी कयाधु ने पूछा कि आप तप करके वापस कब आएँगे ? हिरण्यकशिपु ने कहा कि तप द्वारा अनेकों सिद्धियों को प्राप्त करने में कम से कम दस हजार वर्ष लगेंगे। ऐसा कहकर वह मन्दराचल पर्वत पर तप करने चला गया।

उसी दिन पति को वापस आया देखकर पत्नी ने पूछा–"वन में ऐसी क्या बात हो गई, जो आप आज ही घर आ गये।" हिरण्यकशिपु ने कहा कि एक अपशकुन से तप में विघ्न आ गया। पत्नी ने कहा–"क्या आपके जैसे वीर के लिये भी विघ्न आ गया ?" उसने जवाब दिया कि मेरे तप में बैठते ही एक तोते ने "नारायण-नारायण" कहकर मेरे तप में विघ्न कर दिया। चतुर पत्नी ने प्रश्न को बार-बार दोहराकर कि क्या तोता भी नारायण बोलता है ? अपने पति से १०८ बार नारायण नाम का उच्चारण करवाया।

यदि पुरुष लायक हो तो एक कुल का उद्धार करता है। किन्तु स्त्री के लायक होने पर दोनों कुलों का उद्धार होता है।

जब हिरण्यकशिपु तप करने गया तो कयाधु सगर्भा थी। ३६००० वर्ष के तप के प्रभाव से ब्रह्माजी प्रकट हुए। वरदान माँगने के लिये कहने पर हिरण्यकशिपु ने माँगा–"मुझे ऐसा वरदान देवें कि मैं दिन में या रात्रि में, देव, असुर, मानव, पशु अथवा अस्त्र-शस्त्र से न मरूँ।" ब्रह्माजी ने यह वरदान दिया।

ब्रह्माजी के वरदान से देवता घबरा गये और भगवान की शरण में गये। भगवान ने कहा –"घबराओ नहीं। जब वह अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने को उद्यत होगा, तब मैं अवतार ग्रहण कर उसका वध करूँगा।"

प्रह्लाद का जन्म हुआ। जन्म से ही वह भक्ति-रस-रंग में डूब गया। गुरु के यहाँ पढ़ने जाकर वह एकमात्र भक्ति का पाठ ही पढ़ता था और सब बालकों को भी वही पढ़ाता था। इससे हिरण्यकशिपु का क्रोध भड़क उठा।

बालक प्रह्लाद ने पिता से कहा कि संसार में स्वार्थ और कपट के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। जब तक मनुष्य में वासनाएँ हैं, वह स्वार्थ के वशीभूत हो छल-कपट में लिप्त रहता है।

श्री डोंगरे महाराज ने एक उत्तम दृष्टांत के द्वारा इसे समझाया है। यदि पत्नी बीमार पड़ती है तो पति पाँच-चार हजार का खर्चा करेगा। बीमारी लम्बी हो जावे तो दो वर्ष प्रतीक्षा करेगा। अंत में थक कर मन में

इच्छा करेगा कि अब इससे छुटकारा मिले तो अच्छा है। अभी मेरी उम्र ही कितनी है ? प्रभु ने पाँच पैसे दिये हैं, दूसरी मिल जाएगी। इसके लिये मनौती भी करता है।

सुर नर मुनि सब की यह रीति।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति।।

दिति अर्थात् भेद-बुद्धि। जगत् को भेदभाव से देखोगे तो दृष्टि बिगड़ेगी। दिति के दो पुत्र हैं, भेद और अहंकार। जब राग-द्वेष जगते हैं, तो बुद्धि बिगड़ती है।

हिरण्याक्ष लोभ का प्रतीक है। हिरण्यकशिपु अभिमान का प्रतीक है, अभिमान दिन या रात, अस्त्र अथवा शस्त्र, भीतर अथवा बाहर नहीं केवल देहली पर मरता है।

जीव देहली है।

अन्दर और बाहर जाने-आने की इच्छा होवे, तो जीव रूपी देहली को बीच में रखोगे।

एक संकल्प की समाप्ति और दूसरे का प्रारम्भ करते समय मध्य के संकल्प को मारो। इन दोनों के सन्धि-काल में जब आत्मस्वरूप का मनन करोगे, तो संकल्प मरेगा, अभिमान का नाश होगा।

परमात्मा का अनुसंधान रखने से अभिमान मरता है।

दो मनोवृत्तियों के बीच परमात्मा को रखो।

दुःखी मनुष्य सेवा कर नहीं सकता, सेवा लेता है। इसलिये तुम्हें शक्ति बढ़ानी चाहिये, ज़िससे सेवा कर सको।

प्रह्लादजी सद्गुणों के भण्डार हैं।

जहाँ भक्ति है, वहाँ समस्त सद्गुण हैं, विनय है, विवेक है, उदारता है और समर्पण की भावना है।

अभिमान सभी दुर्गुणों का जन्मदाता है।

भक्ति को प्रकट न करो। भक्ति प्रकट होगी तो विघ्न आवेंगे। जिस प्रकार धन को गुप्त रखते हो, उसी प्रकार भक्ति को भी गुप्त रखो।

मीराबाई ने कहा था–"मेरे कृष्ण का रंग काला है।" काले रंग पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता।

जिसे आत्मानन्द प्राप्त होता है, उसे जगत् के सुख तुच्छ लगते हैं।

जब मन लौकिक सुखों में फँसता है, तब बिगड़ता है। किन्तु जब मन अलौकिक भावना के स्वरूप में फँसता है, तो सुधरता है।

८३, ६६, ६६६ जन्मों के बाद यह शरीर मिला है। लौकिक सुखों के लिये प्रयत्न करने की जरूरत नहीं।

सुख बिना प्रयत्नों के आते हैं। ये प्रारब्ध के अधीन हैं। इसलिए प्रभु से मिलने का प्रयत्न करो।

विद्या का फल अर्थ नहीं, परमात्मा की प्राप्ति है–ऐसा विचार करना चाहिये।

जो आँखें स्वप्न देखती हैं, उन्हीं में परमात्मा भी दिखते हैं।

"नाद-ब्रह्म" और "नाम-ब्रह्म" जब एक हो जाते हैं, तब परमात्मा के दर्शन होते हैं।

निन्दा सुनकर मन को शान्त रखो।

किसी भी कारण से जो संसार को भूलता है और सतत परमात्मा का चिन्तन करता है, उसे श्रीकृष्ण अवश्य शरण देते हैं।

आहार से ही मनुष्य के मन की परीक्षा होती है।

प्रह्लाद के प्रति क्रोध से भरे हुए हिरण्यकशिपु ने गुरु शंडामर्क से पूछा–"तूने यह क्या पढ़ाया है" ? शंडामर्क ने जवाब दिया कि मैंने तो इस ज्ञान की शिक्षा नहीं दी थी और प्रह्लाद से पूछा कि–मैंने तो तुम्हें यह तो नहीं सिखाया था, यह क्या बोल रहे हो ?

प्रह्लाद् ने जवाब दिया–"भक्ति किसी के सिखाने से नहीं आती। भक्ति तो सन्त-कृपा व प्रभु-कृपा होने पर ही मिलती है।" बात यहीं खत्म हो गयी। समय अपना कार्य करता रहा। थोड़े समय बाद हिरण्यकशिपु ने फिर प्रह्लाद से पूछा–"पाठशाला में गुरुजी के पास क्या पढ़ते हो ?"

प्रह्लाद ने कहा–"पिताजी ! संसार में भोगों को भोगने से शान्ति नहीं मिलती। प्रभुभक्ति से ही शान्ति और मुक्ति मिलती है। नवधा भक्ति से प्रभु

प्रसन्न होते हैं। नवधा भक्ति है- "श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, अर्चना, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन।" इनमें से प्रत्येक प्रकार की भक्ति उत्तम है।

यह सुनते ही हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद से उतारकर सेवकों को हुक्म दिया कि इसे त्रास दो। प्रह्लाद पर अनेक जुल्म किये गए, उसे कैद में डाल दिया गया। प्रह्लाद जरा भी भयभीत नहीं हुए। कैद में प्रह्लादजी भगवान का नाम -स्मरण तथा कीर्तन करते। कीर्तन में उन्हें भूख प्यास की सुधि नहीं रहती। श्रीभगवान ने लक्ष्मीजी से कहा कि प्रह्लाद के लिये प्रसाद भेजो। जेल में प्रह्लाद को प्रसाद खाते देख पहरेदारों को आश्चर्य हुआ। पीछे शंडामर्क उन्हें वरुणपाश में बाँधकर ले गये। धरती पर पटका। पर हिरण्यकशिपु की एक न चली।

अन्त में उसे तप्त खम्भे का आलिंगन करने को कहा गया। "इसमें भगवान हैं"-ऐसा कहकर प्रह्लाद ने खम्भा पकड़ लिया। हिरण्यकशिपु ने खम्भे पर मुक्का मारा और खम्भा फट गया। नृसिंह भगवान प्रकट हुये। उन्होंने हिरण्यकशिपु को नखों से चीर डाला।

"नारसिंह वपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः"

नृसिंह भगवान की जय !

खम्भे में से नृसिंह भगवान ने "गुरु-गुरु" इस प्रकार का नाद किया था। इससे यह बोध होता है कि जगत् में गुरु-कृपा बिना भगवान के दर्शन नहीं होते।

प्रह्लाद सत्त्वगुण के प्रतीक हैं। हिरण्यकशिपु तमोगुण का। सत्त्वगुण और तमोगुण का युद्ध जगत् में सदा चलता रहता है। "ईश्वर सब में है"-प्रह्लाद की ऐसी निष्ठा तुम्हें भी रखनी चाहिये। इस प्रसंग में श्री डोंगरे महाराज ने एक सुन्दर दृष्टांत दिया है।

एक संत के दो शिष्य थे। संत के संसार-त्याग का समय निकट आने पर गद्दी के लिये दोनों शिष्यों में विवाद खड़ा हो गया। संत ने दोनों को बुलाकर एक-एक फल दिया और कहा कि इस फल को ऐसे स्थान में

खाना, जहाँ तुम्हें कोई खाते हुए न देखे। एक शिष्य ने विचारा कि दरवाजा बन्द करके खाऊँगा-वहाँ कोई नहीं देखेगा, और उसने फल खा लिया। दूसरा शिष्य जहाँ-जहाँ भी गया, एकांत होने पर भी वहाँ उसे ईश्वर दिखाई दिये। इसलिये फल बिना खाये ही वह वापस आ गया। गुरुजी ने समझ लिया कि दूसरा शिष्य ही गद्दी के योग्य है।

पंजाब के मुल्तानशहर को प्रह्लाद नगर बताते हैं, जहाँ नृसिंह भगवान का अवतार हुआ था।

परमात्मा सर्वव्यापक हैं-यह समझते तो बहुत हैं, पर अनुभव थोड़ों को ही होता है।

ईश्वर सब में हैं-ऐसा समझकर जो व्यवहार करते हैं, उनका व्यवहार शुद्ध होता है।

व्यवहार में जिसके साथ कपट करोगे, वह बहुत याद आएगा।

जब मनुष्य व्यवहार करता है तो समझता है, कि मैं मन्दिर में बैठा हूँ।

व्यवहार की अतिशय शुद्धि से भक्ति में आनन्द आता है। जिनका व्यवहार शुद्ध नहीं, उनसे भक्ति नहीं हो सकती।

"मेरे सेवक में भी भगवान विराजमान हैं"-ऐसा समझने वाला स्वामी सेवक के प्रति भी कटु शब्द नहीं कहेगा। यदि सास समझे कि बहू लक्ष्मी स्वरूपा है, तो बहू भी सास को पार्वती तुल्य मानेगी।

पाप करते समय मनुष्य यह समझता है कि मुझे कोई देखता नहीं। जो यह समझता है कि ईश्वर सर्वत्र है, उसके द्वारा पाप हो ही नहीं सकता।

व्यापार करो, पर धर्म को न भूलो। पाप का भय रखकर धन्धा करो।

शास्त्र में लिखा है कि जो दान का खाता है, उसे अपने पुण्य में से कुछ देना पड़ता है। इसलिये किसी से भी मुफ्त का लेने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।

कुछ काम करो। काम करने से शरीर सुधरता है, नहीं करने से बिगड़ता है।

व्यापारी पहले नीति से व्यापार करते थे। बिना श्रम किए आया हुआ धन बुद्धि को बिगाड़ता है। दूसरों की सेवा में लगा हुआ धन बुद्धि को सुधारता है।

वैश्य को "श्रेष्ठ" माना गया है-श्रेष्ठ शब्द का अपभ्रंश सेठ है। संस्कृत भाषा माता है।

गोरा कुम्हार को मटकों से और तुलाधार को तराजू से ज्ञान प्राप्त हुआ था। तुलाधार तो कहता है कि व्यापार मेरा गुरु है। मैं किसी को कम-बेसी नहीं तौलता। जिस प्रकार तुला की डंडी सीधी रखनी पड़ती है, वैसे ही बुद्धि और वाणी को भी सरल रखता हूँ।

प्रत्येक व्यवहार को भक्तिमय बनाओ। भक्ति और व्यापार अलग-अलग नहीं हैं।

परमात्मा को हृदय में रखना ही "प्रदक्षिणा" है। बिछौने में परमात्मा को साथ रखकर सोना ही "समाधि" है। इससे काम की बाधा नहीं सताती।

तुम्हारा घर भगवान का घर है-यह समझना ही भक्ति है। घर के प्रत्येक काम को भक्तिमय बनाओ।

शृंगार विकार नहीं, भक्ति है। शृंगार में विकार न होकर शुद्ध भाव होवे, यह भी भक्ति का एक प्रकार है। शृंगार संसार को दिखाने के लिये नहीं, परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये है। गोपियाँ भी शृंगार करती हैं, पर भगवान के लिये करती हैं।

मीराबाई राजमहल में रहती थी, पर उनमें कोई विकार नहीं था।

मन्दिर में रहकर सेवा करे, पर भाव शुद्ध न होवे तो वह भक्ति नहीं है।

संसार को दिखाने के लिये कोई माला फेरे, यह भगवान को अच्छा नहीं लगता। प्रभु ने जो धर्म तुम्हारे लिये निश्चित किया है, शुद्ध भाव से उसी पर चलो। उसी धर्म का पालन भक्ति है। दीवार पर अथवा खम्भे पर थूकने से बड़ा पाप होता है।

नृसिंह भगवान खम्भे से प्रकट हुए थे।

"वास्तु-पूजा" के समय दीवार की पूजा की जाती है। दीवार में देवों का वास है।

मनुष्य जब ईश्वर से अलग होकर व्यवहार करता है, तो वह व्यवहार में दुःखी होता है। जिसकी आँखें निर्मल हैं, वही सब रीति से आँखों के द्वारा भगवान को देख सकता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

"गोविन्दंकलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषंभजे"

"मधुर मुरली को बजाते हुए दिव्यभूषण-भूषित गोविन्द को मैं भजता हूँ।"

22

प्रह्लाद ने नृसिंह भगवान से प्रार्थना की और पूछा कि – "हे पिता ! आपका आदेश है कि संसार का मोह न रखो और भजन करो। किन्तु संसार तो आकर्षण और प्रलोभनों से भरा हुआ है, उसमें भजन कैसे होगा ?

नृसिंह भगवान ने प्रह्लाद को समझाया कि "मेरे बालक सुखी रहें, इसलिये मैंने संसार को सुन्दर बनाया है। यदि मनुष्य मर्यादा को छोड़कर केवल भोगों के भोगने में ही दुःखी रहे, तो इसमें मेरा क्या दोष ? पदार्थों और विषयों की सुन्दरता जीव के सुख के लिये है।" प्रह्लाद ने पूछा–"संसार के पदार्थों की सुन्दरता में मन नहीं फँसे, इसका क्या उपाय है ?" सस्मित नृसिंह भगवान ने जवाब दिया– "इसके लिये मैंने दो अमृत बनाये हैं-नामामृत और कथामृत।"

जब मन विषयों की ओर जाए तो कथामृत और नामामृत का सहारा लेना चाहिये। जीव को इन्द्रियाँ सता न सकें, इसके लिये ये दो अमृत हैं। ये पापों को जलाने वाले और मोक्ष के प्रदाता हैं। स्वर्ग के देवों को अमृतपान से शान्ति नहीं मिलती। जो नामामृत और कथामृत का पान करते हैं, उन्हें विषय–सुख फँसा नहीं सकते।

श्रीराम जपतां सहु (सब) कष्ट जाय,
श्रीराम जपतां सर्व सुख थाय।
श्रीराम रटना रटूजो सदाय,
श्रीराम-राममय विश्व बधुजणाय।।

नाम जप में किसी साधन की जरूरत नहीं है।

प्रह्लाद ने कहा – "प्रभु मैं इन सबसे तंग आ गया हूँ।" तब भगवान ने कहा "चलो मेरे धाम में ले चलता हूँ।" प्रह्लाद ने कहा – "मैं अकेला

कैसे चलूँ ? मेरे बालमित्रों का क्या होगा ? यदि मैं जाऊँगा, तो सबके साथ जाऊँगा, अकेला नहीं।" प्रह्लादजी परम वैष्णव थे, क्योंकि संग में रहने वाले सभी के उद्धार की बात करते हैं। प्रह्लादजी निष्काम भक्त थे। वे अपने लिए कोई पदार्थ अथवा भोग नहीं माँगते। माँगते हैं, तो यही कि संसार में किसी सुख भोग का विचार ही न आवे। इन्द्रियों के सुख की इच्छा न हो, ऐसा माँगते हैं।

प्रह्लाद की तरह दिन में तीन बार प्रार्थना करो। जब सम्पत्ति की प्राप्ति हो तो प्रभु की प्रार्थना करो। जो सुख में प्रभु का स्मरण रखते हैं, उन्हें किसी भी दिन दुःख नहीं होता। सुख में ऐश्वर्य का नहीं, परमात्मा का स्मरण करो।

कभी कोई दुःख का प्रसंग उपस्थित हो तो धैर्य रखकर जब प्रार्थना करोगे, तो भगवान तुम्हें शक्ति देंगे। दुःख को सुख मानो। मन को समझाओ कि मेरे पाप बहुत अधिक हैं, उन्हें हल्का करने के लिये प्रभु ने ये दुःख भेजे हैं। दुःख कहते हैं कि जब तुम ईश्वर की शरण में जाओगे, तो वे तुम्हारे पाप का नाश करेंगे।

रात्रि में सोते समय स्तुति करो और परमात्मा से कहो कि आज का दिन सुख-रूप में बीता।

न्यायाधीश निष्ठुर बनकर सजा देता है। प्रभु दया रखकर सजा देते हैं। ईश्वर में और न्यायाधीश में इतना ही अन्तर है।

दुःख का प्रसंग आने पर घबराओ नहीं, स्तुति करो। प्रभु तुम्हारी सहायता करेंगे-मार्गदर्शन करेंगे। बेचैनी में मनुष्य की सलाह न लो। प्रभु को याद करो, कीर्तन करो और भगवान से पूछो। प्रभु तुम्हें प्रेरणा देंगे।

माता की गोद में बालक निश्चिन्त रहता है। सुखी रहना है तो भगवान की गोद में बैठो।

प्रभु-भजन के लिये बहुत पढ़ने या धन की जरूरत नहीं है। धन से सेवा करना सरल है, पर मन से सेवा करना कठिन है।

पैसों से किसी को परमात्मा नहीं मिले। भगवान कहते हैं कि मैंने तुझे १०-२० लाख दिये हैं, उनमें से एकाध लाख तू मेरे को देवे, इसमें तेरा

क्या अहसान है ? बहुत पढ़ने से भक्ति नहीं मिलती। बहुत पढ़े मनुष्यों को 'भगवद्' –नाम –जप की इच्छा नहीं होती। मनुष्य में तर्क-वितर्क करने की बुरी आदत होती है। बहुत पढ़े हुए तर्क द्वारा अर्थ को भी बदल देते हैं।

बहुत पढ़े हुए चमत्कार के सामने ही झुकते हैं, अन्यथा नहीं।

चमत्कार के पीछे नमस्कार-यह अभिमान है। चमत्कार के बिना नमस्कार, यह मानवता है। सच्चे सन्त बुद्धिपूर्वक चमत्कार नहीं करते। जो भक्ति के रंग में रंग जाता है, उसकी पैसे में अथवा प्रतिष्ठा में आसक्ति नहीं होती। सबको नमस्कार करोगे तो तुम्हारे जीवन में चमत्कार आएगा।

नास्तिकों ने जो शंकायें की उनमें से प्रत्येक का समाधान व्यासजी ने 'श्रीमद्भागवत' में किया है। सन्त जब कृपा करते हैं तो सम्पत्ति या संतति नहीं देते, विकार तथा वासनाओं का नाश करके "प्रभु दर्शन होवें" ऐसी दृष्टि देते हैं।

"पानी पीना छान के, गुरु करना जान के।"

संसार के किसी साधु सन्त में मन की भावना न बने, तो किसी महापुरुष को गुरु मानकर मन से उनकी सेवा करो। सद्गुरु जब कृपा करते हैं, तभी बुद्धि मिलती है। मन को स्थिर व पवित्र रखने के लिए सद्गुरु जरूरी हैं।

स्वतन्त्र न रहकर किसी गुरु के अधीन रहो। स्वतंत्रता मनुष्य को स्वेच्छाचारी बनाती है।

गुलाब के फूल का वजन करो। पीछे सूँघकर वजन करो। वजन एक समान रहेगा।

भगवान रस भोगी हैं। वे रस का पान करते हैं। उन्हें समर्पित किये हुए थाल में से अन्न कम नहीं होता। परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए बहुत पढ़ने की जरूरत नहीं।

व्यवहार में वैद्य पर अन्ध श्रद्धा रखते हो। सन्तों तथा भगवान में ऐसी श्रद्धा न रखना, ठीक नहीं है।

सत्कर्म करो, पीछे जीवन में चमत्कार आएगा। परमात्मा को प्रसन्न करने के दो साधन हैं - सेवा और स्मरण। प्रत्येक जीव का धर्म है कि सेवा और स्मरण करे।

सेवा व पूजा में थोड़ा अन्तर है। कर्मकाण्डी ब्राह्मण पूजा करते हैं, वैष्णव सेवा करते हैं।

जिस स्वरूप के दर्शन से तुम्हारा हृदय द्रवित होता है, उसे ही अपनाओ। इष्टदेव एक रखो।

भक्ति में निष्ठा रखने का आग्रह है-दुराग्रह का नहीं।

पूजा में मन्त्र मुख्य होता है तथा प्रेम गौण।

मन्त्र गौण होवे और प्रेम मुख्य होवे-वह सेवा है। जब सेवा में बैठो तो मूर्ति में साक्षात् भगवान हैं-ऐसा मानो।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

23
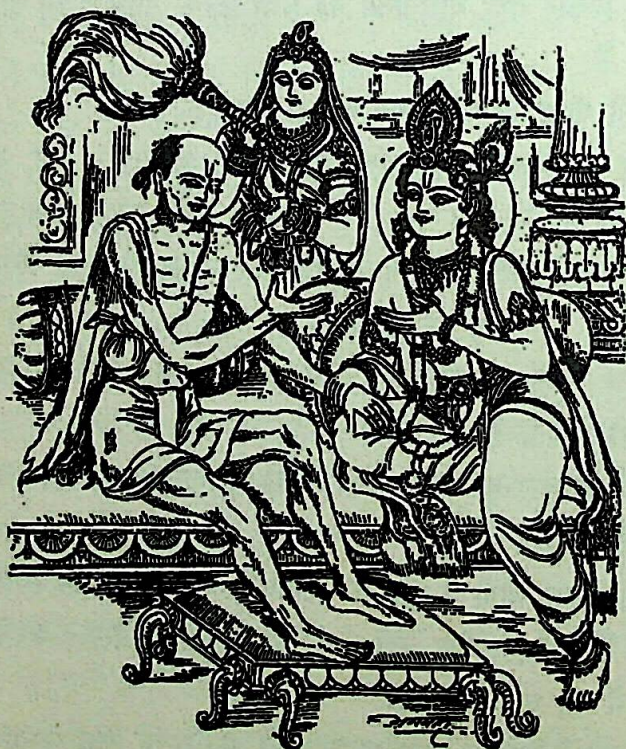
प्रह्लाद के जीवन चरित्र से यह प्रकट होता है कि माँ–बाप दुराचारी होवें और पुत्र सदाचारी होवे तो भी माँ-बाप की सद्गति होती है। परन्तु पुत्र दुराचारी होवे तथा माँ-बाप सदाचारी होवें, तो सदाचारी माँ-बाप दुर्गति को प्राप्त होते हैं। सदाचारी पुत्र के लिये नरसी मेहता ने ऐसा कहा है -

"भणे नरसियो एनु दरसन करतां, कुल एकोतर तार्‌यारे।"

संध्या होने पर एक हंस का जोड़ा एक वृक्ष पर बैठा जहाँ कौवे रहते थे। रात व्यतीत करने के लिए वे कौवों की सहमति से एक वृक्ष पर ठहर गये। सुन्दर हंसनी को देखकर कौवों की बुद्धि बिगड़ गई। दूसरे दिन कौवों ने हंसनी को रोक लिया। हंस व कौवों में खूब विवाद हुआ। अन्त में वे न्याय के लिये न्यायाधीश के पास गये।

कौआ धूर्त था। अतः वह पहले न्यायाधीश के घर पहुँचा तथा उससे कहा-तुम्हारे मरे हुए माँ-बाप कहाँ हैं, यह मैं जानता हूँ। यदि तुम मेरे पक्ष में निर्णय दोगे, तो मैं भी तुम्हारा कार्य कर दूँगा।

दूसरे दिन न्याय करते समय न्यायाधीश ने कहा प्रतियोगिता में तुम दोनों में से जो पहले हंसनी को छू लेगा, हंसनी उसी की होगी। कौवे ने हंसनी को पहले छू लिया।

न्यायाधीश ने कौवे से कहा कि अब मेरे माता–पिता को मुझे दिखलाओ। कौआ न्यायाधीश को कुरड़ी (कूड़े के ढेर) पर ले गया और बोला कि इसमें जो चींटी है, वह तेरी माँ है और मकोड़ा तुम्हारा बाप है। जो पुत्र ऐसा न्याय करता है, उसके माँ–बाप की ऐसी ही दुर्गति होती है।

सच्ची विद्या तो वह है जो मनुष्य को भक्ति की ओर ले जाए तथा उसका अन्त समय सुधारे।

वर्तमान-शिक्षण पद्धति के ऊपर श्रीडोंगरेजी का एक सुन्दर दृष्टान्त द्रष्टव्य है।

एक बार कुछ पढ़े– लिखे लोग नाव में घूमने निकले। एक ने माँझी से पूछा कि तू कितना पढ़ा है ? माँझी ने जवाब दिया कि मैं पढ़ा नहीं हूँ। मुझे तो डांड खेना आता है। पढ़े–लिखे भाई ने कहा कि तेरी तो जिन्दगी ही व्यर्थ गई। दूसरे ने पूछा कि क्या तू इतिहास जानता है ? माँझी ने नाहीं की। इस पर दूसरे ने कहा कि तेरी आधी जिन्दगी बेकार गई। तीसरे ने पूछा कि क्या तेरे को साहित्य का ज्ञान है ? क्या तूने शेक्सपियर व कालिदास के नाटकों को पढ़ा है ? माँझी के ना करने पर उसने कहा कि तेरी पौनी जिन्दगी नाकाम ही बीती। इतने में सागर में तूफान उठा व भंवरें पड़ने लगी। इसे देखकर माँझी ने पढ़े–लिखे लोगों से पूछा कि तुमको तैरना तो आता हैं न ? सबके ना कहने पर माँझी ने कहा कि मेरी तो पौनी जिन्दगी पानी में गई, पर तुम्हारी तो सारी जिन्दगी अब पानी में जाएगी।

यह संसार भवसागर है। भवसागर को पार करने के लिये भगवान का भजन ही श्रेष्ठ विद्या है।

अतः जब सेवा में बैठो, तो सर्वप्रथम पन्द्रह–बीस मिनट ध्यान करो।

तुम ठाकुरजी को क्या अर्पण करते हो, वे यह नहीं देखते। किस भाव से देते हो, यह देखते हैं। प्रभु-सेवा के समय कोई आवे, तो उससे बिना नजर मिलाये, उसके सम्मुख हाथ जोड़ो। नजर तो भगवान में ही रखो।

प्रभु को अर्पण किये बिना जो खाता है, वह दूसरे जन्म में भूखा रहता है। प्रेमपूर्वक समर्पण करोगे तो तुम सुखी रहोगे।

ठाकुरजी को समर्पण करने से पहले चखो नहीं। पवित्रता पूर्वक भोजन बनाकर भोग लगाओ।

जगत् से सम्बन्ध टूट गया है, इस भाव से सेवा करो। मन में से लौकिक सम्बन्ध निकाल दो। थोड़ी ही सेवा करो, पर प्रेम में तन्मय होकर करो।

धरती में चार दाने डालोगे, तो तुम्हें चार हजार दाने देवेगी। इसी तरह भगवान को जो दोगे, उसे अनगिनत करके भगवान तुम्हें देंगे।

बालकों को भक्ति और धर्म के संस्कारों से युक्त शिक्षण दो। बाल्यावस्था में हृदय कोमल होता है। इसलिये जो संस्कार दोगे, वैसा ही असर पड़ेगा। बालक बड़ों का अनुकरण करते हैं।

सेवा में दास्यभाव रहे तो दैन्य जल्दी आता है। अज्ञानी बालक की तरह सेवा करो। भगवान नहीं बोलें, तो भी उनके साथ बातें करो।

मन और आँखें जब तक एकाग्र नहीं होवें तब तक अपूर्व शृंगार नहीं हो सकता। ब्रह्माण्ड का आकार चिरमी (गुंजा) के समान था।

परमात्मा सौन्दर्य-सुधानिधि हैं। मानव-मन की मलिनता के कारण वे दिखाई नहीं पड़ते।

संसार कुएँ के समान तो है, पर कोई इसमें डूब मरे, इसके लिए नहीं है। दो प्रकार के अमृत का पान करोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जाएगा। जो कथामृत और नामामृत का पान करता है, उसका मन नहीं बिगड़ता। बिगड़े भी तो सुधर जाएगा।

भगवान राम ने इसलिये लीला की-कि मनुष्य उसका अनुकरण करे, उनमें तन्मय होकर पाप कर्मों को भूल जाए।

जब-जब मन चंचल होवे नामामृत और कथामृत का पान करो।

कथा में बाधा आवे तो समझो कि मेरे पाप अधिक हैं।

वृथा बोलने के समान कोई पाप नहीं है। माप - तौल कर बोलो। जितना जरूरी है, उतना ही बोलो। वाणी को संयमित करो।

अन्त समय में इच्छा होने पर जीव बोल नहीं पाता।

मन में पाप भरे हुए हैं। मन में देखोगे तो तुम्हें विश्वास होगा कि तुम्हारे मन में जितने पाप भरे हुए हैं, उतने संसार में भी नहीं हैं।

एकाध बार का देखा हुआ सुन्दर संसारी दृश्य भी मन में बैठ जाता है, पर भगवद्-स्मरण के समय का स्वरूप मन में नहीं बैठता।

थोड़ा-सा लाभ मिलने पर मनुष्य हँसता है, थोड़ा नुकसान होने पर रोता है।

मन ऐसा है कि अपने प्रति किये गये उपकार को भूल जाता है, और अपकार को याद रखता है।

मन को सुधारने का उपाय है। मन को उलटा करो तो "नम" बनेगा। सबका मन से नमन करो, सभी प्रभु के स्वरूप हैं।

नमन और नाम इन दो उपायों से मन सुधरता है। जगत् में कोई खराब नहीं है। अपना मन ही खराब है।

प्रह्लादजी ने माँगा था–"हे नाथ ! मेरी सुख भोगने की इच्छा कभी न होवे।"

प्रभु जो सुख देवें, उसे भगवान के प्रसाद रूप में ग्रहण करो। सुख की लालसा के उत्पन्न होने पर शक्ति, बुद्धि और पुण्य का क्षय होता है।

'भगवद्-कृपा' से जो मिले, उसे 'भगवद्-प्रसाद' समझकर भोगो, वासना रखकर नहीं।

कथा के एकाध प्रसंग की धारणा होने पर भी मन सुधरता है।

"भवसागर में जीवननैया"

नैया मेरी तनक सी बोझी पाथर भार।
चहुँ दिसि अति भौंरे उठत, केवट है मतवार।।
केवट है मतवार, नाव मंझधारहि आनी।
आंधी उठी प्रचण्ड, तेहुँ पर बरसत पानी।।
कह गिरधर कविराय, नाथ हो तुमहि खेवैया।
उठै दया को डांड, घाट पर आवे नैया।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

24

वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा जीव को ईश्वर से मिलाने की पगडंडी के समान है। सावधानीपूर्वक जीवन बिताने पर संन्यासी के जैसा आनन्द गृहस्थ को भी मिलता है। गृहस्थाश्रम में स्त्री काम भोग का साधन नहीं, धर्म का साधन है। इसलिये पत्नी धर्मपत्नी कही गयी है। स्त्री का संग सत्संग है। संन्यासी भी गृहस्थ के आँगन में आते हैं। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है।

गृहस्थाश्रमी को बहुत कठोर अथवा बहुत नरम नहीं होना चाहिये। इसी तरह स्त्री में अति ममता भी नहीं रखनी चाहिये। स्त्री के अधीन रहना भी पाप है।

गृहस्थाश्रम में स्त्री के वशीभूत रहने पर क्या विपत्ति आ सकती है, इसका एक सुन्दर और समझने लायक दृष्टांत श्री डोंगरे महाराज ने दिया है -

एक महात्मा ने एक राजा को पशु-पक्षियों की बोली समझने का ज्ञान देते हुए सावधान किया कि यह बात किसी दूसरे से कह दोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। एक दिन राजा-रानी भोजन कर रहे थे। एक चींटी ने रानी की थाली में से अन्न लेकर राजा की थाली में डाल दिया। यह देखकर दूसरी चींटी ने कहा कि रानी का जूठा अन्न राजा को खिलाना उचित नहीं है। यह सुनकर राजा हँसा। रानी द्वारा हँसने का कारण पूछने पर राजा ने क़हा कि यह न पूछो तो ही अच्छा है। रानी ने हठ पकड़ लिया। राजा ने कहा कि बताने पर मेरी मृत्यु हो जावेगी। रानी ने कहा -"भले ही हो जाए"। राजा कामान्ध था। उसने कहा तो चलो, काशी चलें। वहाँ चलकर मैं तुम्हें बताऊँगा।

काशी जाते हुए रास्ते में वे जंगल पार कर रहे थे। उन्होंने एक बकरे और बकरी को देखा। बकरी ने बकरे से कहा-"तुम कुएँ के भीतर से मेरे

लिये घास लाओ, नहीं तो मैं डूब मरूँगी ?" बकरे ने कहा – "घास लाने में यदि मैं गिरकर मर जाऊँगा तो?" बकरी ने जवाब दिया–"तुम्हारा जो होना होवे सो होवे। पर मेरे लिये घास लाओ।" यह सुनकर बकरे ने कहा–"मैं इस राजा के समान मूर्ख नहीं हूँ कि स्त्री के पीछे मरने को तैयार हो जाऊँ। राजा के कान में बकरे के शब्द पड़ने पर राजा का मोह भंग हो गया। उसे लगा कि बकरा जो उपदेश दे रहा है, वह ठीक है। हठ छुड़ाने के लिये राजा ने रानी पर चाबुक से प्रहार किया और रानी ने अपना हठ छोड़ दिया। गृहस्थ को संतों के सत्संग और सद्गुरु के आश्रय में रहना आवश्यक है। गृहस्थ जिसे "अर्थ" कहता है, उसे "अनर्थ" समझ कर लोभ पर विजय प्राप्त करो।

इन्द्रियों को वश में रखने के लिये प्रतिदिन परमात्मा का ध्यान करो।

जो आँखों के द्वारा अधिक पाप करता है, वह दूसरे जन्म में कौवा होता है।

मनुष्य में नाम और रूप का मोह होता है।

परमात्मा को गुप्त रहना अच्छा लगता है, जीव को प्रसिद्धि अच्छी लगती है।

फल की चाह रखे बिना सत्कर्म करो।

अपने मान का ख्याल न करो। मनुष्य कद्र नहीं कर सकता। कद्र तो ऊपर होती है।

संसार सरोवर में मनुष्य रमण करता है। जिस घर में मनुष्य क्रीड़ा करता है, उसी घर में उसका सूक्ष्म काल बैठा रहता है। पर जीव उसे देखता नहीं।

जब मनुष्य जन्म लेता है, उसी समय उसके मरने का समय और स्थान भी निश्चित हो जाता है।

सबमें श्रीकृष्ण के दर्शन ही "सुदर्शन" हैं। सुदर्शन कालचक्र का भी दमन कर सकता है।

पूर्वजन्म के अतिदृढ़ संस्कारों का ही स्मरण होता है।

साधु अथवा ब्राह्मण जो भी प्रेमपूर्वक देवें–शिरोधार्य करो।

अति सम्पत्ति में जो अपने स्वरूप को भूल जाता है, उसे अति दारिद्रय मिलता है।

फूल में लक्ष्मीजी का वास है, उसे पाँव तले रौंदो नहीं।

सायंकाल में जिस घर में क्लेश होवे या स्त्री की ताड़ना होवे, वहाँ लक्ष्मीजी नहीं ठहरती।

सायंकाल में सौभाग्यवती को मस्तक खुला नहीं रखना चाहिये।

कोई महत्त्व का कार्य करना होवे तो शत्रु के साथ भी मित्रभाव की स्थापना करो। मान देने पर और मधुर वाणी बोलने पर शत्रु भी मित्र हो जाता है।

संसार रूपी समुद्र का मन्थन विवेक से करना है। जब मनुष्य यौवनावस्था में पदार्पण करता है, तो पूर्व जीवन के कितने ही विषय–विकार जाग उठते हैं। इसलिये सावधान रहो और मन को समुद्र की तरह स्थिर रखो।

जब तक मन के पास कोई आधार नहीं होगा, वह स्थिर नहीं होगा। मन को प्रभु का आधार दो। धीरे–धीरे ध्यान का अभ्यास बढ़ाओ।

सतत एक ही स्वरूप का ध्यान करो। यदि तुम्हें स्वरूप-सेवा और नाम का आधार मिल जाएगा, तो मन स्थिर हो जाएगा।

मन को स्थिर करके जो सेवा करता है, उसे प्रभु अमृत देते हैं। अनन्य भक्ति रूपी अमृत जिसे प्राप्त हो गया, वह अमर हो जाता है। भगवान पहले अमृत नहीं देते, जहर देते हैं। परीक्षा करने के बाद ही अमृत देते हैं।

अधिक भोजन, निद्रा, कर्कश वाणी आदि सभी जहर हैं। अमृत उन्हीं को मिलता है जो सारे जहरों को पचा लेता है।

मस्तक पर ज्ञान–गंगा को धारण करके सहन करो।

दूसरे की भलाई के लिये स्वयं का बिगाड़ करे, वह शिव है। परोपकार के समान श्रेष्ठ धर्म नहीं है। कड़वे शब्दों को पी जाओ, पेट में न रखो।

निन्दा अथवा स्तुति शब्द-रूप हैं, और शब्द आकाश में विलीन हो जाता है।

आँख में अमृत और अन्तर में प्रेम रखो।

जिसकी दृष्टि सूक्ष्म है, उसे ही अमृत मिलता है। "स्थूल" का अर्थ है देह-दृष्टि, और "सूक्ष्म" अर्थात् आत्म-दृष्टि। जिसकी आत्मदृष्टि स्थिर हो जाती है, उसे भक्ति रूपी अमृत मिलता है।

किसी को ताना देने अथवा कटु शब्द कहने के लिये प्रभु ने तुम्हें जीभ नहीं दी। जीभ मीठी मधुर वाणी बोलने के लिये है।

मोह के सौन्दर्य में जिसका मन फँसता है, उसे अमृत नहीं मिलता। श्रीकृष्ण में जिसका मन फँसता है, उसे ही अमृत की प्राप्ति होती है।

यदि तुम असावधान रहोगे तो माया तुम्हें कष्ट देगी।

परमात्मा किसी को मारता नहीं, माया ही मारती है।

पति-पत्नी का लक्ष्य एक होना चाहिये। दोनों के मिलकर कार्य करने से गृहस्थाश्रम दिव्य बनता है।

स्वप्न में मन की परीक्षा होती है। तुम्हें जो स्वप्न में दिखे, तुम्हारा मन वैसा ही है, ऐसा समझो।

लकड़ी में अग्नि के होने पर भी,जब तक लकड़ी में की अलौकिक अग्नि का लौकिक अग्नि के साथ संयोग न होवे तब तक वह प्रकट नहीं होती।

ईश्वर सर्वत्र है, पर माया के आवरण के कारण दिखते नहीं हैं।

सकल पतित पावन किये, अधम उधारनहार।
बिरद बिचारो बापजी, जन रज्जब की बार।।

–रज्जबजी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

मनुष्य-शरीर रथ है। इन्द्रियाँ रथ के घोड़े हैं। मन इन्द्रियों का नियन्त्रक और इन्द्रिय रूपी घोड़ों की लगाम है। शब्द आदि विषय अलग अलग रास्ते हैं। बुद्धि सारथी है और चित्त रथ को बाँधने वाला बन्धन है। प्राण रथ की धुरी है। धर्म व अधर्म रथ की सीढ़ियाँ हैं। जीव रथी है। ॐकार धनुष है, शुद्ध जीव बाण है, परब्रह्म बाण का लक्ष्य है। लोभ, शोक, मोह, राग, द्वेष, मद, मान, अपमान, माया, हिंसा, मत्सर, निद्रा, क्षुधा, असूया आदि शत्रुओं का इस बाण से नाश करना है।

गृहस्थाश्रम भक्ति में बाधक नहीं साधक है। पति-पत्नी के एक दूसरे के अनुकूल होकर रहने पर तो गृहस्थाश्रम संन्यास से भी अधिक दीप्त होता है। गृहस्थ के घर परमात्मा भी प्रकट होते हैं। बालक रूप में परमात्मा को गोद में खिलानेवाले गृहस्थ श्रेष्ठ हैं।

जो गृहस्थाश्रम में पूर्ण संयम का पालन करता है और भक्ति को बढ़ाता है, उसके घर भगवान जन्म लेते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक हैं। भगवान के सब जगह विराजमान रहने पर भी, दृष्टि में माया का आवरण रहने के कारण, वे दिखते नहीं।

एक छोटा बादल का टुकड़ा भी सूर्य को ढक देता है। माया का आवरण दूर करने के लिये तुम्हें अदिति होना पड़ेगा।

अति लोभी का मन "द्रव्यकार" होता है। यदि मन श्रीकृष्ण का चिन्तन करे तो "कृष्णाकार" बन जावे। ठाकुरजी के सौन्दर्य में यदि आँख ठहर जावे, तो बेड़ा पार है। यदि आँख व मन प्रभु के सौन्दर्य में फँसें, तो माया का परदा दूर हो जाता है।

वैष्णव भगवान कों आँखों में रखते हैं। आँख के द्वारा परमात्मा को मन के भीतर उतारो। भीतर रहने वाला मन बुद्धि को प्रकाश देता है।

अन्तर्यामी नारायण व बहिर्यामी नारायण दोनों जब एकत्र होते हैं, तो एकरूपता आती है।

अन्तर्यामी नारायण दीपक की तरह हैं। वे केवल प्रकाश देते हैं। दीपक के प्रकाश में रहने वाला दुःखी नहीं रहता। अन्तर्यामी भगवान को प्रकट करने के लिये बाहर ठाकुरजी को विराजमान करना पड़ेगा। बार-बार ठाकुरजी को निहारो।

बाहर विराजमान नारायण और अन्दर विराजमान नारायण जब एक रूप हो जाते हैं, तभी भगवान के सच्चे दर्शन होते हैं। बाहर का आकार मत देखो। आकार में विकार है। विकार से मन बिगड़ता है। जो सबमें ईश्वर के दर्शन करता है, उसकी मनोवृत्ति निर्विकार तथा ब्रह्ममय बनती है।

यज्ञोपवीत तो वेदों का दिया हुआ प्रतीक है। जिसकी लंगोटी शुद्ध है, वह भाग्यशाली है।

जगत् के महापुरुष ब्रह्मचर्य का पालन करके महान् हुए हैं। जिसे ब्रह्मचर्य का पालन करना है, वह काठ की पुतली का भी स्पर्श नहीं करता।

स्पर्श करने के बाद शायद तन पर तो काबू रहे, पर मन बिगड़ता है। स्त्री-पुरुष एक दूसरे का स्पर्श न करें–यह मर्यादा है।

इन्द्रियाँ तुम्हारे अधीन रहेंगी तो तुम्हारे साथ मित्रवत् रहेंगी। इन्द्रियों को तुम्हारे पीछे चलना है। तुम उनके पीछे न दौड़ो।

काम पहले आँखों में आता है, फिर मन में प्रवेश करता है। पहले आँख बिगड़ती है, फिर मन बिगड़ता है। अन्त में वाणी, व्यवहार, जीवन तथा नाम बिगड़ते हैं।

काम-भाव से स्त्री को देखनेवाला रावण जैसा है।

ब्रह्मचर्य का पालन करना हो तो पेट हल्का रखो। भोजन का सात्त्विक होना आवश्यक है।

स्वधर्म का पालन किये बिना यदि तुम सेवा करोगे, तो वह सेवा प्रभु को अच्छी नहीं लगेगी। यदि ब्राह्मण नियमपूर्वक त्रिकाल संध्या करे तो

उसके भीख माँगने का समय नहीं आता। रात्रि के पाप 'प्रातः–संध्या' से, दिन के पाप 'सायं संध्या' से तथा अन्न–जल के पाप 'मध्याह्न –संध्या से नष्ट हो जाते हैं। भारत का पतन सहशिक्षा व सिनेमा से हुआ है। शास्त्र का वचन है कि स्त्री अग्निरूप है व पुरुष घी का घड़ा है। दोनों के पास पास होने पर घी पिघलेगा ही।

यदि विद्यार्थी विलासी जीवन अपनाएगा, तो विद्या का नाश होगा।

बिना परिचय के ही किसी को प्रणाम करने की भावना जागे, तो समझो कि उसमें परमात्मा का विशेष अंश है।

ब्राह्मणों में तपस्वी श्रेष्ठ हैं
क्षत्रियों में बलवान श्रेष्ठ हैं
वैश्य को धन से श्रेष्ठ माना गया है।
शूद्र आयु से श्रेष्ठ समझा जाता है।
जब तक विकार व वासना नहीं है, तभी तक सौन्दर्य है।

जिसके चरण धोये जाते हैं, उसके पुण्यों का क्षय होता है। चरण धोने वाले को वे पुण्य मिलते हैं। जहाँ उत्कट प्रेम जागता है, वहाँ समर्पण की भावना भी जग जाती है। प्रेम देता ही है, लेने की इच्छा नहीं करता। माँगने जाओ, तो पहले प्रशंसा करो। शास्त्र में आत्म–परिचय देने का निषेध है। अपने मुख से परिचय देने पर पुण्य का नाश होता है।

यदि ब्राह्मण अतिशय संग्रह के लिये दान लेता है, तो उसे पाप होता है।

लाभ से लोभ बढ़ता है। सन्तोष नहीं मिलता।

"मेरा क्या है ?" ऐसा जो मनुष्य समझे तो कभी कलह नहीं होती।

तन जब तुम्हारा नहीं है, तो धन तुम्हारा कैसे होगा ?

दान देने का अधिकार गृहस्थ को दिया गया है। दान में विवेक रखो। ऐसा दान दो कि घर के बालक कष्ट न पावें।

आय का पाँचवाँ हिस्सा अलग निकाल दो।

दान से धन की शुद्धि, स्नान से तन की शुद्धि तथा ध्यान से मन की शुद्धि होती है।

जिसका धन शुद्ध नहीं, उसका व्यवहार भी शुद्ध नहीं।

यदि पाँचवाँ भाग नहीं तो दसवाँ भाग ही अलग करो।

एक भाग का उपयोग दान देने में करो, एक भाग का उपयोग यश के लिए करो तथा एक भाग संग्रह करो।

लोगों का पैसा फैशन तथा व्यसन में जाता है।

कलियुग के लोग धन को ही आदर देते हैं।

जब तक मैं हूँ तब तक "मेरा" और मरने के बाद "तुम्हारा"- ऐसी भावना रखो।

यदि सन्मार्ग में सम्पत्ति का सदुपयोग करोगे, तो लक्ष्मी माता तुम्हें नारायण की गोद में बैठावेंगी। जीव सुख में साथ देता है। शिव दुःख में साथ देते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

26

वामन–चरित्र का शाब्दिक वर्णन करते हुए श्रीडोंगरे महाराज ने लक्ष्यार्थ से अनेक बातें समझायी हैं।

बलि जीवात्मा है और वामन परमात्मा हैं। बलि राजा के गुरु शुक्राचार्य हैं। शुक्र अर्थात् वीर्य। जो वीर्य से ब्रह्मचारी है, उसे कोई मार नहीं सकता। इसलिए बलि को कोई मार नहीं सका।

शरीरबल, बुद्धिबल और ज्ञानबल से प्रेमबल श्रेष्ठ है। बलि ने परमात्मा के साथ प्रेम किया था, इसलिए भगवान ने उसके घर आकर भिक्षा माँगी।

स्वर्ग का राज्य तो इन्द्र को दिया, पर पाताल का राज्य बलि को दिया। भगवान स्वयं पाताल के द्वार पर पहरा देते हैं।

जहाँ नारायण रखवाली करते होवें, वहाँ बिना आमंत्रण के स्वयं लक्ष्मीजी आती हैं। लक्ष्मीजी ब्राह्मणी के वेश में आईं। बलिराजा से कहती है कि मेरे कोई भाई नहीं है और तुम्हारे कोई बहिन नहीं है। इसलिए तू मेरा धर्म भाई बन। बलि इस बात को मान लेता है और धर्म बहिन को प्रणाम करता है।

श्रावण की पूर्णिमा को बहिन भाई के हाथ पर राखी बाँधती है। बलि राजा राखी बँधवाते हैं और बदले में बहिन से कुछ माँगने को कहते हैं। लक्ष्मीजी को माँगने में संकोच करते देख कर बलिराजा कहते हैं कि तुम्हें जो अच्छा लगे वह माँगो। जो वस्तु तुम्हारे यहाँ नहीं होवे, वह बिना संकोच के माँगो, मैं दूँगा।

लक्ष्मीजी कहती हैं कि मेरे यहाँ किसी बात की कमी नहीं है। मुझे तो तुम्हारे यहाँ पहरा देने वाले की जरूरत है। तब बलि ने पूछा क्या यह तुम्हारा कोई सम्बन्धी है ? लक्ष्मीजी ने जवाब दिया कि ये तो मेरे सर्वस्व

श्रीहरि नारायण हैं। इस तरह बंधन में पड़े प्रभु को लक्ष्मीजी दान-याचना द्वारा छुड़ाती हैं।

जिसमें प्रेम-बल अत्यधिक होता है, उसके आँगन में प्रभु दान लेने आते हैं। प्रेम से परमात्मा को बाँधने वाला जीव माया से मुक्त रहता है।

परमात्मा तीन पैरों की माँग करते हैं। वे तीन पग हैं-तन, मन और धन।

धन से सेवा करने से धन में रहने वाली ममता कम होती है। तन से सेवा करने से देहाभिमान में कमी आती है और मन से सेवा करने पर थकान का अनुभव नहीं होता।

तन, मन और धन भगवान को अर्पण करने पर जीव और ब्रह्म का मिलन होता है।

दान देते समय जब तुम लेने वाले को परमात्मा का रूप समझकर दान दोगे, तभी दान सफल होगा।

अभिमान को मारने के लिए दान करना है।

भगवान को कौन दे सकता है ? वैष्णव भगवान को भेंट अर्पित करते हैं।

पति-पत्नी मिलकर "तत्त्व" बनता है। पति के शरीर पर पत्नी का अधिकार है।

मस्तिष्क में बुद्धि है, बुद्धि में काम है और यह काम जीव को हैरान करता है। इसलिये मस्तक पर किसी संत का हाथ रहे, तो काम का नाश होगा। इन्द्रियों के द्वार पर भगवान विराजमान रहें, तो काम का प्रवेश नहीं हो सकता।

श्रीराम "मर्यादा" पुरुष हैं। श्रीकृष्ण "पुष्टि" पुरुष हैं।

भागवत में रामायण की कथा आती है। पर रामायण में श्रीकृष्ण की कथा नहीं आती।

राम के बिना रावण नहीं मरता।

श्रीकृष्ण जो कहते हैं वह करना है, और श्रीराम जो करते हैं वह करना है।

कृष्ण –चरित्र का आरम्भ पूतना चरित्र से होता है। क्या तुम जहर पी सकते हो ?

श्रीराम समाज को शिक्षण देने के लिये जन्मे थे।

रासलीला की कथा कहने वाले श्रीशुकदेवजी की दृष्टि में स्त्री–पुरुष का भेद नहीं था। वे ऐसे निर्विकार थे कि उनमें काम की गन्ध भी नहीं थी। यह कथा जीव और ईश्वर के दिव्य मिलन की कथा है।

जिस प्रकार सूर्य के नजदीक अंधकार की पहुँच नहीं है, वैसे ही श्रीकृष्ण के पास भी काम नहीं जा सकता।

श्रीकृष्ण का नाम है "अच्युतम्"। अच्युत शब्द का अर्थ है, जिसे काम का स्पर्श नहीं होवे, वह।

शुकदेवजी संन्यासियों के आचार्य हैं और शंकराचार्य के गुरु हैं। वे गृहस्थों के साथ सम्बन्ध नहीं रखते। महान संन्यासी होने पर भी वे राजा–रानी की कथा कहते हैं।

भागवत् परमहंसों की कथा है, परमहंस संहिता है।

स्त्री बोध का साधन है। बहुत होने पर भी जो संन्यासी का जीवन बिताता है, वह मनुष्य श्रेष्ठ है।

भक्ति में मुख्य रूप से मन से ही भजन करना है। भोजन, सेवा, विवाह और मरण इन चार कामों में किसी की बदली नहीं चलती। ये चार तो स्वयं ही करने के होते हैं।

भगवान मुक्ति तो देते हैं पर भक्ति नहीं देते। क्योंकि जिसे भक्ति देते हैं, उन्हें उसकी शरण में स्वयं रहना पड़ता है।

सद्वासना से भक्ति पुष्ट होती है। दुर्वासना से भक्ति छिन्न भिन्न होती है।

यदि तुम पर निन्दा का असर होवे, तो समझो कि तुम वैष्णव नहीं हो।

कर्कश वाणी सहन करने वाला सुखी होता है। कर्कश वाणी बोलने वाला दुःखी होता है।

कर्कश वाणी से पतिदेव को कष्ट देवे, वह कैकेयी। जिसको सुख भोगने की इच्छा नहीं रहती, वह कभी दुःखी नहीं होता।

जगत् काल के वश में है, पर काल तो परमात्मा के अधीन है।

जब अनेकों वैष्णवों की आतुरता बढ़ती है, तो भगवान प्रकट होते हैं।

जीभ को बोलना तो आता है, पर वह देख नहीं सकती, क्योंकि वह अंधी है।

अतिशय आनन्द आँख में समा नहीं सकता। अतएव वह धीरे-धीरे आँखों में से बाहर निकलता है।

जो रात्रि में जागरण करता है, उसे परमात्मा के दर्शन होते हैं। जो काम की मार नहीं खाता, वही रात्रि में जाग्रत रहता है।

जब नाम और रूप की पूर्ण विस्मृति हो जाती है, तभी ब्रह्म के दर्शन होते हैं।

देह-भान भूलने के लिए उत्सव है। उत्सव दो प्रकार के हैं जीवकृत और ईशकृत।

जब ध्रुवजी आये तो परमात्मा ने वैकुण्ठ में उत्सव किया था।

श्रीनाथजी हाथ ऊँचा करके सबको बुलाते हैं कि "यहाँ आओ। तुम्हें शांति और आनन्द प्रदान करूँगा।" जीव मात्र को परमात्मा बुलाते हैं।

सच्चा आनन्द जगत् में नहीं, जगत् को भूलने में है। ध्यान करते-करते एक दिन ऐसा आएगा कि घर को भूल जाओगे, स्वयं को भी भूल जाओगे। इस प्रकार के ध्यान से ध्येय में मिलन होता है और जीव कृतार्थ हो जाता है।

जीव जब ईश्वर के साथ एकरूप हो जाता है, तो उसे "कैवल्य मुक्ति" कहते हैं। यह मुक्ति ज्ञानमार्गी को ही मिलती है।

भावना के अनुरूप वैष्णव की मुक्ति "भागवती मुक्ति" कही जाती है।

दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त।
चित आवै सो लीजिए, यौं साधू सुमरैं संत।।

–दादूदयाल

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

27

अम्बरीष भक्ति के प्रतीक हैं। अम्बर का अर्थ है आकाश और ईश का अर्थ है ईश्वर। आकाश अन्दर और बाहर दोनों जगह है। जिसके भीतर और बाहर सर्वत्र ईश्वर है, वह अम्बरीष है।

भगवान हृषिकेश इन्द्रियों के स्वामी हैं। भक्त अपनी इन्द्रियों का अर्पण परमात्मा के चरणों में करता है।

अम्बरीष राजा थे। घर में अनेक नौकर–चाकर थे। फिर भी यह मान कर कि मैं ठाकुरजी का दास हूँ, वे स्वयं सेवा करते थे।

अम्बरीष राजा ने विधिपूर्वक एकादशी का व्रत किया। पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन- इन ग्यारह इन्द्रियों को जो प्रभु में लगाये रखे–वह एकादशी व्रत है।

एकादशी के पारायण के समय दुर्वासा मुनि आये। राजा अम्बरीष ने मुनि से प्रसाद ग्रहण करने की विनती की। दुर्वासा ने कहा कि "मेरा मध्याह्न-कर्म बाकी है, वह सम्पादित करके आता हूँ।" ऐसा कहकर चले गये।

समय बीतने लगा। त्रयोदशी के पहले पारणा नहीं होवे तो व्रत का भंग होता है। अतएव ब्राह्मणों की आज्ञा से राजा ने जल-पान करके पारायण किया। पीछे दुर्वासा आये। मुझे आमन्त्रण देकर भी राजा ने पारणा कर लिया, यह जानकर बड़े क्रोधित हुए। राजा ने विनयपूर्वक कहा कि मैंने भोजन नहीं किया है। व्रत का भंग न होवे इसलिये सिर्फ जल ही पान किया है। क्रोध में मुनि ने कुछ भी नहीं सुना और अपनी जटा से कृत्या उत्पन्न की। कृत्या से राजा को मार डालने को कहा।

कृत्या अम्बरीष को मारने दौड़ी। उसी समय सुदर्शन चक्र ने आकर कृत्या का विनाश कर दिया और दुर्वासा के पीछे चला। वैकुण्ठ में भगवान

नारायण के पास जाकर दुर्वासा ने सुदर्शन चक्र से बचाने की प्रार्थना की। भगवान ने कहा कि जो वैष्णव अनन्य भाव से मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं अपना सर्वस्व देता हूँ। मैं तो भक्त के वश में हूँ। इस समय सुदर्शन चक्र अम्बरीष की आज्ञा में है।

अन्त में दुर्वासा राजा अम्बरीष के पास आए और अम्बरीष ने सुदर्शन चक्र को शांत किया।

दुर्वासा अर्थात् दुर्वासना।

वेदों का अन्त नहीं है। पुराणों का पार नहीं है। रामायण में सौ करोड़ मंत्र थे। उन्हें तीन भागों में बाँटने पर एक श्लोक बढ़ गया। देव, मानव तथा दानव तीनों ने शंकरजी से कहा कि यह श्लोक हमें दो। श्लोक में बत्तीस अक्षर थे। शिवजी ने विभाजन किया। प्रत्येक को दस-दस अक्षर दिये। दो अक्षर बचे। इसके लिये विवाद न होवे, अतएव दो अक्षरों को उन्होंने स्वयं रख लिया। **ये दो अक्षर हैं–राम।**

शिवजी तो "राम-राम" भजते हैं। उन्हें लक्ष्मी की जरूरत नहीं है। तुम भी श्रीरामनाम का जप करो, श्रीरामनामामृत का पान करो।

शिवजी का दरबार सबके लिये सदा खुला रहता है। उनके दरबार में देव, राक्षस, मनुष्य सभी आते हैं। राक्षसों को भी रामायण का पाठ अच्छा लगता है। रावण को भी रामायण का पाठ करना अच्छा लगता था।

यदि मनुष्य चिता-भस्म का स्पर्श करे, तो स्नान करना पड़ता है। शिवजी जो करते हैं वह अनुकरणीय नहीं है। जैसा कहते हैं, वैसा करना है।

दर्शन का सच्चा आनन्द तभी आता है जब चार नेत्र परस्पर मिलते हैं। जो भगवान की मर्यादा का पालन करते हैं, उन्हें भगवान राम दृष्टि प्रदान करते हैं।

सभी जीव कम-बेसी भक्ति करते हैं। मनुष्य की भक्ति तभी सफल होती है, जब वह धर्म की मर्यादा में रहता है।

श्रीकृष्ण धर्म के पक्षपाती हैं। धर्म की विजय के लिये वे अधर्माचरण करने में भी नहीं अटकते। धर्म की हार होवे, यह ईश्वर को अच्छा नहीं

लगता। पाण्डवों को विजय दिलाने के लिए ईश्वर ने अनेक बार कपट किया था।

प्रभु ने जिसके लिये जो धर्म निश्चित कर रक्खा है, उसका पालन न करके यदि कोई मन्दिर में दर्शन करने जावे, तो भगवान खुश नहीं होते।

मेरा धर्म मेरे प्रभु ने निश्चित किया है-इस विश्वास से उसका पालन करो।

समुद्र, सूर्य और चन्द्र ऐसे महान् तत्त्व परमात्मा की मर्यादा में रहते हैं। एक मनुष्य ही ऐसा है, जो धन को पाकर मर्यादा में नहीं रहता। जो मर्यादा में नहीं रहता, उस पर प्रभु कोप करते हैं।

धर्म ही सच्चा धन है। मृत्यु के पीछे धर्म ही साथ देता है। धर्म पीछे-पीछे चलता है, जबकि दूसरी वस्तुएँ यहीं पड़ी रह जाती हैं।

भगवान राम का कहना है कि मुझे प्रसन्न रखने के लिये मेरे आदर्शों को ग्रहण करो। फूल के हार अथवा प्रसाद आदि की मुझे जरूरत नहीं है। मेरे जीवन के अनुसार धर्म का पालन करते हुये "मर्यादित जीवन" बिताओ।

तुम्हें अच्छा लगे या न लगे, पर बड़ों की आज्ञा में रहो। कैकेयी ने रामचन्द्र से वन में जाने को कहा, तब श्रीराम ने यह नहीं पूछा था कि वन जाने को मुझे क्यों कहती हो? वे तो कैकेयी को प्रणाम कर, वन में चले गये।

रामचन्द्रजी की मातृ-पितृ भक्ति, उदारता, भ्रातृभाव, सदाचार, एकपत्नीव्रत, आज्ञाकारिता आदि हम सबके लिये बहुत सीखने की बातें हैं।

श्रीराम विनय की **"मर्यादा-मूर्ति"** हैं। रामजी के ऐसा बंधु प्रेम अन्यत्र नहीं है। जो लोभ से प्रेरित होकर भाई को छोड़ता है, वह कभी भक्ति नहीं कर सकता। सगे दो भाइयों को पैसों के लिये कोर्ट में जाने से बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है। यदि तुम सगे भाई को ही कुछ नहीं दे सकते, तो संसार को क्या दोगे।

जगत् भूला हुआ है-आज जीव "राम-मर्यादा" का जीवन भूल गया है।

रामचन्द्रजी ने कहा था कि माता कैकेयी मेरे कल्याण के लिये मुझे वन में भेज रही हैं। प्रेम और मान की चाहना मत करो, प्रेम-मान सबको दो।

दूसरा तुम्हारे काम आए, ऐसी इच्छा न रखो। तुम सबके उपयोग में आओ, ऐसी भावना रखो।

बड़ा भाई यदि राम बनेगा तो छोटा भाई अवश्य लक्ष्मण बनेगा। बड़ा भाई यदि रावण बने तो छोटा भाई कुम्भकर्ण ही बनेगा। भरतजी राजमहल में रहकर तप करते हैं, आँगन में आए हुए को मिष्टान्न खिलाते हैं, किन्तु स्वयं फलाहार करते हैं और वल्कल धारण करते हैं।

रामचन्द्रजी की तपश्चर्या श्रेष्ठ है अथवा भरतजी की ? श्रीराम को वनवास मिला था। क्या लक्ष्मणजी से वन में जाने को कहा गया था ?

श्रीरामजी अति सरल हैं। तुम साधु न बन सको तो ठीक है, पर सीधे तो बनो। जो सीधा है वह एक दिन साधु भी बन सकता है। व्यवहार में सरल बनो। दम्भ और कपट का आचरण न करो।

रामजी के ऐसी सरलता जगत् में कहीं नहीं मिलती। रामावतार में रामजी अति सरल हुए तो लोग टेढ़े बन गए। पर कृष्णवतार में कृष्णजी जरा टेढ़े हुए। सरल के साथ सरल और टेढ़े के साथ टेढ़े बने। इसलिये श्रीकृष्ण "बाँके बिहारी" कहलाते हैं।

सरल और टेढ़े के साथ रामजी समान रूप से सरल थे। उन्हें कपट अच्छा नहीं लगता था।

सीता माता की भी अग्नि परीक्षा ली। इसके मनन से पाप का नाश होता है।

अयोध्या की प्रजा के सम्मुख चरित्र का आदर्श रखने के लिये एक धोबी की बात पर राम ने सीता को वनवास दिया था। सेवा-धर्म बहुत कठिन है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

पातिव्रत्य धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुये संत श्रीडोंगरेजी ने कहा कि सती सुलोचना का चरित्र आदरणीय और जीवन में ग्रहण करने योग्य है। सुलोचना शेषनाग की पुत्री थी।

लक्ष्मण ने जब इन्द्रजित का मस्तक काट दिया, तब इन्द्रजित की पत्नी सुलोचना सती होने को तैयार हुई। श्वसुर रावण से उसने अपने पति के मस्तक की माँग की। रावण ने कहा कि तू बिना किसी भय के राम के पास जा। भले ही राम मेरा शत्रु है, पर उसके जैसा पवित्र और उदार पुरुष मैंने देखा नहीं। श्रीराम-दरबार में कभी किसी के साथ अन्याय नहीं हुआ। रामजी के साथ मैं बैर रखता हूँ, पर राम ने मेरे साथ कभी बैर नहीं रखा।

सौन्दर्यवती पुत्र वधू सुलोचना को रावण ने इस प्रकार समझाया।

सुलोचना श्रीरामचन्द्रजी के पास गई। वहाँ उसके पति के मस्तक ने उससे कहा कि तुम्हारे पिता (शेषनाग के अवतार लक्ष्मण) ने भले ही मुझे मारा है, किन्तु युद्ध तो श्वसुर और जमाई के बीच नहीं, प्रत्युत दो पतिव्रताओं के बीच हुआ है, जिसमें जीत उर्मिला की हुई है।

सतीत्व और पतिव्रत-धर्म में दोनों सती समान थीं। किन्तु सुलोचना के पति ने पर-स्त्री हरण करने वाले रावण का पक्ष लेकर युद्ध किया था, इससे उसकी हार हुई।

राजा ने रानी का त्याग किया था। राम ने सीता का त्याग नहीं किया था। यज्ञ के समय राम ने सीता की स्वर्ण-प्रतिमा अपने साथ विराजमान की थी।

रामचन्द्रजी गंगा नदी पार करते हैं और विचार करते हैं कि केवट को क्या दूँ ? केवट ने साष्टांग प्रणाम किया तो उन्हें संकोच हुआ ? सीताजी रामजीके भाव को समझ गई। अपनी रत्न-जड़ित अँगूठी उतार कर उन्होंने

पति को दी। केवट ने मुद्रिका नहीं ली। रामजी ने पूछा–किसलिये ना करते हो ? केवट ने जवाब दिया–मेरे पिता कह गये थे कि साधु और ब्राह्मण को बिना उतराई लिये पार उतारना। आप तो वल्कलधारी हैं।

सीताजी ने कहा कि प्रसाद के रूप में ही ले लो। तब केवट ने कहा था कि जब मेरे राम वनवास में जाते हों, तब मेरे को प्रसाद नहीं रुचता। वन से जब लौटें, तो जो देना होवे, सहर्ष देवें।

राज्याभिषेक की अतिशय व्यस्तता में भी राम केवट को नहीं भूले थे। दरबार में जब सबका सम्मान किया गया तो उन्होंने गुह से कहा था "मैंने केवट को कुछ नहीं दिया, ये वस्त्र–अलंकार केवट के लिये ले जाओ।"

श्रीराम ने कभी किसी का देना बाकी नहीं रखा। वे अतिशय उदार हैं।

प्रत्येक स्त्री में मातृ–भाव रखने वाले जीव रामचन्द्रजी को बहुत अच्छे लगते हैं।

जीव का धर्म शरणागति है और ईश्वर का धर्म शरणागत को अपनाना है।

'राघवं शरणं गतः" कोई जीव परमात्मा की शरण में आता है तो प्रभु उसे प्रेम से अपनाते हैं।

रामजी की तीन प्रतिज्ञायें हैं। एक वचन, एक वाणी और एक पत्नीव्रत। रामजी ने नियम में एक सुधार किया। राजा दशरथ के समय में राजा कई रानियों से विवाह करते थे, इसे उन्होंने बन्द किया। समाज में एकपत्नी व्रत का उपदेश दिया।

बड़ों की भूल का अनुकरण न करो। उनकी पवित्रता का अनुकरण करो। राम ने पिता की भूल का अनुकरण नहीं किया था।

रामजी के शब्द थे–"यदि रावण शरण में आएगा, तो उसे अयोध्या का राज्य दे दूँगा। मैंने विभीषण को लंका का राज्य देने का वचन दिया है, उसमें हेर–फेर नहीं होगा।"

रामचन्द्रजी के जीवन का खूब मनन करो।

श्रीराम स्वधाम चले गये पर हनुमानजी तो आज भी प्रत्यक्ष हैं। दक्षिण

भारत में राम-कथा में 'हनुमान-व्यास-पीठ' की स्थापना की जाती है।

रामायण अति "दिव्य" है। हनुमानजी के सामने रामायण का पाठ करो। रामचरित्र अति उपयोगी है।

तुम्हारी इच्छा के अनुकूल न होवे तथा जहर की तरह लगने पर भी श्रीरामनामामृत का पान करो। जहर का असर मन के ऊपर नहीं होता।

रामचन्द्रजी अयोध्या में रहते थे। अपने घर को अयोध्या बनाओ। जहाँ युद्ध न होवे, जहाँ कलह न होवे, वह "अयोध्या" है।

सरयू का किनारा अर्थात् भक्ति का किनारा। भक्ति की समाप्ति न करो। सरयूरूपी भक्ति के किनारे रहो।

तीर्थ पर जाने की अपेक्षा घर को तीर्थ बनाओ।

रामजी की बाल-लीला में भी मर्यादा है। भरत को जिताते थे और स्वयं हारते थे। भाई की जीत को अपनी जीत समझते थे।

भरतजी कहते हैं कि बड़े भाई का मेरे ऊपर कितना प्रेम है ! स्वयं हार कर मेरे को जिताते हैं।

कोई श्रीराम से कहता है कि हमारे घर पधारो, तो रामजी जवाब देते "मैं माता की आज्ञा में हूँ। वे आज्ञा देंगी तो तुम्हारे यहाँ आऊँगा।"

किन्तु कन्हैया किसी दिन नहीं कहता कि "यशोदा माँ आज्ञा देवेंगी, तो आऊँगा।" वह तो बिना आज्ञा के ही ग्वाल–बालों को इकट्ठा कर माखन चुराने जाता है।

लाला को बाँधो, पर किसी से कहो मत कि मैंने लाला को बाँधा है। अन्दर से भक्ति करो, पर जगत् में जैसा व्यवहार करते हो वैसा ही करो। भक्ति यदि प्रकट हो जाती है तो उसमें विघ्न आता है।

मन श्रीकृष्ण का स्पर्श करेगा तो ध्यान में समाधि का आनन्द आएगा।

भावना से भक्ति बढ़ती है। इसलिये भावना को सतत बनाये रक्खो।

कृष्ण ने गोपी को बाँधा। गोपी ने छोड़ देने की विनती की, किन्तु लाला ने उसे छोड़ा नहीं।

जीव स्वार्थ का सम्बन्ध रखता है। प्रभु जिसे बाँधते हैं, उसे कभी छोड़ते नहीं। वे जल्दी बाँधते नहीं, पर एक बार बाँधने पर छोड़ते नहीं।

जो मर्यादा का पालन करते हैं, उनकी भक्ति में प्रेम जागता है। उनकी मर्यादा पुष्ट होती है। रामभक्त का जीवन कृष्ण प्रेममय होना चाहिये।

श्रीराम परमात्मा होने पर भी सद्गुरु की सेवा करते थे। जिनके श्वास से वेद प्रकट हुए हैं, वे स्वयं वेद पढ़ने बैठे। तीर्थ में जाओ तो पहले सरयूजी को प्रणाम करो, पीछे स्नान करो। सरयू का नाम है "राम-गंगा"।

तीर्थ में बिना उपवास किये तीर्थ का फल नहीं मिलता।

तीर्थ की यात्रा तीर्थरूप होने के लिये है। ऐसे तीर्थ- यात्रियों के दर्शन से मनुष्य पवित्र होता है।

ब्राह्मण में जिसकी सद्भावना न होवे, उसे तीर्थ यात्रा का फल नहीं मिलता। तीर्थ में कुल्ला नहीं करो। ब्रह्मचर्य का भंग न होवे। व्यवहार में क्रोध नहीं आवे। प्रत्येक तीर्थ में कुछ त्यागना पड़ता है। बहुत से लोग जो अच्छा नहीं लगता वह त्यागते हैं। पर वास्तव में तो काम, क्रोध आदि को छोड़ना होता है। एक-एक विकार का त्याग होवे, तो तीर्थ-यात्रा सफल होती है।

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागदकी पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।।
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ-उलझ मर जाना है।।
यह संसार झाड़ औं झाँखर, आग लगे बरि जाना है।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरू नाम ठिकाना है।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीराम-चरित्र दिव्य है, पर सीता-चरित्र अति पवित्र है। रामजी ने तो युद्ध में क्रोध भी किया था; पर सीताजी ने कभी क्रोध नहीं किया।

माता कौशल्या राम की जननी थी, पर सीताजी की माता कौन बनती ? वे तो धरती से प्रकट हुई और धरती में ही समा गई। सीताजी जगत्-जननी हैं।

हनुमानजी को सीताजी का आशीर्वाद मिला था-"वत्स हनुमान ! तू जहाँ भी रहेगा, अष्ट सिद्धियाँ तेरी सेवा में रहेंगी और काल तुझे मार नहीं सकेगा।"

राक्षसियों ने अशोक वन में सीताजी को कष्ट दिये। उन्हें मारने को हनुमानजी उद्यत हुए, तब सीताजी ने कहा था-"राक्षसियाँ तो रावण के अधीन हैं, इसमें इनका कोई दोष नहीं।" सीताजी दया की देवी थीं। इसलिये उन्होंने कहा-"राक्षसियाँ मेरे साथ बहुत समय तक रही हैं। जाते समय इन्हें कुछ दूँगी।"

हनुमानजी ने सीताजी का जय-जयकार किया।

रामायण का प्रत्येक पात्र दिव्य है।

हनुमानजी जैसा अलौकिक पुरुष नहीं हुआ ।

माता-पिता की आज्ञा में रहने वाले पुत्र को जिस दिन माता-पिता से आशीर्वाद मिलता है, उसी दिन उसका बेड़ा पार हो जाता है।

अनेक वर्षों के अध्ययन से जो ज्ञान नहीं मिलता, वह ज्ञान किसी सच्चे सन्त की सेवा करने पर आशीर्वाद से मिल जाता है।

सत्संग में रहने पर जीवन सुधरेगा। सन्त का प्रत्येक व्यवहार भक्ति से परिपूर्ण होता है।

मनुष्य को किसी भजनानन्दी सन्त की सेवा करने की विशेष आवश्यकता है।

लाला ने जगत् को बोध दिया है कि जो शक्कर की तरह मीठा है, उसे मैं हाथ में रखता हूँ। इसलिये तुम शक्कर की तरह मीठे और मक्खन की तरह मधुर बनो। मक्खन-मिश्री बालकृष्णलाल अपनी हथेली पर रखते हैं।

मान देने पर जीवन में मिठास आता है। मान-दान उत्तम दान है।

लक्ष्मण शब्दब्रह्म हैं, श्रीराम परब्रह्म हैं। लक्ष्मण के बिना राम नहीं रहते। जहाँ शब्दब्रह्म है, वहाँ परब्रह्म को प्रकट होना पड़ता है।

जगत्-मित्र होना कठिन है। पर संसार में किसी जीव के साथ विरोध तो न करो। ऐसा करोगे तो तुम जगत्-मित्र के समान ही हो जाओगे।

रामजी पीला और लक्ष्मणजी नीला पीताम्बर पहिनते हैं।

एक वैष्णव ने रामजी से प्रश्न किया-"आप आजानबाहु (घुटने तक के लम्बे हाथ वाले) क्यों हैं ?" रामजी ने कहा-"मैं मेरे भक्तों से मिलने की प्रतीक्षा में रहता हूँ, इसलिए भक्तों से मिलने को हाथ लम्बे रखे हैं।"

एक बार जो ईश्वर से मिलता है, उसका कभी वियोग नहीं होता।

सांसारिक विषयों का एक दिन संयोग होता है, दूसरे दिन वियोग।

यज्ञ, दान, तप और तीर्थ सत्कर्म के फल हैं, इनसे चित्त की शुद्धि होती है। चित्त-शुद्धि का फल है-श्रीराम के दर्शन।

यज्ञ के समय ब्राह्मणों की दृष्टि यज्ञ में ही रहती है। भगवान अग्नि के द्वारा आरोगते हैं। कितने ही भगवान को प्रसाद तो लगाते हैं, पर अग्नि में आहुति नहीं देते।

अग्नि भगवान का मुख है। बिना अग्नि में आहुति दिये पुण्य का फल नहीं मिलता। चावलों में घी डालकर-"मैं भगवान को अर्पण करता हूँ-इस भाव से आहुति दो।

स्मार्त लोगों की मान्यता है कि अग्नि में आहुति देकर, अन्न की शुद्धि करके, भगवान को भोग लगाओ।

अग्नि में आहुति दिए बिना भोग लगाने से पाप लगता है।

वैष्णवों की मान्यता है कि सब कुछ प्रभु का है, इसलिये अग्नि में आहुति देने की जरूरत नहीं। पर यह ठीक नहीं है।

प्रभु दर्शन करने के बाद भी यदि बुद्धि नहीं सुधरे तो ऐसा समझो कि मारीच राक्षस की अपेक्षा तुम अधिक खराब हो।

दर्शन से बुद्धि सुधरे, इसमें क्या आश्चर्य है।

प्रेम से श्रीराम–श्रीराम का जप करोगे तो बुद्धि सुधरेगी।

जब रावण ने राम का वेष किया था, तो उसके मन में से विकार निकल गये थे। राम में क्या जादू है ? कुम्भकर्ण ने कहा-"श्रीराम परमात्मा हैं।" जिसके स्मरण से निष्कामता आवे, वह ईश्वर है।

अपने वंश का कल्याण करने के लिये रावण ने रामजी से विरोध किया था। युद्ध में सारे राक्षस राम का नाम लेते-लेते और राम का दर्शन करते-करते मोक्ष को प्राप्त हुए।

यह शरीर यज्ञ-मण्डप है। मन से प्रभु से मिलना महान् यज्ञ है। ध्यान के साथ जप करना महान् यज्ञ है।

आँखों और कानों में राम को रखो। प्रत्येक इन्द्रिय के प्रवेश द्वार पर प्रभु को विराजमान करो।

विश्वामित्रजी के यज्ञ में मारीच विघ्न डालने आया। किन्तु प्रत्येक द्वार पर राम–लक्ष्मण को देखकर विघ्न नहीं कर सका।

जिन इन्द्रियों से मनुष्य भक्ति नहीं करता, उन इन्द्रियों से पाप सम्भव है। इसलिये प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति करो।

रामचन्द्रजी ने पर स्त्री का स्पर्श नहीं किया था, वन्दन किया था। उन्हें पाप का भय था। माता सीता ने भी परपुरुष का स्पर्श नहीं किया था।

श्रीहनुमानजी ने अपने कंधे पर चढ़ाकर सीता को ले जाने को कहा था। जगत् के समक्ष आदर्श उपस्थित करने को सीताजी ने नाहीं कर दी।

हवा चली। श्रीराम की चरण-रज ने शिला का स्पर्श किया और अहिल्या का उद्धार हुआ। श्रीरामजी ने चरण से शिला का स्पर्श नहीं किया था। जब बुद्धि निष्काम हो जाती है, तब कोमल बनती है। भगवद्-स्मरण या संतचरणों की रज के स्पर्श होने पर बुद्धि कोमल बनती है।

इन्द्रियों के सक्रिय रहते हुए भी जनक राजा को मुक्ति का आनन्द प्राप्त हुआ था। वे 'विदेह–आनन्द' का अनुभव करते थे।

ज्ञानी पुरुष लक्ष्य को ललाट में रखते हैं। अतएव दिव्यज्योति के दर्शन करते हैं।

राजा जनक को संसार का कोई सुन्दर विषय आकर्षित नहीं कर सका था, श्रीराम ने उन्हें आकर्षित किया था। अतएव प्रभु ने भी इस खिंचाव का अनुभव किया।

दुष्यन्त ने शकुन्तला को देखकर कहा था - "तू ब्राह्मण-कन्या नहीं है, क्योंकि तुझे देखकर मेरा मन चंचल हो गया है। तू क्षत्रिय-कन्या है।" शकुन्तला ने इस बात को स्वीकार किया। यदि शकुन्तला ब्राह्मण-कन्या होती, तो दुष्यन्त का मन चंचल नहीं होता।

ईश्वर प्राप्ति के लिये मनुष्य कोई साधन नहीं जुटाता, इसलिये दुःखी रहता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
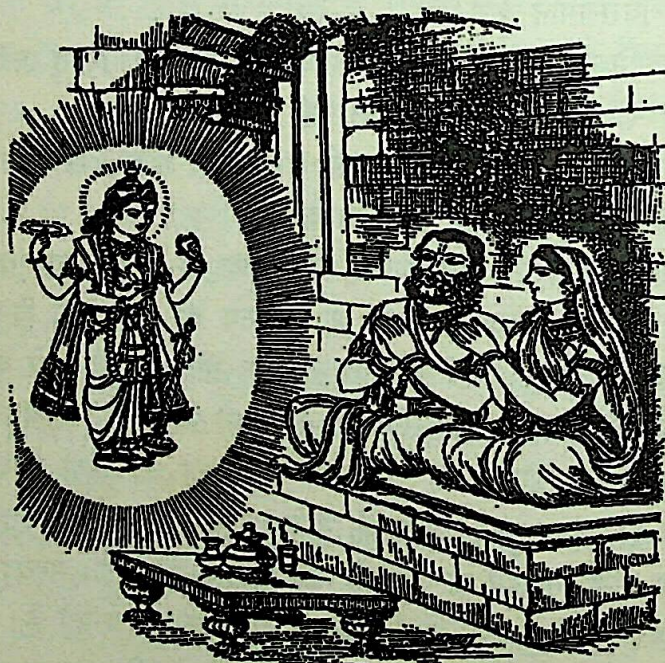
'कारागार में वसुदेव-देवकी को प्रभुदर्शन'

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा था कि लक्ष्मण समय आने पर मैं तुम्हारी भाभी को तो छोड़ूँगा, पर तुम्हें नहीं छोड़ सकूँगा।

शयन के समय लक्ष्मणजी अन्त में सोते थे और सबेरे सबसे पहले उठते थे।

सत्कर्म में, सेवा में चतुराई न करो। स्वाभाविक रूप से करो।

सीता स्वयंवर के समय पार्वतीजी की आज्ञा से तीन सौ शिवगण धनुष के ऊपर बैठे थे। रावण ने १६ हाथों से धनुष को उठाने का प्रयास किया और उसने स्वयं अपनी जय-जयकार की। स्वयं जो अपनी प्रशंसा करता है, वह रावण है। तीन सौ शिवगणों ने धनुष को दबाया तो धनुष रावण की छाती पर आकर गिरा। सेवकों ने दौड़कर धनुष को हटाया, रावण लज्जित हुआ। रावण की फज़ीहत देखकर बहुत से राजाओं को समझ आई।

स्वयंवर में रामचन्द्रजी ने विचारा कि माता-पिता की आज्ञा के बिना विवाह नहीं करना है। सीताजी वरमाला लेकर आयी, पर श्रीराम ने माथा नहीं झुकाया। विश्वामित्रजी दौड़े गये तथा उनके कान में कहा-"तुम्हारे माता-पिता की इच्छा है कि इस कन्या के साथ तुम्हारा विवाह होवे।"

रामजी ने कहा कि मेरा विवाह तो ठीक, पर लक्ष्मण को छोड़कर मेरा विवाह नहीं हो सकता। तब गुरुदेव ने कहा कि सीताजी की बहिन उर्मिला के साथ इसका विवाह होगा। अब श्रीरामचन्द्रजी ने मस्तक झुकाया। कितना उत्कट बन्धु प्रेम है!

धनतेरस को बारात आई। मंगसिर सुदी पंचमी को विवाह हुआ। विदा हुई रंग (बसन्त) पंचमी को। यह साधारण विवाह नहीं था।

विवाह में कन्यादान के समय "प्रतिगृहणामि" शब्द का उच्चारण करने में लक्ष्मणजी ने नाहीं की। कहा कि क्षत्रिय दान देता है, लेता नहीं। तब

रामजी ने समझाया कि लग्न में इस प्रकार बोलने पर ही विवाह–संस्कार सम्पन्न और सम्पूर्ण होता है। तब लक्ष्मणजी ने प्रतिगृह्णामि शब्द का उच्चारण किया।

विवाह के पश्चात् जनकपुर की स्त्रियों ने भोजन के समय विनोद करते हुए कहा कि कुमारों, भाग्यशाली हो कि ऐसी कन्याएँ मिलीं। अयोध्या की स्त्रियाँ तो खीर खाकर लड़कों को जन्म देती हैं। लक्ष्मण से यह विनोद सहन नहीं हुआ। उन्होंने तुरन्त जवाब दिया कि जनकपुर की स्त्रियों को तो इतनी भी तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। यहाँ तो धरती में से कन्याएँ पैदा होती हैं।

"इक्की-दुक्की" का खेल शुरू हुआ। रामजी ने कहा 'एक'। सीताजी के हाथ में दो रत्न निकले। लक्ष्मणजी ने कहा कि तुम्हें सीतारामजी अलग दिखते हैं, पर रामजी ने जो एक कहा, वही ठीक है। ये दोनों एक हैं, आज से मैं दोनों की सेवा करूँगा। "इक्की–दुक्की" में अद्वैत और द्वैत दोनों का भाव है। ब्रह्म जब विशिष्ट बनता है तब पूजा होती हैं। इसलिये दो का भाव है।

रामचन्द्रजी की लीला अनन्त है। अनन्त का अन्त नहीं होता।

रामचन्द्रजी का 'नामस्वरूप' रामायण है।

श्रीकृष्ण का 'नामस्वरूप' भागवत् है।

नामस्वरूप अतिशय सुलभ है। नाम के साथ प्रेम करोगे, तो संसार का मोह छूटेगा।

यत्न ईश्वर के अधीन है, पर ईश्वर तो नाम के अधीन हैं। नाम स्वतंत्र है, परमात्मा परतंत्र हैं। परमात्मा को पकड़ना बहुत कठिन है।

मनुष्य के पाप ऐसे हैं कि पापों के कारण उसका प्रेम प्रभु के नाम में नहीं होता। जब तक प्रेम नहीं होता, तब तक जीवन सुधरता नहीं।

दान से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। दान देना सरल है, किन्तु शान्ति से बैठकर प्रभु का स्मरण करना कठिन है।

जीभ का ऐसा स्वभाव है कि जो चाहे इसे देते चलो, पर तुम जो चाहोगे यह नहीं देगी। यदि जीभ प्रभु के नाम का स्मरण न करे, तो इसे

थोड़ी सजा दो। यदि जीभ न माने तो उसे बार-बार नीम का रस पिलाओ। पन्द्रह बीस बार पिलाओगे तो रास्ते पर आ जाएगी।

इन्द्रियाँ विषयों के पीछे दौड़ती हैं, इसका मुख्य कारण जीभ ही है।

परमात्मा के नाम के साथ प्रेम करो। हृदय में प्रेम न होवे, तो भी जप करो।

काण्ड अर्थात् सीढ़ियाँ।

पहली सीढ़ी है–बालकाण्ड। हृदय से बालक के जैसे बनो। पहले कोई बालक का अपमान करे और पीछे उसे प्रसाद देवे, तो बालक अपमान को भूल जाता है। बालक मान-रहित और निर्मोही है। मनुष्य का जीवन बालक की तरह का होना चाहिये।

जिसे प्रभु के मार्ग में आगे बढ़ना हो, वह बालक बने।

मनुष्य के अन्तर में कड़वाहट और जीभ में मिठास होता है। किन्तु बालक मन, वाणी और क्रिया तीनों से शुद्ध होता है।

बालक बनने पर युद्ध नहीं करना पड़ता। सारे काण्डों में युद्ध की कथा है। सिर्फ बालकाण्ड ही ऐसा है, जिसमें युद्ध की कथा नहीं है।

जहाँ युद्ध और कलह नहीं, वहाँ परमात्मा हैं। अयोध्याकाण्ड का उपदेश है कि "निर्वैर" बनो। जहाँ एक ही वस्तु पर अनेकों की चाहना रहती है, वहीं कलह का जन्म होता है।

बारह महिनों में एकाध महिना किसी पवित्र स्थान पर रहो। थोड़े दिन वन में रहो। बिना वनवास के वासना का नाश नहीं होता।

श्रीरामजी जब वनवास में गये थे, तो उनकी उम्र २७ वर्ष की थी। सीताजी १८-१६ वर्ष की थी।

श्रीरामजी ने संसार को आदर्श दिया है कि यौवन में जिसका जीवन वन में रहकर सुधरता है, उसका मरण भी सुधरता है।

चौदह वर्ष तक श्रीरामचन्द्रजी ने धातु के पात्र का स्पर्श नहीं किया था, काष्ठ पात्र में पानी पीते थे।

महलों में रहने वाला महान नहीं बन सकता। श्रीकृष्ण वृंदावन में गायों के पीछे नंगे पाँव फिरते थे। पीछे द्वारकाधीश बने।

इसलिये ऐसी भूमि की खोज करो, जहाँ पवित्र जीवन बिताया जा सके। पवित्र तीर्थ में बैठकर किया गया सत्कर्म, पाप कर्मों में बाधक बनता है।

अरण्यकाण्ड में रामजी ने वासनाओं के विनाश के बारे में बताया है।

काम शत्रु है, ऐसा किष्किन्धाकाण्ड में बताया गया है। सुख काम का स्वरूप है। राम के साथ मित्रता करनी हो तो काम से कहो कि तूने तो मुझे बहुत रुलाया है। काम मित्र बनकर बैठ गया हो, तो उसे बाहर निकालो।

सुग्रीव जीवात्मा है। राम परमात्मा हैं, पर श्रीहनुमान तो ब्रह्मचारी हैं। जीवात्मा परमात्मा की मैत्री उन्होंने ही दृढ़ कराई थी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

गोवर्धन–धारण

31

सुन्दरकाण्ड में ऐसा बताया है कि मनुष्य के साथ मैत्री तो करो, पर अधिक प्रेम न करो। अधिक प्रेम करोगे तो, दुःखी होवोगे। कोई मिले तो ठीक है, पर न मिले तो वियोग का दुःख मन में न लाओ।

संसार के साथ ऐसा व्यवहार रखो कि न तो बैर ही होवे और न अधिक प्रेम ही होवे।

जो प्रभु–नाम के साथ प्रेम करता है, मैत्री करता है–उसी का जीवन सुन्दर है।

जहाँ प्रेमलक्षणा भक्ति विराजती है, वह अशोक वन है।

जो समुद्र लाँघता है, उसे सीताजी के दर्शन होते हैं।

श्रीहनुमानजी के पास ब्रह्मचर्य और रामनाम की शक्ति थी। युद्धकाण्ड में राक्षसों का विनाश हुआ है।

काम, क्रोध तथा अन्य विकारों के नाश होने के बाद तुम भक्ति करोगे, यह धारणा गलत है। भक्ति करोगे तो विकारों का नाश होगा।

युद्धकाण्ड के बाद उत्तरकाण्ड आता है, जो जीवन के पूर्वार्द्ध में विषयों का नाश कर उत्तरजीवन में भक्ति की प्राप्ति कराता है।

चलने में भी मर्यादा है। जहाँ तक बन सके धरती पर नजर रखकर चलो, जिससे किसी जीव की हिंसा नहीं होवे। रामजी के चरण-चिह्न बचाकर सीताजी पैर रखती थी। लक्ष्मणजी पीछे रहते थे। जहाँ सीतारामजी के चरण दिखते थे, वहाँ उनका वन्दन करते थे और चरण चिह्न को बचाकर आगे पाँव रखते थे।

मन को मर्यादा में रखोगे तो मन सुधरेगा। भरतजी के प्रेम की कथा समुद्र के समान है। चित्रकूट में जब भरत मिलाप हुआ, तब पत्थर भी पिघलने लगे थे।

प्रत्यक्ष सीताजी का स्पर्श रावण नहीं कर सकता था, वह तो सीताजी की छाया को ले गया था।

राम ने जटायु का उद्धार किया, शबरी का उद्धार किया और सुग्रीव को राज्य देकर उसका भी उद्धार किया।

शरीर के चिन्तन से काम जागता है।

रामचन्द्रजी ने एक दिव्य लक्षण बताया है कि जहाँ वृक्षों में से रामनाम की ध्वनि निकले, वहाँ श्रीसीताजी हैं।

भोजन यज्ञ है।

श्रीहनुमानजी अपने मुँह से अपनी प्रशंसा नहीं करते। ब्रह्माजी ने हनुमान को उनके पराक्रम का पत्र लिखकर दिया था। श्रीलक्ष्मणजी ने वह पत्र श्रीरामजी को पढ़कर सुनाया।

बैसाख सुदी सप्तमी को राम-राज्याभिषेक हुआ था।

रामराज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। कोई मूर्ख नहीं था। वैधव्य का दुःख नहीं था। बालक नहीं मरते थे।

रामराज्य में दो दुःखी थे। रामराज्य में वकीलों और डॉक्टरों का अपकर्ष था। वर्तमान समय में इन दोनों का उत्कर्ष है।

हनुमानजी ने रामजी की सेवा की। ऐसी सेवा की कि कोई सेवा बाकी नहीं रही। तब सीताजी ने कहा कि "मैं सेवा करूँगी, हनुमानजी को मना कर दो।" इससे रामजी के मन में दुःख हुआ। उन्हें लगा कि हनुमानजी को लोग पहचान नहीं सके हैं। उन्होंने कहा –"कोई सेवा तो हनुमान के लिये भी रखो।"

हनुमानजी का जीवन राम-सेवा के लिये है। जब सीताजी और दूसरे सभी सेवा कर रहे थे, तो हनुमानजी ने सीताजी से पूछा था–माताजी ! क्या आप मेरे ऊपर नाराज हैं ? सीताजी ने कहा था–"सेवा के बँटवारे के बाद तुम्हारे लिये अब कोई सेवा नहीं बची है।"

हनुमानजी महान् बुद्धिशाली हैं। उन्होंने कहा कि जब रामजी को जम्हुआई आएगी, तो चुटकी कौन बजाएगा ? शास्त्र का कथन है कि जब जम्हुआई आए तो चुटकी बजाना।

सीताजी ने कहा कि यह सेवा तुम करना।

दिन-रात हनुमानजी श्रीराम के पास हाजिर रहने लगे। रात्रि में सीताजी हनुमानजी से कहती कि अब तुम जाओ, तो हनुमानजी जवाब देते–"यह नहीं कहा जा सकता कि प्रभु को जम्हुआई कब आएगी, इसलिये मेरा तो हर समय हाजिर रहना अवश्यक है। पर सीताजी के आग्रह से उनका सम्मान रखते हुए बाहर चले गए। उन्होंने विचार किया कि सारी रात चुटकी बजाते रहूँगा। कंदाचित रामजी को जम्हुआई आ जाए, तो सेवा होगी।

श्रीरामजी को ऐसा लगा कि जब मेरा परम भक्त जाग रहा है, तो मैं कैसे सोऊँ। वे भी बार-बार जम्हुआई लेते हुए जागते रहे।

सीताजी ने झुँझलाकर कौशल्याजी से कहा। कौशल्याजी ने वशिष्ठजी को बुलवाया। वशिष्ठजी बात समझ गये। उन्होंने सीताजी से पूछा। सीताजी ने कहा कि हनुमान को कोई सेवा नहीं देने पर ही ये सब़ बातें हो रही हैं। रामजी ने भोजन भी नहीं किया है। इसके बाद चुटकी की बात बताई।

बाहर जाकर देखा कि चुटकी बजाते हुए हनुमानजी राम नाम जप रहे हैं।

देह बुद्धि से हनुमानजी रामजी के सेवक हैं और जीव बुद्धि से राम के अंश हैं।

बालकाण्ड चरण है, अयोध्याकाण्ड जंघा है, अरण्यकाण्ड उदर है, किष्किन्धाकाण्ड हृदय है, सुन्दरकाण्ड कण्ठ है, लंकाकाण्ड मुख है और उत्तरक़ाण्ड मस्तक है।

रामचरित् से प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान मिलता है। रामायण के मनन में स्वयं का मानस तुम्हें रामायण में प्रतिबिम्बित दिखेगा। रामायण दर्पण के समान है।

रामायण के सात काण्ड उत्थान की सात सीढ़ियाँ हैं।

कुटुम्ब संबंध का श्रेष्ठ उदाहरण रामायण में दिखता है।

वशिष्ठ के ऐसा गुरु, दशरथ के ऐसा पिता, कौशल्या के ऐसी माता, राम के ऐसा पुत्र, सीता के ऐसी पत्नी, राम के ऐसा पति, लक्ष्मण-भरत ऐसे

भाई, हनुमान के ऐसा सेवक और रावण के ऐसा शत्रु नहीं हुआ।

घर के लोग ही नहीं, शत्रु भी जिसकी प्रशंसा करें, वही सच्ची प्रशंसा है।

अनधिकारी को प्रभु के दर्शन नहीं होते। कदाचित हो भी जाए तो उसमें निष्ठा नहीं टिकती।

लंका शब्द को उलटने पर "काल" हो जाता है। काल सबको मारता है, पर हनुमानजी तो काल को भी मारते हैं। वे लंका-दहन करते हैं।

जो भगवान से एक क्षण भी विभक्त न रहे, वह "भक्त" है। सारे रस सुरसा हैं। सुरसा मनुष्य को त्रास देती है। जिसे संसार-समुद्र को लाँघना है, उसे सुरसा अर्थात् जीभ पर विजय प्राप्त करनी होगी।

रामायण और रामकथा सागर की तरह विशाल हैं।

रामनाम अमृत से उत्तम है। रामनाम भव रोगों की दवा है, किन्तु बिना संयम के यह दवा फल नहीं देती।

जिसे हनुमानजी नहीं अपनाते, उसे रामजी अपना मित्र नहीं मानते।

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग,
केहि अति दीन पियारे।।
कौन देव बराई बिरद हित,
हठि-हठि अधम उधारे।।
खग, मृग, व्याध, पषान, बिटप जड़,
जवन कवन सुर तारे।।
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब
माया-बिबस विचारे।।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु
कहा अपुनपौ हारे।।

खग-जटायु, मृग-मारीच, व्याध-वाल्मीकि, पाषान-अहिल्या, बिटप-यमलार्जुन (भागवत)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

32

शुकदेवजी को कथा में समाधि का सा आनन्द मिलता है। श्रीकृष्ण प्रेम में ऐसी शक्ति है कि जगत् का विस्मरण करा देवे। खुली आँखों में जगत् न दिखे, भगवान दिखे—यही सच्चा दर्शन है।

आँखें बन्द करके समाधिस्थ होना सच्ची समाधि नहीं है। आँखें खुली रखकर समाधि में रहना ही सच्ची समाधि है। मन को पकड़ कर प्रभु में लगाओ, यही समाधि है।

जो प्रभु के नाम में सर्वदा तन्मय रहते हैं, उन्हें खुली आँखों से परमात्मा दिखता है। सहज समाधि में आँखें खुली रहती हैं। गोपियों की समाधि सहज समाधि है। मन का दमन नहीं करना पड़ता। गोपियों की महिमा द्वारा मन को बार-बार समझाओ कि यदि तू विषयों में फँसेगा, तो दुःखी होगा। जहर तो खाने वाले को ही मारता है, पर विषय तो मात्र स्मरण करने से मारते हैं।

श्रीकृष्ण लीला में ऐसी शक्ति है कि मन को समझाओगे, तो मन मानेगा।

जगत् में जितने रस हैं, उनमें मिठास कम है, कड़वाहट अधिक है।

जो बहुत हँसता है, उसे पीछे रोना पड़ता है।

आरम्भ में शृंगार रस भले ही अच्छा लगे, परन्तु शरीर के दुर्बल हो जाने पर समझ आएगी कि कड़वा है। समझदारी बहुतों को आती तो है, पर शरीर के दुर्बल हो जाने के बाद।

वीर रस में कड़वापन है। अतिशय मिठास तो प्रेम रस में ही है। प्रेम आत्मस्वरूप है। रंग व आकृति मोह के आधार रूप हैं। मोह सापेक्ष है, प्रेम निर्पेक्ष है।

मोह गिलट है, प्रेम शुद्ध सोना है।

मोह भोग चाहता है, प्रेम भोग देता है।

श्रीकृष्ण-प्रेम का रंग लग जाए तो जीव कृतार्थ हो जाता है।

एक बार प्रेम-रस का स्वाद चखने पर जगत् के दूसरे सभी स्वाद फीके लगते हैं।

श्रीकृष्ण महायोगी थे और महाभोगी भी थे। सोलह हजार रानियों के स्वामी होकर भी ब्रह्मचारी थे। उनका एक बाल भी सफेद नहीं हुआ था। हमेशा छप्पन भोग आरोगते थे, पर उन्हें अजीर्ण नहीं हुआ था। भगवान सारी लीलाएँ करते हैं, पर एक लीला, कि ज्वर आया तथा उसके साथ वैद्य भी आया, नहीं करते।

श्वसुर की मृत्यु पर प्रभु ने थोड़ा नाटक किया था और चीख मारकर रोये थे। प्रभु के लाड़ले वैष्णव जब दुःखी होते हैं, तब प्रभु अवतार लेते हैं।

मरण अनिवार्य है, पर महापुरुष विवेक से मरण को सुधार लेते हैं।

मरने से पहले वैर का विनाश करो। पिछले वैर का भी दोष नहीं लगेगा। भोग से शान्ति नहीं मिलती। मृत्यु से पहले वासनाओं का त्याग करने पर मरण सुधरेगा।

जिनकी अपकीर्ति होती है, वे जीवित मृतक के समान हैं।

भगवान कैसी लीला करते हैं? जहाँ प्रकट होना है, वहाँ के मनुष्यों के दुःखों का कोई पार नहीं रहता।

वासुदेव शुद्ध सत्य स्वरूप हैं, देवकी बुद्धि हैं।

जहाँ सत्य और बुद्धि का संयोग होता है, वहाँ परमात्मा प्रकट होते हैं।

दुःख को भी सुख मानकर जो सेवा-स्मरण करते हैं, उनके घर प्रभु पधारते हैं।

भगवान जब संसार में अवतार लेते हैं, तो उन्हें माया की आवश्यकता होती है। पर जीव जब संसार में आता है तो माया का दास बनकर आता है।

माया परमात्मा से चिपकती नहीं।

दाऊजी गोरे हैं। उनकी आँखें बन्द हैं। उनकी इच्छा श्रीकृष्ण दर्शन के पश्चात् संसार देखने की है। उन्होंने निश्चय किया था- "प्रभु के दर्शन के बाद ही संसार को देखूँगा।"

भादवा सुदी ६ को दाऊजी प्रकट हुए। भादवा सुदी ११ का व्रत लोग निर्जल रह कर करते हैं।

जहाँ गायों की सेवा होती है और जहाँ परमात्मा का कीर्तन होता है, वहाँ परमात्मा प्रकट होते हैं।

भूत, भविष्य और वर्तमान में जगत् तो परिवर्तित होता है, पर परमात्मा जैसे के तैसे हैं।

अन्तःकरण के शुद्ध होने पर परमात्मा अंतःकरण में प्रकट होते हैं।

अष्टधा प्रकृति के विशुद्ध रहने पर भगवान का बाह्य अवतार होता है।

परमात्मा की प्राकट्य की जानकारी होते ही दसों दिशाओं में आनन्द छा जाता है। मंद–सुगंध–शीतल वायु चलने लगती है।

भगवान की दो पत्नियाँ हैं-श्रीदेवी तथा भूदेवी। श्रीदेवी वैकुण्ठ में रहती हैं। भारतवर्ष में अवतार ग्रहण करने पर भूदेवी के यहाँ आनन्द छा जाता है।

ज्ञानमार्ग में मन को मारना पड़ता है। भक्तिमार्ग में प्रत्येक इन्द्रिय और मन परमात्मा को अर्पित किये जाते हैं।

समुद्र के खारे जल को पीकर मेघ बदले में मीठा पानी देते हैं।

जो स्वयं सुख भोगे और दूसरों को भी सुख देवे, वह सज्जन है। स्वयं दुःख सहकर मेघ की तरह दूसरों को सुख देवे, वह "संत" है।

भगवान का रंग और मेघ का रंग एक सा है। मेघ लाला को प्रिय हैं।

देह से उत्सव करते हुए भी विदेह के सदृश रहना है। ठाकुरजी को मस्तक पर विराजमान करोगे तो बंधन टूटेंगे। जो ठाकुरजी को मस्तक पर धारण करता है, उसके लिये मोक्ष के द्वार खुले रहते हैं।

कंस मरता है तो समाज सुखी होता है।

श्रीयमुनाजी को बालकृष्ण के प्रथम दर्शन हुए। अतिशय आनन्द हुआ।

दर्शन से तृप्ति नहीं हुई। जल बढ़ने लगा। वसुदेवजी घबराए। बालकृष्णलाल टोकरी में से चरण बढ़ाते हैं। यमुनाजी कमल अर्पित करती हैं। शेषनाग के रूप में दाऊजी फणों का छत्र करते हैं।

आदिनारायण परमात्मा की नाभि में कमल उत्पन्न हुआ था।

भद्रकाली अंतरिक्ष में प्रकट होकर कंस से कहती हैं – "तुम्हारा काल जन्म ले चुका है।"

जो प्रेमपूर्वक गायों की सेवा करता है, उसके वंश का विनाश नहीं होता। नन्दजी गायों से पुत्र माँगते हैं।

ऋषिगण अभिमान छोड़कर गायों के रूप में नन्दबाबा के यहाँ आये थे। ये गायें नाचती थीं। नन्दबाबा ने दो लाख गायों का दान किया था।

लक्ष्मीजी प्रसन्न हुई। नन्दबाबा ने खूब धन बाँटा। इससे लक्ष्मीजी को आनन्द हुआ।

नन्द–भवन को भूषण माई।
यशोदा को लाल, वीर हलधर को
राधारमन परम सुख दाई।।
शिव को धन संतन को सरबस
महिमा वेद–पुरानन गाई।
इन्द्रको इन्द्र, देव देवन को,
ब्रह्म को ब्रह्म अधिक–अधिकाई।।
कालको काल, ईश ईशन को
अति ही अतुल तोल्यो नहिं जाई।
नन्ददास को जीवन गिरधर,
गोकुल–गाँव को कुँवर कन्हाई।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

33

जो सबको आनन्द देता है, उसे सबका आशीर्वाद मिलता है। जिसे सबका आशीर्वाद मिलता है, उसके यहाँ ईश्वर आते हैं।

नन्दजी ने सबको आनन्द दिया, अतः उनके घर - "आनन्द भयो।" तुम भी सबको आनन्द दो। किसी प्रकार की चाह रखे बिना प्रेम करने वाले के ऊपर, परमात्मा प्रसन्न होते हैं। सावधान रहो कि तुम पर किसी की आह न पड़े। एक जीव का निःश्वास भी भक्ति में विघ्नकारक है। अतः किसी को सुख न दे सको तो कोई बात नहीं, पर किसी की आह तो न लो।

उत्सव में अर्थ मुख्य नहीं है, प्रेम मुख्य है। सन्त नहीं होवें तो धरती टिक नहीं सकती। किसी भजनानन्दी सन्त से मिलने की इच्छा रखो।

वृन्दावन प्रेम-भूमि है। वृन्दावन में महात्मागण रोज सुबह उठकर 'नन्द-महोत्सव' का गान करते हैं।

काम व अर्थ दोनों में मद है, इसका ध्यान रखो। मन आकर्षण में फँसता है, तो बिगड़ता है। तुम्हारे मन को दूसरा कोई नहीं संभालेगा, तुम्हें ही निगरानी रखनी होगी।

मरने के बाद मन साथ जाता है। पूर्व जन्म के शरीर का नाश हो जाने पर भी पूर्व जन्म के मन का नाश नहीं होता। मृत्यु के बाद भी जो मन साथ रहने वाला है, उसका ध्यान रखो। उसकी खूब चौकसी रखो।

शरीर की अधिक संभाल रखने पर भी एक दिन उसे बिगड़ना है।

बातें तो ब्रह्मज्ञान की करें, पर ध्यान जूतियों में रहे। कपड़े शरीर आदि की संभाल रखना तो ठीक है, पर मन के बिगड़ने पर दूसरा मन नहीं मिलेगा। जो मन को सुधारता है, उसका शरीर मथुरा जैसा हो जाता है। शरीर को मथुरा जैसा पवित्र बनाओ। शरीर को मथुरा बनाने के बाद मन को गोकुल बनाओ।

श्रीकृष्ण मथुरा में प्रकट हुए, पर पालने में तो गोकुल में ही झूले थे।

'गो' अर्थात् इन्द्रिय + कुल अर्थात् समुदाय। इन्द्रियों का समुदाय गोकुल है। यदि इन्द्रियों द्वारा भक्ति नहीं करोगे, तो संसार इन्द्रियों के द्वारों से तुम्हारे में प्रवेश करेगा।

मनुष्य की भूल है कि एक तरफ भक्ति करता है, तो दूसरी ओर पाप करता है।

इन्द्रियाँ भोग की साधन नहीं, भक्ति की साधन हैं। भोग से इन्द्रियों का क्षय होता है। प्रत्येक इन्द्रिय के माध्यम से जो भक्ति करता है, उसकी भक्ति की पुष्टि होती है। जिसका हृदय पिघलता है, उसके हृदय में प्रभु प्रकट होते हैं।

अन्दर से जो आनन्द आए, वह ईश्वर है। महर्षि व्यासदेव ने भी कहा है –"आनन्द ईश्वर में नहीं है, आनन्द ही ईश्वर है।"

निराकार का अनुभव बुद्धि से होता है, प्रत्यक्ष नहीं। खांड से बने हुये खिलौने हाथी या घोड़े नहीं, खांड ही हैं।

भगवान आनन्दमय हैं। प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति करना ही नन्द महोत्सव है।

नन्द महोत्सव में ब्रजवासी देहभान भूल गये थे। सुबह साढ़े चार से पाँच के मध्य का समय बहुत पवित्र होता है। चार बजे के पीछे बिछौने का मजा "सजा" है। प्रातःकाल में सुषुम्ना नाड़ी चलती रहती है। उस नाड़ी से मन शीघ्र शान्त होता है।

जिस दिन तुम्हारा अन्तरात्मा तुम्हें साक्षी दे कि तुम्हारे मन के विकार चले गये हैं, मन पवित्र हुआ है, तुम कोई पाप नहीं करते हो, उसी दिन से तुम वैष्णव हो।

सुख-दुःख के प्रसंग रोज आते हैं, पर आनन्ददायक परमात्मा के ध्यान से जिनका मन शुद्ध हो गया है, उन्हें सुख-दुःख का स्पर्श नहीं होता।

दुःख पापों को जलाने के लिये आते हैं। दुःख समझाते हैं कि प्रभु के चरणों में जा। दुःख कहते हैं कि संसार स्वार्थी है।

जो प्रभु से प्रार्थना करता है-'मुझे पाप-कर्म करने से रोको, तो प्रभु उसे अवश्य बचाते हैं। अतः प्रार्थना करो।

सन्तों के जीवन में अनेक दुःख आते हैं, पर उन पर इसका असर नहीं होता।

जीवात्मा पाप तथा पुण्य, दोनों को साथ लाता है।

शिव योगीश्वर हैं, श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं।

योगीश्वर वे हैं, जिन्हें सुख-दुःख का स्पर्श नहीं होता। स्वर्णमयी द्वारका के रहने पर श्रीकृष्ण में जो आनन्द था, वही द्वारका के डूब जाने पर भी था।

भगवान शिव श्रावण बदी बारस के दिन श्रीकृष्ण के दर्शन करने गये। यह योगीश्वर और योगेश्वर का मिलन था। जब शंकरजी दर्शन के लिये अकेले जाने लगे तब शृंगी आदि गणों ने साथ जाने का आग्रह किया। शंकर ने कहा कि मेरे साथ न आओ।

मनुष्य का साथ मन को चंचल बनाता है। परमात्मा का साथ मन को स्थिर रखता है।

दर्शन उसे ही कहा जाएगा, जो आँखों में से नहीं निकले। दर्शन के लिये जाते हुये नाम-स्मरण करते करते जाओ।

बड़ों का संग करने से लाभ मिलता है। भक्त व भगवान दोनों का साथ होने पर दोनों को आनन्द आता है।

शंकर महाराज ने विचार किया कि यदि शृंगी-भृंगी को साथ ले जाऊँगा, तो मन चंचल होगा। शृंगी-भृंगी ने कहा-यदि आप हमें साथ नहीं रखोगे, तो हम आपको प्रकट कर देंगे। शंकरजी ने उन्हें इस शर्त पर साथ में लिया कि कुछ भी बोलना नहीं। शिवजी साधु के वेश में यशोदा माँ के आँगन में आए, पर तेज कैसे छिपता ?

आँखों से ही संत की परीक्षा होती है। सुन्दर व्याख्यान देने वाला विद्वान कहलाता है, सन्त नहीं कहलाता।

सन्त की मनोवृत्ति शान्त-समरस रहती है।

साधारण मनुष्य का मन क्षण-क्षण में बदलता रहता है।

सन्त का मन मान-अपमान में एक समान रहता है।

सन्त भगवद्-रूप को आँखों के सामने से दूर नहीं होने देते। भगवान का स्वरूप आँखों में से नहीं निकले, इसकी वे हमेशा सावधानी रखते हैं।

यशोदाजी ने शिवजी को भिक्षा दी और कहा –"लाला को आशीर्वाद देवें।"

साधु ने कहा –"मेरे को कुछ नहीं चाहिये। केवल लाला के दर्शन करने हैं।"

यशोदाजी ने कहा–"जो चाहो सो भिक्षा लो। पर आपके गले में जो सर्प है, उसे देखकर मेरा लाला डरेगा।" शिवजी ने कहा –"माँ ! तू मेरे को नहीं पहचानती, पर तुम्हारा कन्हैया मुझे पहचानेगा।" यशोदा ने कहा–"तुम्हारी इच्छा हो सो करो, पर मैं लाला को बाहर नहीं लाऊँगी।"

शिवजी ने कहा–"मैं बिना दर्शन किये नहीं जाऊँगा, यहीं समाधि लगाता हूँ।"

दामोदर लीला

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

34

आतुरता के जागने पर ही दर्शन में आनन्द मिलता है। किसी राजा अथवा अधिकारी से मिलने जाने पर वह भी कुछ समय बाहर बैठा कर रखता है।

मन्दिर में बैठकर भगवान को याद करते हुये आतुरता रखो कि "कब दर्शन होवें, कब दर्शन होवें ?"

शिवजी यशोदा के आँगन में ध्यानमग्न बैठे रहे। इस ध्यान में श्रीकृष्ण का स्वरूप प्रकट हुआ।

इस तरफ कन्हैया ने रोना शुरू किया। खूब मनाया, पर कन्हैया रोता ही रहा।

जब वैष्णव दर्शन के लिये आतुर होता है, तो भगवान वैष्णव के लिये आतुर होते हैं।

जो परमात्मा के लिये साधु होता है, वही सच्चा साधु है। शिवजी कहते हैं - "मैं दर्शनों का भिखारी हूँ।"

माता यशोदा ने कुलगुरु शांडिल्य को बुलाया। वे समझ गये कि साधु के वेश में तो शिवजी आए हैं। अतएव खुलासा करते हुए समझाया - "इस साधु का और बालक का पुरातन सम्बन्ध है। इसे बालक के दर्शन करा दोगी, तो बालक रोना बन्द कर देगा।"

चार आँखें मिलीं। शिवजी को आनन्द हुआ। शिवजी नाद करते हैं। कन्हैया हँसता है। लाला को बहुत आनन्द हुआ कि शिवजी मेरे से मिलने आये हैं।

नन्दग्राम में नन्दबाबा के महल में आज भी नन्दकेश्वर महादेव हैं।

मन्दिर की मर्यादा है कि ठाकुरजी की आँखों से कोई आँखें नहीं मिलावे, इसीलिए बाँकेबिहारीलालजी के सामने बार-बार पर्दा आता है।

प्रेम की शुरुआत द्वैत से होती है, और समाप्ति अद्वैत में होती है। यही भक्ति का अन्तिम फल है।

कन्हैया को लड़ाने की इच्छा से शिवजी ने कन्हैया को गोद में लिया और उनकी समाधि लग गई। कन्हैया ने शिवजी को सावधान किया-जागो, जागो। पीछे शंकरजी ने लाला को प्रसन्न करने के लिये दिव्य नृत्य किया। नृत्य करते-करते तन्मय हो गये।

नन्दजी दौड़ते आये। साधु को देखकर तसल्ली हुई कि ये तो साक्षात् शिवजी ही हैं। नन्दजी ने साष्टांग प्रणाम किया। शिवजी ने यशोदा से कहा -"माँ ! संसार में जो कुछ है, वह मेरा ही है। मुझे कोई चाहना नहीं है।" यशोदाजी ने आग्रह किया - "यह सच है कि जो कुछ है वह सब आपका ही है। पर बालक के कल्याण के लिए कुछ तो स्वीकार करो।" शिवजी ने कहा- "मैं जब भी आऊँ, इस बालक को मेरी गोद में देना।" यशोदाजी ने कहा - "बालक आपका ही है।"

महापुरुषों को अपने घर बुलाना कठिन नहीं है, पर आने पर उन्हें रखना ही कठिन है।

अन्धकार और प्रकाश एक साथ नहीं रहते। परमात्मा को स्थापित करने के बाद कोई कामना न रह जाए, यही प्रभु को सँभालने के समान है। कंस के दरबार में नन्दजी वार्षिक कर चुकाने गये। स्वर्णथाल और रत्नों की भेंट देकर बोले - "वृद्धावस्था में पुत्र-जन्म हुआ है।" कंस ने नन्दजी से कहा - "तुम्हारे पुत्र को आशीर्वाद देता हूँ। उसके दुश्मनों का नाश हो।"

भेंट लेकर आशीर्वाद देवे, वह कंस है।

वहाँ से नन्दजी वसुदेवजी से मिलने गये। उन्होंने वसुदेवजी के दुःख-सुख की बात पूछकर उन्हें सांत्वना दी।

दुःखी को सांत्वना देना महान् पुण्य है।

प्रवास में अपने ठाकुरजी को साथ ले जाओ। तुम्हारे समान तुम्हारे ठाकुरजी की दूसरा कौन सेवा कर सकेगा ? परमात्मा का सान्निध्य हमेशा

रखो। जिस दिन प्रत्यक्ष सेवा न बन सके, मानसी सेवा करो। वस्त्र अथवा फल लाकर लाला को कहो कि तुम्हारे लिये लाया हूँ।

पूतना ? 'पूत' अर्थात् पवित्र और 'ना' अर्थात् नहीं। आत्मज्ञान पवित्र है। "मैं- शरीर हूँ," आत्मस्वरूप का यह अज्ञान पूतना है।

पूतना वासना है। पूतना चतुर्दशी के दिन आती है। वह चौदह स्थानों में रहती है-पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में।

रावण अर्थात् काम भी चौदह स्थानों में रहता है। रावण को मारने के लिये राम को चौदह वर्ष तपस्या करनी पड़ी थी। कितनों की आँखों में पूतना का वास है। शास्त्रों में वर्जित वस्तु पर जीभ ललचाये तो समझो कि जीभ में पूतना है। प्याज खाने से विकार बढ़ते हैं। अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को प्याज नहीं खाना चाहिये।

जिसकी आकृति सुन्दर है और कर्म खोटे हैं, वह पूतना है। पूतना तन से सुन्दर है, पर मन से खराब है। वस्त्र स्वच्छ हैं, पर मन मैला है। सामने प्रशंसा करता है और पीठ पीछे निन्दा करता है। मुँह पर प्रशंसा करे और पीठ पीछे निन्दा करे, वह पूतना है।

सौन्दर्य का मोह होने पर विवेक चला जाता है। चमड़ी के रूप का स्मरण कभी न करो।

जो बहुत सरल होते हैं, उन्हें जगत् के छल-कपट नहीं दिखते। अति सरल के यहाँ प्रभु पधारते हैं।

जो छल-प्रपंच करनेवाले होते हैं, उन्हें सारा संसार प्रपंची दिखता है। उनके यहाँ प्रभु नहीं आते।

बड़े भाग्य से लोग मन्दिर में दर्शनार्थ जाते हैं। तब वस्त्र तो बदल लेते हैं, पर हृदय नहीं बदलते। वस्त्रों पर ध्यान न दो।

जब पूतना आई तो प्रभु ने आँखें बन्द कर ली थी।

वेद में वर्णन है कि श्रीकृष्ण की दाहिनी आँख में सूर्य और बाईं आँख में चन्द्रमा है। सूर्य-चन्द्र को पूतना का जहर लेकर आना अच्छा नहीं लगा। अतएव आँखें बन्द कर लीं।

लाला को लगा कि गोकुल में आकर अभी तक मक्खन-मिश्री तो खाई नहीं। पहले जहर पीना पड़ेगा।

लाला को लगा कि शिवजी को बुलाकर कहूँ कि आप जहर पी लो और दूध मेरे लिये छोड़ दो। इसलिये शिवजी का ध्यान करने को आँखें बन्द की।

सामान्य नियम है कि साधारण बात के लिये मित्र भी शत्रु बन जाता है।

भगवान कहते हैं कि कोई जीव प्रेम करने लायक नहीं है। जगत् के पास तो जीव भीख माँगता है, पर प्रभु के पास भीख नहीं माँगता।

भगवान जीव को आतुर बनाता है। आतुरता इसलिये है कि जीव परमात्मा की शरण में आवे।

कितने ही जीव ऐसे भाग्यहीन होते हैं कि अतिभय अथवा अतिदुःख में भी प्रभु की शरण में नहीं जाते।

ठाकुरजी के सम्मुख तुम जैसा संकल्प करोगे, किसी दिन वह अवश्य सफल होगा।

आँखें बन्द कर लेने पर ज्ञान-शक्ति प्रकट होती है। पर ईश्वर को तो सब कुछ दिखता है।

कैसे आऊँ रे साँवरिया, तेरी ब्रज नगरी कैसे आऊँ रे।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, बीच बहे यमुना गहरी-कैसे।।
पाँय चलूँ तो मेरी पायल बाजै, कूद पडूँ तो डूबूँ सबरी-कैसे।।
भर पिचकारी मेरे मुख पर मारी, भींग गई अँगिया सिंगरी-कैसे।।
केसर कीच मच्यो आँगन में, रपट पड़ी राधे गौरी-कैसे।।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि, चिरजीबहु राधकृष्ण जोरी
–कैसे आऊँ रे......

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

35

आँख और कान वासना के द्वार हैं। सावधान रहो कि वासना रूपी पूतना आँखों में–से अन्दर प्रवेश न करे। आँखें रत्न हैं, उनका यत्न करो, उन्हें पवित्र रखो।

जो पूतना में दृष्टि रखकर दौड़ता है, वह गड्ढे में गिरता है। श्रीकृष्ण में दृष्टि रखकर दौड़ने वाला, चाहे उसकी नजर ऊपर ही रहे, गड्ढे में नहीं गिरता।

गंगी अर्थात् गाय कृष्ण के दर्शन बिना पानी भी नहीं पीती। पेट जब हल्का रहता है, तो वहाँ शुद्ध सत्त्वगुण रहता है। पेट में कुछ जाने पर रजोगुण का प्रवेश होता है।

द्रव्य का दुरुपयोग होवे तो द्रव्य दुःख देता है। गोमूत्र तन-मन को सुधारता है।

पूतना चरित्र का मनन करो।

वासना का अन्त उपासना से होता है। जिसे उपासना करनी होवे, उसे आँखें शुद्ध रखनी चाहिये।

मंगला के दर्शन अंधेरे में होवें, यही उत्तम हैं। प्रकाश होने पर रजोगुण का प्रवेश होता है।

श्रीकृष्ण माताजी की भावना दृढ़ करने के लिये निद्रामग्न होते हैं, नाटक करते हैं, इसी से नटवर नागर कहलाते हैं।

गोपियाँ भक्तिमार्ग की आचार्या हैं। भक्ति किस प्रकार करनी है, यह गोपियाँ समझाती हैं। भक्तिमार्ग में गोपियों को गुरु मानो।

ईश्वर के स्वरूप में आसक्ति ही भक्ति है। गोपियों का सख्यभाव, वात्सल्यभाव, हास्यभाव श्रीकृष्ण के चरणों में है। एक-एक अंग में वे तन्मय हो जाती हैं।

लाला ने करवट बदली, यह उत्सव है। उत्सव के दिन दूसरा कुछ न बने तो प्रभु को पालने में झुलाओ, कीर्तन करो और दरिद्रनारायण को भोजन कराओ। वैष्णवों को आमन्त्रित कर प्रेम से भोजन कराने से कन्हैया राजी होता है।

लाला का जब जन्म हुआ तो गोपियों ने लाला को बहुत दिया था। इसके लिये उन्होंने गोपियों की पूजा की थी।

किसी को गरीब न समझो।

देने वाला समझे कि मैं देता हूँ और उपकार करता हूँ, तो ऐसा दान सफल नहीं होता।

गरीब का सत्कार करके पीछे दान दो और भावना करो कि ठाकुरजी दान दे रहे हैं और लेने वाला भी ठाकुरजी का स्वरूप है। जहाँ गरीब का सम्मान होता है, वहाँ प्रभु प्रसन्न होते हैं।

नन्द और यशोदाजी खूब लुटाते हैं, इसलिये कभी घटता नहीं। जितना बने उतने का उपयोग अपने हाथों से करो, प्रभु अवश्य देवेंगे।

सेवा के लिये निश्चित किए समय पर ही सेवा करो।

बालकों की पूजा कर गोपियाँ गद्‌गद् हो गईं। एक-एक गोपी पूजा करती है। हृदय से आशीर्वाद निकलता है।

उत्सव के दिन भी मन बाहर भटके और संसार का स्मरण होवे तो उत्सव कैसा ? उत्सव तो प्रभु में तन्मय होने के लिये है।

गृहस्थाश्रम गाड़ी है। श्रीकृष्ण गाड़ी में रहेंगे तो गाड़ी सीधी चलेगी। जिसके जीवन में संसार-सुख मुख्य है, उसकी गाड़ी टेढ़ी चलती है।

गृहस्थाश्रम में श्रीकृष्ण की सेवा करो, नहीं तो कन्हैया गाड़ी को ठोकर मारेगा।

जीवात्मा को निमित्त कर प्रभु सत्संग को खड़ा करते हैं। प्रति दिवस प्रभु-नाम का जप नहीं करोगे, तो तुम्हारी गाड़ी टेढ़े मार्ग पर जाएंगी।

जब प्रभु १०८ दिन के थे तो शकटासुर का वध किया था। इसलिये १०८ मनकों की माला लेकर जप करो।

बुद्धि अर्थात् यशोदा श्रीकृष्ण से दूर नहीं जावे।

धार्मिक विधि मुख्य है। एक दिन जीव "पशु" तुल्य था। "पशु संस्कारों" के निवारण के लिये धार्मिक विधि की जरूरत है।

लाला का जन्मनक्षत्र रोहिणी है।

नाम अनन्त हैं और लीलायें भी अनन्त हैं।

लाला की कुण्डली में आठ ग्रह ठीक हैं, केवल राहु खराब है। दूसरे देव शस्त्र से घायल करते हैं, कन्हैया बंशी से घायल करता है।

वृन्दावन में दान-गली है। इस गली में लाला दान माँगता था। देवगण परस्त्री से दूर रहते हैं, किन्तु कन्हैया तो परस्त्रियों के साथ ही खेला था।

कन्हैया कहता है कि मैं बहुतों का बालक हूँ, बाप भी हूँ। पर जो चाहें, उनका स्वामी होने को भी तैयार हूँ। श्रीकृष्ण की लीला अलौकिक है।

श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी, प्रेममाधुरी और रसमाधुरी ने अनेकों को आकर्षित किया है।

श्रीकृष्ण जहाँ विराजते हैं, उनकी ऐश्वर्य शक्ति भी गुप्त रूप से वहाँ विराजती है।

श्रीकृष्णलीला निरोध लीला है। मन का निरोध होवे तो मुक्ति मिलती है।

मन में जब तक विरोध और वासनायें हैं, मन का निरोध नहीं हो सकेगा।

रात्रि में बिस्तर पर सोने के बाद धीरे-धीरे, मन में-से संसार का विस्मरण होता है और मन जगत् को भूल जाता है। इस प्रकार मन का ब्रह्मसम्बन्ध होता है।

विचार से यह समझ में आता है कि मुक्ति मन की होती है, आत्मा की नहीं। व्यवहार में मन कहता है-"मेरा मन फँसा हुआ है।"

आत्मा और परमात्मा के भेद में कोई वास्तविक भेद नहीं है। जो चैतन्य व्यापक है, वही चैतन्य परमात्मा भी है।

जीव और ईश्वर में वास्तविक भेद नहीं है, औपाधिक है। गाय और घोड़ा यह वास्तविक भेद है। नाम अलग-अलग हैं, पर तत्त्व एक ही है।

महाआकाश और घड़ों में का आकाश तत्त्व एक ही है। एक होने पर भी उपाधि भेद से दो भासते हैं।

जीव अंश सदृश्य है, पर वास्तविकता में तो ईश्वर के ऐसा ही है। जीव को ईश्वर का ही अंश समझो।

जीव अंश रूप है और अंश की तरह है। ये दोनों सत्य हैं।

जिसकी बुद्धि भावना–प्रधान है, उनके लिये जीव "बिन्दु" है और ईश्वर "सिन्धु" है।

तर्क शास्त्र के अनुसार सिन्धु में से बिन्दु के अलग हो जाने पर सिन्धु का नाश होता है।

माया नाम की दासी जीव को खिलाती है और रुलाती भी है। जीव का बंधन बानर के ऐसा है। बन्दर हांडी में–के चने मुट्ठी में भरता है किन्तु मुट्ठी छोटे मुँह की हांडी में से बाहर नहीं निकलती। यह संसार हांडी की तरह है।

स्वयं के बन्धन से जीव स्वयं को बांधता है, फिर भी कहता है कि घर के लोग मेरे को छोड़ते नहीं।

यमदूतों के धक्का मारने पर रोते–रोते संसार को छोड़ने की अपेक्षा हँसते–हँसते संसार को छोड़ देना क्या खराब है ?

लोग प्रवृत्ति को छोड़ते हैं, पर ब्लडप्रेशर (रक्तचाप) हो जाने पर ही।

आत्मा का बंधन नहीं है, बंधन तो मन का है। जिसके मन का लय हो जाता है, उसे मुक्ति मिलती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

जिउ राम राखै तिउ रहीयै रे भाई।
हरि की महिमा किछु कथनु न जाई।।

–नामदेव

36

संसार के व्यवहार में खर्च हो रही शक्ति को विवेक से रोको। समय और शक्ति के नाश का अर्थ है, सर्वस्व का नाश। परमात्मा सब प्रकार से उदार है, किन्तु समय देने में उदार नहीं हैं।

श्रीकृष्ण का मित्र-प्रेम अलौकिक है। उनकी इच्छा है कि जीव मेरा मित्र है, मेरे साथ उसका प्रगाढ़ सम्बन्ध होना चाहिये।

ब्रजवासी कंस को कर रूप में मक्खन देते थे, अतएव बालकों को मक्खन नहीं मिलता था। कन्हैया ने बालगोपाल 'चोर-विद्या मण्डल' की स्थापना की। चोर कफल ऋषि के शिष्य हैं और कफल चौर्य-कला के आचार्य हैं। इसलिये लाला ने मित्रों को कफलम् मंत्र दिया।

चोरी पाप है। पर पाप क्या है ? शरीर सुख के लिये क्रीड़ा पाप है।

जो प्रभु के साथ क्रीड़ा करता है, उसे पाप करने की इच्छा नहीं होती। शास्त्र का प्रवृत्ति-धर्म अज्ञानी जीवों के लिये है, अज्ञानी जीव ईश्वर से विमुख रहते हैं।

प्रभु-प्रेम में जिन्हें देहभान भी नहीं रहता, शास्त्र उनके लिये नहीं है।

बालक प्रभु के साथ क्रीड़ा करते हैं। उनके हाथों पाप नहीं होता। यह चोरी की कथा नहीं, प्रेम की कथा है।

गोपियों का प्रेम देखकर प्रभु सबके घर जा, मक्खन खाते हैं। क्या यह चोरी कही जाएगी ? मण्डल का अध्यक्ष तो लाला ही है।

श्रीकृष्ण-लीला लौकिक होते हुए भी अलौकिक है। मुक्ति दो प्रकार की है - (१) क्रममुक्ति (२) सद्यःमुक्ति। कितने ही क्रम-क्रम से सीढ़ियाँ चढ़ते जाते हैं। प्रथम शूद्र के घर जन्म होता है, पीछे वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के घर। ब्राह्मण में भी अग्निहोत्री होने के बाद योगी होता है। योगी होने पर भी संचित कर्मों को भस्मीभूत करने के लिये तीन जन्म लेने पड़ते हैं। यह क्रम-मुक्ति है।

श्रीकृष्ण जिस जीव पर विशिष्ट कृपा करते हैं, उसे सद्योमुक्ति प्रदान करते हैं। भगवान की विशिष्ट कृपा के लिये कोई विधान नहीं है। प्रभु सेवा करे, ध्यान करे; फिर भी कहे कि मेरे से कुछ नहीं बनता, उसे ही कृपा की प्राप्ति होती है।

गोपियाँ घर का काम श्रीकृष्ण-कृपा समझ कर करती हैं। उनका स्मरण करते-करते काम करती हैं।

जप करते हुए यदि तुम्हें निद्रा आ जाए और जागने पर भी जप करने लग जाओ, तो शयन और जागने के संधिकाल में जप चालू था, प्रभु ऐसा मानते हैं।

कथा सुनने के बाद किये हुये पापों के लिये पश्चाताप करो।

बड़े-बड़े योगी संसार का त्याग करने के लिये तप करते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण को भूलना चाहती हैं, पर घर के कामों में भी नहीं भूल पाती।

प्रेम में सुख-भोग की इच्छा नहीं होती, प्रियतम को सुखी देखने की इच्छा होती है।

सुख की इच्छा प्रेम नहीं वासना है।

स्त्री अन्नपूर्णा का स्वरूप है। सबको भोजन कराके स्वयं भोजन करती है।

संकट के समय ईश्वर दौड़ा आता है, जीव संकट के समय दगा देता है।

श्रीमहाप्रभुजी ने गोपियों को "प्रेम संन्यासिनी" की पदवी दी है।

गोविन्द को गोपी में रहना है। बुद्धि 'गोपी' है। जीव जब परमात्मा के लिये पागल होता है, तभी उसे गोविन्द मिलते हैं।

मनुष्य सहन कर सके ऐसे दिव्य रूप में ही ईश्वर जीव से मिलने आता है। ईश्वर का कोई एक रूप नहीं है। जिस घर में परमात्मा के लिये कोई वस्तु नहीं, वह घर श्मशान के समान है।

अहंकारपूर्ण बुद्धि प्रभावती है। स्थूलबुद्धि परमात्मा को नहीं पकड़ सकती।

सूक्ष्मबुद्धि ईश्वर को पकड़ सकती है। साधना के बाद ही परमात्मा का प्रकाश मिलता है।

साधना करते–करते साध्य के हाथ में आने पर भी साधन को नहीं छोड़ना चाहिए।

सिद्धि से प्रसिद्धि मिलती है। प्रसिद्धि में माया का वास है। इससे पतन भी होता है। हाथ में आये हुए भगवान को छिटकने में देर नहीं लगती। इसलिये अन्तिम श्वास तक भी जीव यह माने कि भगवान नहीं मिले हैं। भगवान के मिलने पर भी सेवा–स्मरण में तन्मय रहो।

लाला रामावतार के बन्दरों को मक्खन खिलाता है। रामावतार में बन्दर वृक्षों की कोंपल खाकर रहते थे। रामफल और सीताफल को छोड़कर वे दूसरे फल खाते हैं। वानर भी मर्यादा रखते हैं। पर मनुष्य ही ऐसा है कि कुछ प्राप्ति हो जाने पर मर्यादा तोड़ देता है।

प्रभावती के एक लड़का था। उसे पता लगा कि माँ ने लाला को पकड़ा है। उसने माँ से कहा कि मैंने लाला को न्योता देकर बुलाया है, अतएव जो सजा देनी हो, मेरे को दो। कन्हैया के घर यशोदा माँ मुझे मक्खन मिश्री खिलाती है। यदि कन्हैया को पकड़कर ले जाओगी तो यशोदा माँ लाला को मारेगी।

जब तक माता यशोदा लाला को धमकाये, तब तक तो ठीक है, पर यदि मारेगी तो मैं बीच में पड़कर कहूँगा कि मारो मत।

लाला के हाथ में आ जाने के बाद प्रभावती श्रीकृष्ण को भूलती है। अकड़कर कहती है कि मैंने लाला को पकड़ा है।

रास्ते में वृद्ध ब्रजवासी आ रहे थे। अतएव प्रभावती घूँघट करके चल रही थी। लाला ने नख के स्पर्श से इशारा किया और दूसरा हाथ पकड़ने को कहा तथा अपने मित्र का हाथ पकड़वा दिया। आप छूट कर यशोदाजी के पास पहुँच गए।

प्रभावती ने जाकर यशोदा माँ से कहा कि लो तुम्हारे लाला को पकड़ कर लाई हूँ।

जो श्रीकृष्ण को बाहर खोजता है, उसकी फज़ीहत होती है। आनन्द किसी रूप में नहीं है। आनन्द बंगले में नहीं है। जो आनन्द को बाहर

खोजता है, वह दुःखी रहता है। आनन्द को अन्दर ही खोजो।

यशोदाजी ने कहा कि कन्हैया तो अन्दर बैठा है। घूँघट हटाकर जब प्रभावती ने देखा तो अपने बालक को पाया। उसने बालक को सजा दी।

जो धर्म के लिये मार खाता है-परमात्मा के लिये मार खाता है, उसे रोना नहीं पड़ता।

"नरसैया को स्वामी साचो - झूठी ब्रज की नारी ।"

प्रभु कहते हैं-जो मेरे साथ मेरे आँगन में आता है, वह रोता हुआ नहीं जाता। या तो गोपियों के मक्खन में मिठास है या उनके प्रेम में मिठास है। जो भी होवे, पर लाला को घर का मक्खन नहीं भाता।

यशोदाजी ने विचार किया कि घर में सेवक मक्खन निकालते हैं, इसलिये लाला को अच्छा नहीं लगता। अब–से मैं स्वयं मक्खन निकाला करूँगी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

राधाजी के सोलह नाम

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी ।
कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी ।।
कृष्णवामांगसम्भूता परमानन्दरूपिणी ।
कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी ।।
चन्द्रावली चन्द्रकान्ता शरच्चन्द्रप्रभानना ।
नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च ।।

(ब्र० वै० पु० श्रीकृष्णजन्मखण्ड १७। २२०–२२२)

संसार गोपियों के समान है, विषय दही के तुल्य है। दही में खटास अधिक है, मिठास कम है। किन्तु दही का मंथन करने के बाद जो मक्खन निकलता है, वह मीठा होता है।

संसार का मन्थन करो। यशोदा माँ दही का मंथन करती हैं। यह कथा साधारण नहीं है, भक्ति की कथा है। यशोदा माँ भक्ति है। ईश्वर को बाँधने वाली यशोदा माँ के चरित्र का मनन करोगे तो यह कथा समझ में आएगी।

यशोदा का दर्शन करो, पीछे लाला के दर्शन होंगे।

वस्त्र वासना के प्रतीक हैं। रेशमी वस्त्र मुलायम हैं। वासना को मुलायम करो। वासना से ही शरीर की स्थिति है।

वासना दो प्रकार की हैं - सद् और असद्।

सद्वासना भक्ति को स्थिर करती है, असद्वासना भक्ति में विघ्न डालती है।

जो सुख-भोग की वासना रखता है, वह सुखी नहीं होता।

त्याग से वासनाओं का अन्त नहीं होता, भोग से पूर्ति नहीं होती। अतएव वासनाओं को झटक डालो। व्यवहार को भक्तिमय बनाओ। परमात्मा के अनुसंधान में किया गया प्रत्येक व्यवहार भक्ति है।

अभिमान में किया गया व्यवहार मनुष्य को सताता है। व्यवहार छोड़ने से नहीं छूटता। घर छोड़ने की बात नहीं है, मन की चौकसी रखो।

आँखें दर्शन करें, मन स्मरण करे और शरीर सेवा करे। यशोदा माँ मन्थन करती हैं।

घर में परमात्मा सोये हुए हैं। आनन्द तो घर में ही सोया हुआ है। मन, वाणी और कर्म से भक्ति करने पर यह आनन्द जागता है।

वैष्णव का हृदय जब प्रेम-प्लावित होता है, तब प्रभु को भूख लगती है।

हृदय का प्रेम-रस परमात्मा को अर्पित करो।

प्रेम की ऐसी महिमा है कि प्रेम स्वरूप में प्रकट होता है। उसमें शक्कर मिलाने की जरूरत नहीं होती।

आज यशोदा माँ का ब्रह्मसम्बन्ध हुआ है। माँ बालक को खिलाती है, तो माता और पुत्र एक हो जाते हैं। इस अद्वैत समझना कठिन है।

जब जीव का परब्रह्म–सम्बन्ध होता है, तो दूध में उफान आता है। दूध में उफान क्या है ? जो सुख भोग किया है यदि उनका स्मरण होगा, तो ब्रह्मसम्बन्ध में विघ्न आएगा।

ब्रह्मसम्बन्ध के समय दूध में उफान न आए, इसकी सावधानी रखो।

जो ईश्वर का होता है उससे परमात्मा एक ही प्रश्न पूछते हैं –"तू मेरा है या जगत् का है ?"

परमात्मा के साथ प्रेम करने के बाद तुम किसी दूसरे के साथ प्रेम करो, यह परमात्मा को अच्छा नहीं लगता।

जीव पर परमात्मा प्रेम की वर्षा करते हैं।

दूध में उफान आने पर भी माँ जब वहाँ नहीं जावे, तो बालक समझता है कि माँ का प्रेम मेरे में है।

यशोदा माँ की पहली भूल यह थी कि बालकृष्ण के गोद में रहते हुए उसकी दृष्टि दूध पर गई।

प्रथम भगवान में आँखों को स्थिर करो, पीछे मन धीरे-धीरे स्वयं स्थिर होगा।

जिसकी आँखें चंचल हैं, उसका मन भी चंचल रहता है।

अन्न भी चाहता है कि मैं उस भक्त के उदर में पहुँचूँ, जो प्रभु का स्मरण करते-करते मुझको पचावे।

मनुष्य का जीवन परोपकार के लिए है।

प्रभु प्रसन्न होवें–ऐसा कोई सत्कर्म न बनें, तो जीवन व्यर्थ है। बालकृष्णलाल को भूमि पर बैठाकर यशोदा दूध उतारने गई। 'माँ को मेरे से दूध अच्छा लगता है' - ऐसा विचार कर कन्हैया ने एक कंकड़ी मटकी

पर मारी। मटकी फूट गई और मन भर दूध का नुकसान हुआ।

अलौकिक सेवा को छोड़ कर जीव जब लौकिक सेवा करने जाता है, तो भगवान उसे बिगाड़ते हैं।

परमात्मा को पकड़ने दौड़ो तो लकड़ी छोड़कर दौड़ो। लकड़ी अभिमान की प्रतीक है। परमात्मा के चरण और मुख पर नजर रखकर दौड़ोगे, तो परमात्मा को पकड़ सकोगे।

भक्ति धर्मानुकूल होनी चाहिए। कोई भी कर्म जो प्रभु के अनुसंधान के लिये किया जाता है–भक्ति है।

भक्ति और धर्म भिन्न नहीं हैं।

बिना सदाचार के मन शुद्ध नहीं होता।

बिना भक्ति के ज्ञान पंगु है। बिना धर्म के भक्ति पंगु है। कन्हैया के हाथ में आने पर यशोदाजी ने लकड़ी फेंक दी। कन्हैया मुड़ कर सम्मुख आया।

लाला ने कहा कि तुम्हें समझना होवे तो समझो। तुम्हारा अभिमान उतर गया। तू सामने आई, अतएव मैं हाथ में आया हूँ।

परमात्मा प्रेम से बँधते हैं, डोरी से नहीं।

वात्सल्यभक्ति और ऐश्वर्यशक्ति में विवाद हुआ। यशोदा ने कहा कि मैं बाँधूंगी। ऐश्वर्यशक्ति ने कहा कि तू किस तरह बाँधेगी, यह मैं देखूँगी?

जीव दुराग्रही होता है और परमात्मा अनुग्रही होते हैं। ऐश्वर्यशक्ति को प्रभु ने आज्ञा दी कि "खटपट छोड़कर अब तू द्वारका जा। वहाँ मैं तेरा स्वामी बनूँगा"।

प्रभु ने द्वारका में ऐश्वर्य का भोग किया, पर ब्रज में तो ब्रजवासी ही रहे।

लाला ने बन्धन स्वीकार किया। यशोदा लाला को धमकाती है। माँ ने लाला को बाँधा है, पर भीतर से दुःख पाती हैं और विचार करती हैं कि क्या उपाय करूँ,? जो यह चोरी नहीं करे।

लाला को बाँधकर यशोदाजी रसोई में गईं। माँ शरीर से तो रसोई में थी, पर मन लाला में था। वह विचार करती है कि "प्रेम से जिमाऊँगी तो लाला मानेगा। मुझे उसे सुधारना है।"

कितने ही बालक लाला को बन्धन से छुड़ाने की कोशिश करते हैं। पर यशोदाजी ने ऐसी गाँठ दी है कि छूटती नहीं।

बालक पूछते हैं–कन्हैया ! क्या हाथ दुखते हैं ? लाला कहता हैं कि मैं तो झूठ–मूठ का रोता हूँ।

जब नवधाभक्ति परिपूर्ण होती है, तब प्रभु प्रेम से बँध जाते हैं।

जब ईश्वर बँधन में आता है, तब जीव मुक्त हो जाता है।

अतिसम्पत्ति और सन्मति साथ नहीं रहती। माता–पिता, पत्नी सब कहते हैं कि तुम्हारे शरीर पर हमारा हक है। अग्नि कहती है–मेरा हक है। किन्तु प्रभु कहते हैं कि जीव को शरीर मैंने दिया है, अतएव इस पर मेरा हक है।

भोग–विलास में जो सम्पत्ति का व्यय करता है, वह दूसरे जन्म में वृक्ष होता है।

बीत गये दिन भजन बिना रे।
बाल–अवस्था खेल गँवाई,
जब जोबन तब मान घना रे।।
लाहें कारन मूल गँवायो,
अजहुँ न गई मन की तृस्ना रे।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
पार उतर गये सन्त जना रे।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

किसी की निन्दा न करो, किसी की प्रशंसा भी न करो। गुणगान तो प्रभु का ही करो।

जीव जब परमात्मा के लिये व्याकुल होकर रोता है, तो पाप धुल जाते हैं।

"माँ तू मुझे प्रेम से बाँध रही है। यह मैं नहीं भूलूँगा। द्वारका का राजा होने पर और सोलह हजार रानियों के बीच रहकर भी सदा तेरी याद करूँगा।"

प्रेमपूर्वक खिलानेवाले को खानेवाले की अपेक्षा हजार गुना अधिक सुख मिलता है।

परमात्मा श्रीकृष्ण परम प्रेमस्वरूप हैं।

पुत्र के साथ, मित्र के साथ यदि प्रेम करोगे तो वह "प्रेम" कहलाएगा। पर सबके साथ किये जाने वाले प्रेम को "परम प्रेम" कहते हैं। पूतना ने जहर दिया, शिशुपाल ने सभा में गालियाँ दी, भीष्म पितामह ने युद्ध में खूब बाण मारे, इसके बावजूद भी मृत्यु के समय कृष्ण पितामह से मिलने गये। भृगु ऋषि ने छाती में लात मारी, फिर भी उनसे प्रेम किया।

प्रेम-बल सर्वश्रेष्ठ बल है। ज्ञान-बल, शरीर-बल और द्रव्य-बल इन सबकी हार होती है, जबकि प्रेम-बल की सर्वदा जीत होती है।

घर के लोगों से सुख मिलता है, अतएव उनके प्रति प्रेम जागता है। मन को बार-बार समझाओ कि "श्रीकृष्ण से ही मैं सुखी हूँ।"

जब तक मनुष्य यह समझता है कि मेरे कर्मों के द्वारा मैं सुखी हूँ, तब तक शुद्ध प्रेम नहीं जागता। पर "श्रीकृष्ण-कृपा से मैं सुखी हूँ" - ऐसा मानने पर शुद्ध प्रेम जागता है।

विचार करने के लिये प्रभु ने मनुष्य को मन और बुद्धि दिये हैं। जीवात्मा बहुत पाप करता है। उसने कितना पुण्य किया, यह तो वह याद रखता है पर कितने पाप किये, यह याद नहीं रखता

पुण्यों को भूल जाओ, पापों को याद रखो।

जब पापों में कमी आएगी तो प्रभु के प्रति प्रेम जागेगा। प्रेम नहीं है, ऐसा समझ कर सत्कर्मों को न छोड़ो।

बालक रोता है तो मातृ-ममता के कारण माँ कथा में नहीं जाती। बालक में शक्ति के कम होने पर भी, उसके प्रेम में अधिक शक्ति है। माँ वहाँ निर्बल हो जाती है।

मनुष्य का प्रेम बिखरा पड़ा है। बिखरे हुये प्रेम को एकत्रित करो।

सूरदासजी जन्मांध नहीं थे। अपनी आँखों से पाप हुआ समझकर उन्होंने आँखें फोड़ ली थीं। किन्तु उनके अन्तर के नेत्र खुल गए थे। उन्होंने परमात्मा के दर्शन किये।

नाम-स्मरण करते जा रहे सूरदासजी खड्डे में गिर पड़े। भगवान को चिन्ता हुई। ग्वाल का रूप धारण कर सूरदास को बाहर निकाला।

सूरदास ने कीर्तन किया और बालकृष्णलाल ने कीर्तन सुना। सूरदास को पता नहीं था कि मेरा हाथ किसने पकड़ रखा है। पीछे पता लगा कि हाथ तो बालकृष्ण ने पकड़ रखा था।

विरह में जितनी अधिक आतुरता होगी, उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा। प्रेम के समक्ष ईश्वर भी निर्बल हैं।

बालकों का नियम था कि वे श्रीकृष्ण के बिना अकेले नहीं जाते थे और श्रीकृष्ण को भी अकेले नहीं जाने देते थे।

जहाँ भी जाओ, ठाकुरजी को साथ में रखो।

स्वरूप की घर में प्रतिष्ठा करो और परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव करो।

बुद्धि के ऊपर ज्यादा निर्भर न रहो। जो मनुष्य सिर्फ बुद्धि में ही विश्वास रखकर काम करता है, उसे धक्का लगना संभव है।

व्यवहार करना पाप नहीं है, पर व्यवहार विवेक से करो, प्रभु-आज्ञा लेकर करो।

व्यवहार उतना ही करो, जितने की जरूरत होवे।

जितना बोलने की आवश्यकता होवे, उतना ही बोलो। 'अघ' अर्थात् पाप करने में ही जो अपनी जय समझता है, वह अघासुर है।

कलियुग में ऐसा दिखता है कि जो पाप करता है, वह सुखी है और जो पुण्य करता है वह दुःखी है, पर ऐसा नहीं है। यदि पापी सुखी दिखता है तो यह समझना चाहिए कि पूर्वजन्म के पुण्यों के प्रभाव से ही वह सुखी है।

जो पाप करने में सुख समझते हैं, वे अघासुर हैं। पाप का प्रवेश पहले मन में होता है और विचार बिगड़ते हैं। पीछे वाणी बिगड़ती है और अन्त में व्यवहार बिगड़ता है।

जब तुम्हारे मन में पाप का प्रवेश होवे तो स्वयं को धिक्कारो, स्नान करो, गाल पर तमाचा मारो। पाप भले ही मन में प्रवेश करे, पर सावधानी रखो कि शब्दों में न आए। जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं कि पाप करने की इच्छा न होने पर भी पाप कर्म हो जाता है।

वासना के वेग के सामने विवेक नहीं ठहरता।

जब ऐसा लगे कि पाप कर्म होने वाला है, तो श्रीकृष्ण को साथ रखकर पाप करो। अर्थ का अनर्थ न करो। पाप मन में आए तो नाम-स्मरण करो। तुम्हारे में अनेकों जन्मों के संस्कार भरे हुए हैं। वे जब तुममें प्रवेश करें तो प्रभुस्मरण द्वारा उन्हें टालने का प्रयत्न करो।

दुर्योधन जानता था कि मैं अधर्म का आचरण कर रहा हूँ, फिर भी अधर्म नहीं छोड़ सका।

पूर्वजन्म के पापों के संस्कार इतने प्रबल होते हैं कि उन्हें बुद्धि में से निकालना कठिन होता है। ऐसे में श्रीकृष्ण को साथ रखो।

भगवान को साथ रखकर पाप करो। इसलिए जब मन में पाप जागे तो प्रभु का स्मरण करो। प्रभु का स्मरण करते हुए यदि पाप होगा भी तो पाप छूट जाएगा। पाप की आदत सरलता से नहीं छूटती।

जो परमात्मा के साथ प्रेम करता है, उसे परमात्मा "परम आत्मा" बनाते हैं। यह प्रभु की उदार लीला है। महापुरुष इसे 'सर्वोदय-लीला' मानते हैं।

रसरूप प्रभु का सान्निध्य ही रासलीला है।
रासलीला कभी समाप्त नहीं होती।

द्रष्टा और दृश्य में भेद होने पर पूर्ण आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। जीव ईश्वर के साथ एक रस होता है। गाय को लगता है कि कन्हैया खाता है, तो एकरसता आती है।

मन को वृन्दावन ले जाओ। भावना करो कि "लाला के लिये सुन्दर द्राक्षाफल, मेवा ले जाता हूँ।" भावना रखो कि मेरी सामग्री का ठाकुरजी भोग लगावेंगे।

भावना से भक्ति बढ़ती है।

उत्तम से उत्तम पदार्थ ठाकुरजी को अर्पण करना भक्ति है। पद्मव्यूह की रचना प्रभु ने की है। कमल के बीच में कोष या बंध होता है। छोटी पंखुड़ियाँ बन्ध के नजदीक और बड़ी बंध से दूर होती हैं। कन्हैया कोष हैं। छोटी-बड़ी हर पंखुड़ी का सम्बन्ध कोष के साथ रहता है।

भोजन-लीला में प्रत्येक बालक को कन्हैया ने अपना स्पर्श देकर साथ बैठाकर भोजन करवाया है।

जो अकेला खाता है, वह बिल्ली बनता है। लुक–छिप कर अकेले न खाओ।

बकासुर अर्थात् दंभ। वृत्रासुर अर्थात् अज्ञान या अंधश्रद्धा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

कबीर–बोध

तू तो राम सुमिर जग लड़वादे।
कोरे कागज काली स्याही, लिखत–पढ़त वाको पढ़वादे।।
हाथी चलत है अपने मद में, कुकुर भुकत वाको भुकवादे।
कहत कबीर सुनो रे कमाला, नरक पचत वाको पचवा दे।।

जगत् में किसी से छल न करो।

खाना पाप नहीं है। दूसरे को ठगना पाप है। किसी को धोखा देकर मनुष्य खाए, यह ठाकुरजी को अच्छा नहीं लगता।

जिसके घर का खाओ, उसकी प्रशंसा करो। प्रशंसा सुनकर थकावट उतर जाती है। थोड़ा विनोद करो, पर विवेक रखकर करो।

जहाँ प्रेम होता है, वहाँ मनुष्य माँगकर खाता है। सारे दिन जो नारायण के पीछे पड़ा रहता है, उसके यहाँ लक्ष्मीजी नहीं आती। लक्ष्मीजी के लिए थोड़ी प्रवृत्ति(प्रयत्न) भी आवश्यक है।

ईश्वर के साथ प्रेम करते हुए जब जीव देहभान भूलता है, तो प्रभु भी अपना मान भूलकर जीव के साथ एकरस हो जाते हैं।

जो ब्राह्मण बहुत तप करता है, उसके घर का माँगकर भी खाओ। दूसरा कुछ न भी मिले तो माँगकर पानी ही पीवो।

पवित्र ब्राह्मण के घर का जल ग्रहण करने से मन और वाणी सुधरती है। एक दिन कन्हैया ने मधुमंगल से कहा-"मुझे तेरे घर का खाना है।" मधुमंगल शांडिल्य ऋषि का पुत्र था। माँ का नाम पूर्णमासी था। मधुमंगल ने पूर्णमासी से कहा कि लाला को अपने घर का खाना है, जो तैयार है सो दो। पर घर में कुछ बनाया हुआ नहीं था। शांडिल्य ऋषि प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म प्रारम्भ करते, जो रात्रि में आठ बजे तक चलता। इससे भोजन का समय न रहने पर फलाहार करते। ब्राह्मण-शरीर तप करने के लिए है।

घर में कुछ था नहीं। खोजने पर थोड़ा मट्ठा मिला। सोचा कि यदि मट्ठा खट्टा होगा तो लाला को कष्ट होगा। अतएव उसमें शक्कर मिलाई और प्रभु के लिए दी।

प्रभु यह नहीं देखते कि मेरे लिये क्या लाया है। वे तो यह देखते हैं कि किस भाव से लाया है। दूसरे बालक मिठाई लाये हैं देखकर, मधुमंगल को छाछ देने में संकोच हुआ और उसने स्वयं छाछ पीनी शुरू की। यह देखकर लाला ने कहा–"छाछ तो मेरे लिए आई है, तूँ क्यों पी रहा है ?" मधुमंगल शीघ्रता से छाछ पीने लगा। कन्हैया दौड़ा, पर मधुमंगल ने हांड़ी खाली कर दी थी। उसके मुँह में–से जो छाछ रिसकर बाहर आ गई थी, कन्हैया उसे ही चाटने लगा। उसी समय ब्रह्माजी आकाश में आए और उन्होंने यह लीला देखी।

ब्रह्माजी को लगा कि यह कैसा भगवान है ? क्या कभी भगवान ग्वाल का मुँह चाटता है ? ब्रह्माजी के मन में शंका हुई।

जिस ब्रह्मा ने भगवान से अवतार ग्रहण करने की प्रार्थना की थी और जब भगवान ने देवकीजी के गर्भ में प्रवेश किया तब भी प्रार्थना की थी- वे ही ब्रह्मा भगवान की सगुण लीला को देखकर मोहित हो गये।

"निर्गुण रूप सुलभ अति सोई, सगुण न जाने कोई"

ब्रह्माजी ने विचारा कि मैं इनकी परीक्षा लूँ। यदि मेरी सृष्टि जैसी रचना ये कर सकेंगे, तो मैं समझूँगा कि श्रीकृष्ण भगवान हैं। अतएव ब्रह्माजी माया से बछड़ों को उठाकर ब्रह्मलोक में ले गये।

बालकों ने कन्हैया से कहा कि बछड़े नहीं दिखते। प्रभु खोजने निकले। इसी समय ब्रह्मा बालकों को भी ब्रह्मलोक ले गये।

ब्रह्मा काल है। संसार के विषयों में नजर देवे, वह काल। ब्रह्मा जीव को पकड़ता है।

ईश्वर पंचभूतों को उत्पन्न करते हैं। पंचभूतों का आधार लेकर ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं। किन्तु ईश्वर को पंचभूतों की आवश्यकता नहीं। वह तो संकल्प मात्र से सृष्टि की रचना कर सकता है।

द्रौपदी की साड़ी संकल्प से उत्पन्न हुई थी। गायों की भावना ईश्वर से मिलने की थी। अतएव श्रीकृष्ण ने बछड़ों का रूप धारण किया और गायों का ब्रह्म सम्बन्ध कराया।

"सर्वं विष्णुमयं जगत्" - यह प्रभु ने प्रत्यक्ष बताया है। ब्रह्माजी वापस वृन्दावन आए और विचारने लगे कि इनमें क्या सच्चा है और क्या झूठा है ?

ब्रह्माजी ने जब ध्यान करके देखा तो सब बालकों में उन्हें श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। उन्हें अपनी भूल समझ में आई और उन्होंने भगवान की स्तुति की।

ब्रह्माजी ने कहा कि मेरा तो पंचतत्त्व का शरीर है। प्रभु आप आनन्दरूप हैं।

श्रीकृष्ण-लीला समझनी कठिन है। ब्रह्माजी को भी यह लीला देखकर आश्चर्य हुआ था।

भोजन करना पाप नहीं है, पर उसके स्वाद में तन्मय हो जाना पाप है। स्वाद में तन्मय होने पर भक्ति में विघ्न आएगा।

जगत् में जितने रूप हैं उन सब में भगवान हैं, यह समझकर व्यवहार करो।

सुखी रहना होवे तो अपने समाज के साथ रहो। दूसरों के साथ रहनेवाला दुःखीं रहता है।

ब्रह्माजी जब लाला की परीक्षा लेने गए तो उनके सेवकों ने ही उन्हें दुत्कार कर भगा दिया था। मार पड़ने पर उनकी अक्ल रास्ते पर आई।

मनुष्य भी ऐसा ही है। बिना मार खाये रास्ते पर नहीं आता।

मोर में अनेक सद्गुण हैं। अतएव वह परमात्मा को अच्छा लगता है। वह दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होता है। मोर इस शरीर से काम-सुख नहीं भोगता। आकाश में मेघों को देखकर हर्षातिरेक में उसकी आँखों से आँसू टपकते हैं, मयूरी उन्हें पीकर गर्भ धारण करती है।

जो शरीर से काम-सुख नहीं भोगता, वह परमात्मा को प्रिय लगता है।

कार्तिक सुदी ८, गोपाष्टमी को भगवान ने गो-चारण का शुभारम्भ किया। गायों की पूजा की, उन्हें खिलाया और साष्टांग प्रणाम किया। पशु भी प्रेम को समझता है। कन्हैया गोपालकृष्ण बने हैं।

गाय पशु नहीं है, तुलसीजी पौधा नहीं है, गंगाजी यमुनाजी जल नहीं है, ब्रज-रज मिट्टी नहीं है। ये सब तो दिव्य हैं !

जब तक प्रभु गोकुल में रहे तब तक उन्होंने पाँवों में जूते नहीं पहिने, हाथों में शस्त्र नहीं लिया, सिले हुए कपड़े नहीं पहिने, पीला पीताम्बर और काली कम्बल ही धारण की, हाथ में मात्र बंशी रखी। ये वस्तुएँ मित्र-प्रेम प्रकट करती हैं।

गोकुल में माथे के बाल नहीं कटवाये। नन्दजी की इच्छा हुई कि बाल उतरवा दूँ। पर गोपियों को बाल अच्छे लगते थे। इसलिए ११ वर्ष का होने पर भी कन्हैया का मुण्डन नहीं कराया गया था।

ताड़-वन में धेनुकासुर रहता था। वह राक्षस था और गदहे के रूप में रहता था। वन में फल सड़ जाते थे, पर वह किसी को खाने नहीं देता था।

धेनुकासुर देहाध्यास है। देहाध्यास अविद्या के कारण आता है। जब तक अविद्या का नाश नहीं होता, तब तक संसार छूटता नहीं।

देहाध्यास में भाव होता है कि मैं विद्वान हूँ, बलवान हूँ, स्वरूपवान हूँ, सम्पत्तिशाली हूँ। इस प्रकार देह का अभिमान होता है और इस अभिमान में वह दूसरों का अपमान करता है।

घर में कोई वस्तु बिगड़ेगी तो वह वस्तु तुम्हें श्राप देगी। इसलिये बिगड़ने के पहले ही उसे दूसरे को दे दो।

दाऊजी ने धेनुकासुर को मारा था।

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिय तरसे तुझ मिलत कूँ, मनि नाहीं बिसराम।।

–कबीर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

भगवान की लीला जीवों के उद्धार के लिये है। यमुनाजी की धारा में कालिय नाग रहता था। उसे गरुड़जी का भय था। बालकों के साथ भगवान यमुना की धारा के नजदीक खेलने गये। खेलते-खेलते गेंद यमुना के प्रवाह में जा पड़ी। तब बालकों ने कहा कि "इस धारा में तो विषधर नाग रहता है।" किन्तु कन्हैया तो नदी में कूद गया। कालिय नाग सामने आया। उसने कन्हैया को डसा, पर जहर अमृत हो गया।

पृथ्वी पर से जल की धारा में कूद पड़ना सरल है, पर फण पर नृत्य करना कठिन है। कालिय नाग को प्रभु ने मारा नहीं, नाथा है।

कालिय नाग के फण तो गिनती के ही थे, किन्तु मनुष्य के फणों का तो पार नहीं है।

मनुष्य की एक-एक इन्द्रिय एक-एक फण है। उसमें वासना रूपी जहर है।

विलासी भावों के आने पर भक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है।

इन्द्रियों के जहर को सत्संग से थोड़ा-थोड़ा कम करो।

कालिय नाग इन्द्रियाध्यास है। यमुना अर्थात् भक्ति में यदि विलासिता आए तो भक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि भोग और भक्ति में वैर है।

जो भक्ति की आड़ में इन्द्रियों को सुख देता है, वह कालिय नाग है। कालिय नाग को कन्हैया रमणक द्वीप में भेज देता है। इन्द्रियों को रमणक द्वीप में ले जाओ। धीरे- धीरे जहर बाहर निकल कर भक्ति-रस मिलेगा।

ज्ञान-मार्ग में इन्द्रियों को मारना पड़ता है, जबकि भक्ति मार्ग में इन्द्रियों को सुधारना पड़ता है। इन्द्रियों का दमन न करके भक्ति के साथ उनकी क्रीड़ा कराओ, उन्हें प्रभु के मार्ग में प्रवृत्त करो।

एक बार गोप बालक दावाग्नि से घिर गये। सभी ने कन्हैया से रक्षा

करने को कहा। कन्हैया ने कहा कि सब आँखें बन्द करो। गोप बालकों ने आँखें बन्द की। विराटस्वरूप धारण कर प्रभु दावाग्नि को पी गये।

संसार दावाग्नि है। वह जीव को जलाती है। घर में झगड़ा होवे, पक्ष-विपक्ष की दावाग्नि जल उठे, उसके पहले बालकों की तरह आँखें बन्द करके प्रभु का स्मरण करो। प्रभु तुम्हारा दुःख पी जायेंगे।

संसार की दावाग्नि से बचने के लिए प्रभु का ध्यान करो। जप में तन्मय हो जाओगे तो दावाग्नि दूर रहेगी।

प्रभु के लिये पदार्थों को तैयार करना 'भक्ति' है। पर मैं और मेरे बालक इसे खाएँगे-यह 'वासना' है। इसलिये वासना का त्याग करके, जो तुम्हारे आँगन में आए, उसे कुछ दो।

देश-सेवा और देव-सेवा के नाम पर मनुष्य इन्द्रियों को तुष्ट करते हैं। इन्द्रियों को न मारकर उन्हें नाथो, उन्हें वश में करो। भक्तिरस मिलने पर इन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं।

गोपियाँ बाँसुरी को गुरु मानती हैं। गुरु कौन है-वह जो प्राण भर दे। बाँसुरी ऐसी है जो प्राणों से भर देती है।

दूसरे वाद्यों को बजाने के लिए उन पर चोट करनी पड़ती है, किन्तु बाँसुरी पर नहीं।

बाँसुरी में सात छिद्र किये गए हैं और इसे पोला रखा गया है। इसने यह सब सहन किया है।

जो बहुत दुःख सहन करता है, उसे प्रभु अपनाते हैं।

दुःख पाकर नहीं, शान्त मन से सहन करो। अन्तर दृष्टि करो।

बाँसुरी कहती है कि मेरा अन्तर पोला है।

हृदय को भले ही पोला रखो, पर उसमें कचरा तो न भरो।

तिरस्कार पूर्वक संभाषण न करो। हँसते-हँसते प्रेम के साथ वार्तालाप करो। सत्य होने पर भी कर्कश वचन न बोलो।

बाँसुरी मधुर स्वर में बजती है, इससे परमात्मा को वह अच्छी लगती

है। बाँसुरी कहती है कि दूसरा कुछ नहीं, जो मेरे मालिक की इच्छा होती है, मैं वही बोलती हूँ। तुम भी बाँसुरी की तरह ठाकुरजी की इच्छानुसार बोलो। बाँसुरी कभी दूसरी बात नहीं कहती।

जब मनुष्य अकेला रहता है तो वाणी से बात नहीं करता। मन से बातें करता है।

उत्तम मौन तो वह है जब मन से भी बात न की जाए। कितने ही दृष्टि से और कितने ही संकेत से बोलते हैं, ऐसा नहीं करना चाहिये।

बाँसुरी जड़ को चेतन और चेतन को जड़ बनाती है।

वृक्ष ऐसा मानते हैं कि बाँसुरी बाँस की कन्या है। बिरादरी की कन्या लाला की "वधू" है। इसलिए लाला हमारा जमाई हुआ।

व्यवहार में बड़े के साथ सम्बन्ध जोड़ना लाभ का काम है।

हरिणी कान से बाँसुरी सुनती है, आँख से उसे देखती है। वह अकेली दर्शन नहीं करती, पति को भी साथ ले जाती है। दर्शन ही नहीं, भेंट देने की भी इच्छा रहती है। बेचारी क्या देवे? नेत्र रूपी कमल ईश्वर के चरणों में समर्पित करती है।

यह देखकर एक गोपी सखी से कहती है – मेरे से हरिणी ही श्रेष्ठ है। हरिणी का पति उसका साथ देता है, पर मेरा पति कृष्णसेवा में कभी–कभी मेरे अनुकूल नहीं रहता, विघ्न उपस्थित कर देता है। मैं मानती हूँ कि यह हरिणी भाग्यशालिनी है।

कन्हैया कदम्ब पर बैठा है। एक–एक गाय का नाम लेकर बुला रहा है। गायें मात्र दर्शन नहीं करतीं। आँखों से दर्शन करती हैं और अन्तर में उतारती भी हैं। गायें जिस आतुरता से दौड़कर आती हैं, उसे देखकर मेरा मन होता है कि मैं भी दौड़कर कन्हैया का आलिंगन करूँ। पर स्त्री हूँ, यह भान होते ही बैठ जाती हूँ।

गोपी (स्त्री) जब स्त्रीत्व और पुरुष पुरुषत्व भूल जाता है, तब प्रभु उन्हें रासलीला में बुलाते हैं।

काम रासलीला में विघ्नकारक है।

गोवर्धन लीला में श्रीकृष्ण सात वर्षों के और रासलीला में आठ वर्षों के थे। जो ज्ञान-भक्ति को बढ़ावे वह रासलीला है।

"गो" का अर्थ है ज्ञान-भक्ति। ज्ञान भक्ति बढ़ाओ, पीछे रासलीला में प्रवेश मिलेगा।

ज्ञान-भक्ति की वृद्धि के लिए कुछ दिन घर छोड़ो।

मानव समाज में रहकर मानव बने रहना सरल है, पर विलासी लोगों के सम्पर्क में आने से मन पर विलासिता के संस्कार पड़ते ही हैं।

प्रवृत्ति के विषयानन्द को समझकर उसका त्याग करो। पीछे निवृत्ति पूर्वक एकान्त सेवन करो।

शक्ति होगी तो भक्ति बनेगी। तीर्थ में एक दो महिने रहकर धीरे-धीरे भक्ति करो।

घर में रहकर भक्ति को बढ़ाना अशक्य है। एकान्त सेवन के साथ पवित्र तीर्थों में रह कर कुछ साधना करोगे तो भजनानन्द-ब्रह्मानन्द मिलेगा।

रासलीला भागवत का फल है। यह स्त्री पुरुष का मिलन नहीं, पुरुषोत्तम के साथ शुद्ध जीवात्मा का मिलन है।

पूतना अर्थात् वासना के क्षय होने पर जीवन सुधरता है। तृणावर्त अर्थात् रजोगुण के नाश होने पर सात्त्विकता आती है और वासनाओं का नाश होता है।

स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भेद का स्मरण जब तक बुद्धि में रहता है, तब तक काम देह से निकलता नहीं। जब यह निकल जाता है तो "गोपीभाव" का जन्म होता है।

प्रभु के स्मरण में इस तरह तन्मय बनो कि स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भेद का विस्मरण हो जावे।

गोवर्धनधरं वन्दे गोपालं गोपरूपिणम्।
गोकुलोत्सवमीशानं गोविन्दं गोपिकाप्रियम्।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

एक गृहस्थ के दो कन्याएँ थीं। एक का विवाह कुम्हार के साथ और दूसरे का किसान के साथ किया। पीछे गृहस्थ बेटियों से मिलने गया। कुशल समाचार पूछे। वर्षा ऋतु का प्रारम्भ था। कृषक-पत्नी ने कहा–यदि वर्षा प्रारम्भ हो जाए तो समय पर बोवाई हो जाए और अनाज को अच्छी तरह पक जाने का समय भी मिले।

कुम्हार पत्नी ने कहा–"बर्तनों का आँवा पन्द्रह दिनों बाद पकेगा। तब तक वर्षा न होवे तो ठीक रहे।"

गृहस्थ जीव है। जीव के दो कन्याएँ हैं-प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति के आनन्द का विवेकपूर्वक परित्याग करने पर ब्रह्मानन्द, भजनानन्द का आनन्द मिलता है।

प्रवृत्ति छोड़ने के पश्चात् एकान्त में बैठने पर इन्द्रियों के वेगों की बरसात आती है-वासनाओं की बौछार आती है। ऐसे समय में सावधान रहना है। निवृत्ति लेने पर पूर्ण आनन्द की अनुभूति नहीं होती।

भगवान के स्मरण में पूर्ण आनन्द न मिले तो मन में दृढ़ निश्चय करो कि मुझे अब इन्द्रिय सुखों को छोड़कर भजन ही करना है। आनन्द सहज में नहीं मिलता, पर एक बार मिलने के पश्चात् काया का कल्याण हो जाता है।

स्वरूप-सेवा और नाम-सेवा का आधार मिलने पर ही धैर्य टिकता है।

परमात्मा ने गिरिराज को कनिष्ठा अंगुली पर धारण किया था। कनिष्ठा अँगुली सात्विकता है।

वासनाओं की वर्षा जोरों से आती है, पर धैर्य रखकर प्रभु–स्मरण करते रहने पर वासनाओं की बरसात शान्त हो जाती है।

ज्ञान तथा भक्ति को बढ़ाने के लिए ठाकुरजी के साथ एक रूप बनो। भगवान की इच्छा में स्वयं की इच्छा को मिला दो।

वैष्णव की कोई इच्छा नहीं होती।

सेवक और सेव्य जब एक रूप हो जाते हैं तो भक्ति की वृद्धि होती है। पवित्र होकर सेवा करो।

गोवर्धन-लीला में पुजारी श्रीकृष्ण हैं और पूज्य भी श्रीकृष्ण हैं। पवित्र होकर पूजा में बैठो।

इन्द्र को गद्दी पर बैठाने वाले गोवर्धननाथ हैं।

चार देव चार दिशाओं के अधिपति हैं, पर गोवर्धननाथ मध्य में विराजमान हैं। वे सर्वश्रेष्ठ हैं।

यतीपुरा में गोवर्धननाथजी का मुखारविन्द है।

प्रभु की सेवा में शरीर छीजे, थकावट आए, पसीना निकले तो प्रभु को अच्छा लगता है।

गिरिराज में से निकली गंगा "वैष्णवी गंगा" है।

ठाकुरजी का आधिदैविक स्वरूप किसी-किसी समय ही प्रकट होता है।

जीव ऐसा है कि अधिक मिलने की बात होवे, तो ही कुछ देता है।

प्रसाद का अनादर न करो। थाली में जूठन न छोड़ो। अन्न की निन्दा न करो। भिखारी को जूठन न दो।

उच्छिष्ट का अधिकार पति-पत्नी के अतिरिक्त दूसरे को नहीं है।

मनुष्य अन्न का अपव्यय करते हैं, इससे अन्नपूर्णा अप्रसन्न होती है।

गोवर्धन पर्वत श्रीकृष्ण की अँगुली के आधार पर है। यह संसार किसके आधार पर है ?

ठाकुरजी के आश्रय से ही सब सुखी हैं।

कन्हैया ने ऐसी बाँसुरी बजाई कि सात दिनों की मूसलाधार बारिश में नादब्रह्म और परब्रह्म की एकरसता में सराबोर किसी को क्षुधा-पिपासा का भान भी नहीं हुआ।

दूर से दर्शन करनेवालों को श्रीकृष्ण मेघ सदृश श्याम दिखते हैं। पर जो चरणों में शरण लेते हैं, उन्हें तेजोमय दिखते हैं।

हृदय में काम के रहने के कारण मनुष्य का हृदय काला है। श्रीकृष्ण-भजन करने से श्रीकृष्ण हृदय की कालिमा को खींचते हैं। कालिमा वे अपने श्रीअंगों में धारण कर लेते हैं इसलिये वे श्याम हैं।

गोपी की आँखों में श्रीकृष्ण हैं। गोपियाँ काजल लगाती हैं, इसलिए कन्हैया काला है।

श्रीकृष्ण कौरवों के काल हैं, इसलिये काले हैं।

राधाजी नौ वर्ष की और श्रीकृष्ण ग्यारह वर्ष के हैं। श्रीकृष्ण ने राधाजी से कहा –"तुम्हारी शोभा बढ़े, इसलिये मैं काला हूँ।"

शुद्धसत्त्व में भगवान प्रकट होते हैं, इसलिये वे "वासुदेव" कहलाते हैं।

विशिष्ट शक्ति के साथ जब परमात्मा का अवतार कुछ जीवों के ही कल्याणार्थ होता है तो "अंशावतार" कहा जाता है। पर श्रीकृष्ण परमात्मा तो "पूर्णावतार" थे।

दुर्योधन और रावण मर गये, पर उनका वंश कलियुग में बढ़ गया है।

पंचभूतों का आधार लेकर ब्रह्माजी सृष्टि उत्पन्न करते हैं, पर श्रीकृष्ण तो संकल्प से ही सृष्टि उत्पन्न करते हैं। इसके लिये उन्हें किसी आधार की आवश्यकता नहीं होती।

ब्रह्माजी का अभिमान प्रभु ने हटाया था। कनिष्ठा अँगुली पर गोवर्धन को धारण कर प्रभु ने इन्द्र का अभिमान तोड़ा था।

पंढ़रपुर कीर्तन-भक्ति की आदिपीठ है। एकादशी को कीर्तन करते-करते लोग मन्दिर में ही सो जाते हैं।

दो बजे ब्राह्म मुहूर्त में नन्दजी स्नान करने गये। वरुणदेव के सेवक नन्दजी को पकड़ कर ले गये। भगवान को खबर लगी। श्रीकृष्ण वरुण लोक में आए। वरुण देव ने क्षमा माँगी। श्रीकृष्ण नन्दजी को ले आए।

रात्रि ११ बजे के पश्चात् तीर्थों में राक्षस वास करते हैं। रात्रि में ११ बजे के बाद नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इससे राक्षसों को पुष्टि मिलती है। अधिक रात्रि में जो भोजन करता है, वह दूसरे जन्म में राक्षस होता है। यदि भूख लगी होवे तो दूध पीकर सो जाओ।

नन्द जीवात्मा है। जब वह यमुनाजी में स्नान करता है तो वरुणदेव के सेवक उसे पकड़ लेते हैं। प्रत्येक जीव की जीभ में वरुणदेव का निवास है और इससे जिह्वा नीली रहती है। वरुण के सेवक अर्थात् षड्रस।

जो षड्रस के अधीन रहता है, वह भक्ति-रस ग्रहण नहीं कर सकता। जिसे अलौकिक भक्ति प्राप्त हो जाती है, वह षड्रस के अधीन नहीं रहता।

जिसे लंगोटी की भी जरूरत नहीं, ऐसे शुकदेवजी कथा कर रहे हैं। किसी स्त्री या पुरुष का वर्णन करने शुकदेवजी नहीं बैठे हैं।

कथा के श्रोता हैं परीक्षित, जिनकी मृत्यु कुछ समय बाद ही होने वाली है। क्या उसे स्त्री या पुरुष की कथा रुचेगी ? परन्तु शुकदेवजी की आकांक्षा है कि तक्षक नाग के डसने के पूर्व ही परीक्षित रासलीला के दर्शन करे, परमात्मा को प्राप्त करे।

लौकिक दृष्टि से विचार करने पर भी इस लीला में विकार नहीं है। आठ वर्ष की उम्र में श्रीकृष्ण ने यह लीला की थी। गोपियों के शरीर का स्पर्श श्रीकृष्ण ने नहीं किया था।

गोपियों का पाञ्चभौतिक शरीर कहाँ गया था ? इसका समाधान यह है कि वियोग में शरीर जलता है। कृष्ण के वियोग में जीव व्याकुल रहता है। विरहाग्नि में व्याकुल होकर जलता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रेम का आरम्भ होता है द्वैत से, पर समाप्ति होती है अद्वैत में। रासलीला में गोपियाँ श्रीकृष्णस्वरूप हो जाती हैं।

पारसमणि लोहे को सोना तो बना सकती है, पर पारसमणि नहीं बना सकती।

गोपियों का प्रेम श्रीकृष्ण में इतना अधिक था कि वे श्रीकृष्ण के बिना रह नहीं सकती थीं, अतएव "श्रीकृष्णमय" हो गई थीं।

भक्ति भेद का नाश करती है। श्रीकृष्ण की विरहाग्नि में गोपियों का पाञ्चभौतिक शरीर श्रीकृष्णाकार हो गया था।

जिसका अन्तिम जन्म है, उसे ही रासलीला में प्रवेश मिलता है।

जब प्रेम की अतिशय वृद्धि होती है तो प्रेमी और प्रेमिका एक हो जाते हैं। प्रेम में "मैं" और "तू" नहीं रहते।

मूर्च्छा प्रेम की चरम सीमा है। गोपियाँ रोती नहीं, पर कृष्ण को याद करते-करते मूर्च्छित हो जाती हैं।

जितना आनन्द मिलन में है, उतना ही मिलन की आशा में भी होता है।

जिसका अधिकार सिद्ध हो जाता है, उसे भगवान रास में बुलाते हैं।

जब चिन्तन करते-करते देह की सुधि नहीं रह जाती, तभी गोपी भाव प्रकट होता है।

जिस तरह दीपक में तेल के न रहने पर दीपक शान्त हो जाता है, उसी तरह किसी भी वासना के मन में न रहने पर मन शान्त हो जाता है।

वृद्धावस्था में दूसरे की "पंचायत" न करो।

एक वृद्धा ने यह कहा कि "जब मेरे को मूर्च्छा आवे तो लाला को बुलाना।" असल से नकल ज्यादा हैं। वृद्धा को मूर्च्छा आई। बहू सरल थी। वह दौड़ती कन्हैया के पास गई और सारी बात बताई।

लाला ने कहा – "जिसके बाल सफेद हो गये हों, उस पर मेरा मंत्र नहीं चलता। क्या तुम्हारी सास माला फेरती है ?" बहू ने जवाब दिया – "सारे दिन टक–टक करती है।" लाला ने कहा–"बाल तो सफेद हुए, पर हृदय निर्मल नहीं हुआ।"

बुढ़िया ने वृद्धावस्था में कपट किया। बहू के आग्रह करने पर कन्हैया देखने गया।

लाला ने कहा–"इसे मूर्च्छा नहीं है। इसमें भूत आ गया है। रात्रि के बारह बजे भूत का जोर बढ़ेगा।" घर के सारे प्राणी घबरा गए। लाला ने कहा – "मंत्र बोलकर भूत को मारना पड़ेगा। लकड़ी मारने के बाद भूत बोलेगा कि मत मारो, फिर भी पाँच-सात लकड़ी तो मारनी ही पड़ेंगी।"

लाला ने लक़ड़ी मारी। वृद्धा ने कहा – "मेरे को कुछ नहीं हुआ है। मुझे न मारो। मैंने ढोंग किया था।"

ढोंग भूत है जो भीतर से काला और बाहर से सादा है। बाहर भक्ति की बातें करता है पर भीतर से कंचन और कामिनी में फँसा रहता है।

रासलीला चिन्तनीय है, अनुकरणीय नहीं। यह शुद्ध निर्विकार लीला है, जिसे श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। कोई मनुष्य नहीं कर सकता। मनुष्य सिर्फ रासलीला का दर्शन और चिन्तन कर सकता है।

गोपियों के दो भेद हैं–नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा। इनमें साधनसिद्धा के अनेकों भेद हैं–श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, संकीर्णरूपा, अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा।

ब्रह्म–साक्षात्कार के लिए जो गोकुल में प्रकट हुई, वे श्रुतिरूपा हैं। ब्रह्म का अनुभव करने जो ऋषि गोपी बनकर आए, वे ऋषि रूपा हैं।

वाणी द्वारा परोक्षज्ञान भले ही हो जावे, पर आत्म- साक्षात्कार नहीं होता। देव भी हारे हैं।

ईश्वर वाणी का विषय नहीं है। अतएव वाणी से थके देव गोपी बनकर आये।

मनुष्य से मिलन की इच्छा "काम" है। परमात्मा से मिलन की इच्छा "भक्ति" है।

फल-फूल खानेवाले मनुष्य को भी कभी-कदाच काम त्रास देता है। श्रीकृष्ण-मिलन के हेतु ऋषि गोकुल में गोपी बनकर आये हैं। लोहे से लोहा कटता है।

जब गोपियाँ पाँच वर्ष की थीं तभी से यह इच्छा रखती थीं कि पति मिले, तो श्रीकृष्ण ही मिले। पाँच वर्ष का बालक कुमार है और पाँच वर्ष की बालिका कुमारी है।

परमात्मा से मिलने की इच्छा काम-सुख भोगने के लिए नहीं, काम-सुख से छूटने के लिए होनी चाहिए।

चीर हरण के बाद रासलीला हुई है। जिस प्रकार वस्त्र शरीर को ढक कर रखते हैं, उसी प्रकार वासनाएँ परमात्मा को ढक कर रखती हैं। शरीर में रहने वाली वासना भगवद्कृपा होने पर ही जाती है।

श्रीकृष्ण गोपियों से सब प्रकार से मिले हैं, पर बीच में वासना का परदा था। उसे दूर करने के लिए यह "लीला" है।

भगवान तो अन्दर ही हैं, पर वासना का परदा रहने के कारण जीव को उसका अनुभव नहीं होता।

मार्गशीर्ष महीने में चीरहरण लीला हुई।

गोपियों को परमानन्द का दान करने के लिए यह कथा है।

शुकदेवजी का ब्रह्म सम्बन्ध श्रीराधाजी ने कराया है। शुकदेवजी गुरुदेव का नाम नहीं लेते। रासेश्वरी श्रीराधाजी का वंदन करके पूछते हैं कि "कथा करूँ या नहीं ?" श्रीराधाजी आज्ञा देती हैं - "कथा कर।"

श्रीकृष्ण गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हैं और कामदेव बाण मारता है। इस लीला का नाम काम-विजय लीला है। शरद ऋतु कामदेव की सहायक ऋतु है।

गोपी शृंगार करती है, पर उसे सुधि नहीं है। आँख में काजल के बदले कुमकुम डालती है। घर पोत रही थी, अतएव गोबर मिट्टी से सने हाथों ही दौड़ी। देह का भान नहीं। गोपी तो ऐसा मानती है कि मैं श्रीकृष्ण हूँ, दूसरा कोई नहीं है। यह जगत् की विस्मृति है।

परमात्मा के स्मरण में जो देहभान भूले, वह भाग्यशाली है। उसे काल की भीति नहीं रहती।

सबकी सेवा करो, पर चिन्तन परमात्मा का ही करो। यदि स्त्री स्वधर्म का समुचित पालन करे, तो वह ब्रह्म को बालक बनाकर गोद में खिला सकती है। वह ईश्वर की जननी हो सकती है।

स्त्री आदिशक्ति अम्बाजी का स्वरूप है।

संसार में ऐसा कोई घर नहीं है, जहाँ रासलीला नहीं होती होवे।

अन्तर्यामी नारायण किसी को सुख अथवा दुःख नहीं देते। वे तो सबको आनन्द देते हैं।

गोपियाँ भगवान से मिलने आती हैं, तब भगवान आज्ञा देते हैं कि तुम अपने पतियों के पास जाओ।

पुरुष के लिये मुक्ति दुर्लभ है, स्त्री के लिये सुलभ है।

परमात्मा धन अथवा तन नहीं चाहते, वे तो मन को माँगते हैं। स्त्री के साथ प्रेम करना अच्छा लगता है। यदि परमात्मा के साथ प्रेम करे, तो तुरन्त मुक्ति मिलती है।

पैसा कमाने के लिये यदि पुरुष पाप करता है, तो वह पाप पुरुष का है। पर पैसे से कोई पुण्य करता है तो उसमें आधा भाग स्त्री का होता है। पति में ईश्वर-भाव रखकर जो स्त्री पति की सेवा करती है, उसे ही पुण्य मिलता है। उसका यह लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं।

प्रेम वियोग में पुष्ट होता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

कह मलूक हम जबहिं ते, लीन्हीं हरि की ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि, डारि भरम की पोट।।

—मलूकदास

"वियोग में मेरा ध्यान करना, तुम्हारे पति के शरीर में भी मेरा निवास है।" गोपियों को भगवान ने घर जाने की आज्ञा दी तो गोपियाँ दुःखी हुईं, पर उन्होंने धीरज रखा।

त्याग दो प्रकार का है – अज्ञान से किया गया त्याग और बुद्धिपूर्वक किया गया त्याग।

जिसके मन में कुछ भी नहीं है, वह "गोपी" है।

बाहर का संसार दुःख नहीं देता। दुःख तो मन के भीतर का संसार देता है।

गोपियों का त्याग बुद्धियुक्त है।

जो मन के द्वारा साक्षी भाव से देखता है, वह "ईश्वर" है। गोपी कहती है – "जो स्त्री नहीं है, पुरुष भी नहीं है – ऐसा जीवात्मा परमात्मा को छोड़कर कहाँ जाएगा ?"

गोपियाँ आत्मस्वरूप से जवाब देती हैं।

धर्मपालन से पापों का नाश होता है। जिसके पापों का नाश होता है, उसका मन शुद्ध होता है। मन शुद्ध होने के पश्चात् परमात्मा के चरणों में स्थान मिलता है।

गोपी कहती है कि परमात्मा के मिलन के बाद अब कहाँ जाएँ ?

धर्म साधन है। श्रीकृष्ण साध्य हैं।

साध्य के हाथ में आने के बाद उसे कौन छोड़ता है ? श्रीकृष्ण कहते हैं – "मैं झूठ क्यों बोलूँ ? तुम्हारे पति के शरीर में मैं ही हूँ, वहीं मिलो।"

"मेरे पति के (अन्तःस्थित) परमात्मा वासना के आवरण में हैं, किन्तु मैं वासनाओं के आवरण को हटाकर आपके पास आई हूँ।"

रावण में भी 'राम' हैं, पर उसका राम अविद्या के आवरण से ढका

हुआ है।

भावना का जन्म संयोग में होता है अथवा वियोग में ? भावना संयोग में नहीं उत्पन्न होती। जिसे ईश्वर का वियोग होता है, वही ईश्वर की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर की भावना करता है।

मन के ईश्वर में मिल जाने पर ईश्वर भी उसे विलग नहीं कर सकते। सखियाँ परमात्मा की खुशामद करती हैं–"हमारा मन हमें वापस कर दो।"

परमात्मा को छोड़कर मन किसी को देने का नहीं है।

जिस प्रकार फूल कुम्हला जाता है, उसी प्रकार संसार के सारे विषय कुम्हलाते हैं।

मन समर्पित करने के योग्य एक ईश्वर ही हैं।

समुद्र को अर्पित जल जिस प्रकार समुद्र में मिल जाता है, उसी प्रकार ईश्वर को अर्पित मन ईश्वर में एकाकार हो जाता है।

गोपियों ने भगवान से अधरामृत की याचना की – "ऐसा अधरामृत प्रदान करो कि आपका वियोग ही न होवे। ऐसा अमृत प्रदान करो कि वह किसी पात्र में न समावे। एक क्षण का भी वियोग न रहे।"

"अधरामृत नहीं दोगे, तो तुम्हारा ध्यान करते हुए मैं प्राणों को त्याग दूँगी। ईश्वर से मिलकर मैं तो कृतार्थ हो जाऊँगी, पर अपयश तुम्हारा होगा।"

प्रभु ने लीला की है। जितनी गोपियाँ हैं, उतने ही कृष्ण हैं। परमात्मा एक क्षण में अनेकों रूप धारण कर सकते हैं।

हजारों वर्षों से भटकते जीव का मिलन हुआ है। आनन्द में गोपियाँ नाच रही हैं। श्रीकृष्ण भी नाच रहे हैं। मध्य में राधा-माधव अष्ट गोपियों के साथ हैं। ब्रह्मादि देव दर्शन करने आये हैं।

रजोगुणी मनुष्य इस लीला को दोषदृष्टि से देखते हैं। जब जीव और ब्रह्म का मेल होता है, तो सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। वहाँ सब कुछ श्रीकृष्णमय दिखता है। परमात्मा-दिव्यात्मा का मिलन होता है। जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

नारदजी को विचार आया कि – "यदि मैं ब्रह्मा के पुत्र की जगह गोपी होता तो ?"

अन्दर प्रवेश करते समय गोपी रोक देती है। कहती है – "बाहर से दर्शन करो, अन्दर आओ नहीं।" नारदजी रोते हैं।

श्रीराधाजी की नजर नारदजी पर पड़ी। पास आकर पूछती हैं –"क्यों रोते हो" ?

नारदजी कहते हैं –"अन्दर जाना है।"

राधाजी ने कहा – "तो राधाकुण्ड में स्नान करो।"

नारदजी नहाकर बाहर निकलते हैं तो नारदी बन जाते हैं।

भीति स्त्री का धर्म है। जिसे भय लगे वह स्त्री है। काल के भी काल एक श्रीकृष्ण ही "पुरुष" हैं।

ब्रजभक्ति अर्थात् "निःसाधन भक्ति"। जिनके पास साधन तो हैं, पर साधन का अभिमान नहीं है–वह निःसाधन भक्ति है। इसके लिये भगवान श्रीकृष्ण ने लीला की।

रासलीला का स्मरण और चिन्तन करने वाले को धीरे–धीरे काम के ऊपर विजय मिलती है।

प्रभु ने रासलीला में कामदेव का विनाश किया है, काम को जीता है।

मनोरथ करते रहो, पर प्रभु कृपा से ही मनोरथ सफल होते हैं।

जो मार्ग चलते–चलते प्रभु का स्मरण नहीं करते, उनकी आँखों में काम का प्रवेश होता है। मन परमात्मा का चिन्तन न करे, तो संसार के चिन्तन में पड़ता है। पूर्णतः निःसंग रह सकना कठिन है।

जिसका परमात्मा के साथ सम्बन्ध हो गया, वह वन्दनीय है।

सब प्रकार के अभिमान को छोड़कर जीव जब ठाकुरजी की शरण में जाता है, तो ठाकुरजी उसकी तरफ देखते हैं।

अक्रूरजी गोकुल जा रहे हैं। अक्रूर रास्ते में विचार करते हैं। उनके मन में शंका उठती है–मैंने क्या पुण्य किया है ? यदि मेरे पर प्रभु की कृपा होगी, तो ही दर्शन होंगे।

अक्रूरजी का तन तो रास्ते में है, पर मन गोकुल पहुँच गया है।

तन्मयता में अक्रूरजी ने अपना ही हाथ अपने सिर पर रख लिया। "मैं योग्य तो नहीं हूँ, पर वसुदेवजी का मित्र हूँ और वयोवृद्ध हूँ, इसलिये लाला मुझे "काका" कहकर बोलेगा। जगत् के साथ मेरा सम्बन्ध कच्चा है और परमात्मा के साथ सम्बन्ध सच्चा है।"

जैसा सम्बन्ध जीव परमात्मा के साथ जोड़ता है, वैसा ही सम्बन्ध परमात्मा भी जीव के साथ जोड़ते हैं। जो जीव प्रभु में जैसा भाव रखता है, परमात्मा भी उसी भाव से उस जीव से सम्बन्ध जोड़ते हैं।

जो वियोग में मेरा स्मरण करता है, अंतरंग में उसे मेरा संयोग प्राप्त होता है।

सेवा, परोपकार और स्मरण में अतृप्ति रखो।

भोजन और धन में सन्तोष रखो।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

44

जीव ईश्वर से कहता है-" मैं तुम्हारा हूँ।" पर आज ईश्वर यशोदाजी से कह रहे हैं कि -"मैं तुम्हारा हूँ।"

लाला ने यशोदाजी से कहा - "मैं वापस आऊँगा।" पर कब आऊँगा, यह नहीं कहा।

यशोदाजी के मन में हुआ कि लाला वापस तो आएगा। किन्तु मैंने यह नहीं पूछा कि कब आओगे ?

जीव ईश्वर का स्मरण करे, यह साधारण भक्ति है। किन्तु तुम ऐसा स्मरण करो कि ईश्वर को भी तुम्हारा स्मरण करना पड़े।

निन्दा करनेवाले को धोबी का जन्म मिलता है। मनुष्य जिस इन्द्रिय से पाप करता है, उसी इन्द्रिय को भगवान सजा देते हैं।

बुद्धि कुब्जा की तरह टेढ़ी है। सद्गुरु बुद्धि के पिता हैं और श्रीकृष्ण स्वामी हैं।

वैश्यों ने माँगा-"प्रभु ऐसी कृपा करो कि हमें लक्ष्मी की प्राप्ति हो।" लक्ष्मीजी ने विचार किया कि भले ही वैश्य लोभी हैं, पर कुछ तो खरचेंगे। उन्होंने वैश्यों का उद्धार किया।

रंगभूमि में प्रवेश करने के बाद जैसी जिसकी भावना थी, उसे वैसे ही दर्शन मिले।

श्रीकृष्ण चाणूर के साथ और बलदेव मुष्टिक के साथ अखाड़े में लड़ते हैं। बलदेव मुष्टिक रूपी "काम" को और श्रीकृष्ण चाणूर रूपी "क्रोध" को मारते हैं।

जो धर्म को नहीं मानता वह कंस है।

जो गाफ़िल रहता है वह काम की मार खाता है, पर जो ज्ञान-गंगा को धारण करता है, वह काम की मार नहीं खाता।

कुब्जा पर प्रभु ने अनुग्रह किया और उसका बाँकापन सीधा हुआ। निग्रह द्वारा मल्लों का विनाश किया।

कंस की रानी न्याय की बात कहती है – "बाल-हत्या के पापों के कारण कंस की मृत्यु हुई है। कृष्ण ने उसे नहीं मारा।"

कंस को मार कर लाला ने जिस घाट पर आराम किया था, उस घाट का नाम "विश्राम घाट" हुआ।

कुछ मिलने की आशा में लोग बड़े आदमियों से सम्बन्ध जोड़ते हैं। परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ोगे तो धन और शांति दोनों मिलेंगे। परमात्मा का कोई भी मंगलमय स्वरूप निश्चित करके उसके साथ सम्बन्ध जोड़ो और इष्टदेव–एक रखो। ध्यान इष्टदेव का ही करो।

सम्बन्ध के बिना स्नेह नहीं होता, सम्बन्ध के बिना लगन नहीं होती और स्मरण के बिना सम्बन्ध नहीं बनता। मनुष्य मंदिर में तो जाता है, पर वह प्रभु के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ता।

किसी भी रीति से जब तक जगत् को भूलना बाकी है और परमात्मा में तन्मयता नहीं है, तब तक भक्ति नहीं मिलेगी।

दास्य-भाव में देव जल्दी आते हैं। दास्य-भाव रखने पर प्रभु तुम्हें ऐसा ज्ञान देवेंगे, जो बुद्धि में स्थिर रहेगा।

कंस बैर भाव से भगवान का चिन्तन करता है। उसे बैर के सिवाय कुछ सूझता नहीं। मन का स्वभाव है कि वह मित्र की अपेक्षा शत्रु का चिन्तन अधिक करता है।

बैर-भक्ति से भी उद्धार होता है। प्रभु ने कंस का उद्धार किया।

भले ही लोहे का हथौड़ा पारस पत्थर को तोड़ डाले, पर स्पर्श के प्रभाव से हथौड़ा तो स्वर्ण का हो जाता है।

ऐश्वर्य का ज्ञान लीला में बाधक है। प्रेम की बातें जीभ से नहीं होती, आँख और मन से होती हैं। जीभ से करोगे तो जीभ ऐंठ जाएगी।

माता-पिता मौजूद होवें तो प्रेम से उनकी सेवा करो। यदि न होवें तो एक बार उन्हें याद करके उनको वंदन करो।

कंस के पिता उग्रसेन को भगवान राज्य देते हैं और कहते हैं – "कंस प्रजा को पीड़ा देता था, इसलिए मैंने उसे मारा है; राज्य के लोभ से नहीं।"

सत्कर्म करो, पर सत्कर्म के फल की अधिक इच्छा न रखो। प्रत्येक मनुष्य में सूक्ष्म इच्छा रहती है कि लोग मेरी बड़ाई करें।

मनुष्य को कद्र करनी नहीं आती। मनुष्य की मनुष्य क्या कद्र करेगा ?

जिसने तुम्हें सुन्दर शरीर दिया, उसकी तुमने क्या कद्र की? सूक्ष्म अभिमान को मिटाने के लिये, फल की आशा के बिना सत्कर्म करो।

संसार तुम्हारे बारे में क्या कहेगा – यह सावधानी बरतने की जरूरत नहीं, भगवान तुम्हारे बारे में क्या कहेंगे, इसकी सावधानी बरतो।

संसार ईश्वर के लिए भी ठीक बातें नहीं करता, तो तुम्हारे लिए कैसे करेगा ?

कथा सुनने के बाद जो पाप कर्म को छोड़ता है, उसे कथा–श्रवण का पुण्य मिलता है। ऐसा समझो कि उस दिन से नया जन्म हुआ है।

भले ही कथा की समाप्ति होवे। पर भक्ति और सत्कर्म की समाप्ति न करके, भोगों की समाप्ति करो। प्रेम में आग्रह होता है, दुराग्रह नहीं।

ब्रजवासी हाथों में शस्त्र नहीं रखते। वे तो प्रेम ही रखते हैं। इससे लाला कहता है–"अब मैं यह प्रकट करता हूँ कि मैं वसुदेव का पुत्र हूँ। ब्रजवासियों के सुख के लिये मेरा कार्य करना जरूरी है।"

नन्द बाबा ने भी आशीर्वाद दिया – "बेटा ! प्रभु तुम्हें सुखी रखें।"

प्रभु ने गाड़ी भर वस्तुएँ माँ के लिए दी हैं। नन्दजी कहते हैं–"जब कन्हैया ही नहीं है, तो मैं इनका क्या करूँगा ?" भगवान ने समझाकर नन्दजी को गोकुल भेजा है।

जब ईश्वर संसार में आता है तो उसे भी सद्गुरु की आवश्यकता होती है। ऐसे किसी सन्त की सेवा करो, जिसके स्मरण से मन में पाप का प्रवेश न होवे। इससे तुम्हारी विकारी वासनाओं का नाश होकर, तुम्हारे मन पर भक्ति का रंग चढ़ेगा।

सच्चे संत जब कृपा करते हैं तब संतति अथवा सम्पत्ति नहीं देते। वे तो अलौकिक भक्ति का दान करते हैं। किसी विरक्त सन्त का आश्रय लो।

संदीपनी ऋषि के आश्रम में भगवान पढ़ने गये थे।

पुरुषार्थ से अर्जित ज्ञान अभिमान को जन्म देता है। सन्त-कृपा से प्राप्त ज्ञान पोर-पोर में नम्रता भर देता है।

गुरुकुल में अनेक विद्यार्थी थे, पर श्रीकृष्ण ने एक ही विद्यार्थी से मित्रता की थी। वे सुदामाजी थे।

सुदामदेव बालकपन से संयमी थे। श्रीकृष्ण संयमी के साथ ही मैत्री करते हैं।

प्रत्येक इन्द्रिय पर संयम रखोगे, तो सुखी होवोगे।

इन्द्रियाँ शत्रु का काम करती हैं, पर जब वे जीवात्मा के अधीन रहती हैं, तो मित्र का कार्य करती हैं।

विद्यार्थी-जीवन में सुदामा के साथ मित्रता करन आवश्यक है। विद्यार्थी को विलासी नहीं होना चाहिए।

जो जितेन्द्रिय है, उसे ही पढ़ाने का अधिकार है। विलासी गुरु को विद्यार्थियों को पढ़ाने का अधिकार नहीं है।

सद्गुरु के आशीर्वाद से ज्ञान में स्थिरता आती है। समझ तो सब में रहती है, पर सद्गुरु बिना समझ में स्थिरता नहीं आती।

गुरु ऐसा निरपेक्ष होवे कि नदी के जल और वृक्षों के फलों से ही उसे संतोष होवे।

भगवान गुरु-दक्षिणा में कुछ तो लेने को कहते हैं, तब गुरु कहते हैं कि –"कोई योग्य शिष्य मिले तो मेरा भी वंश बढ़े।"

गुरु शिष्य का सम्बन्ध है – "नादवंश"

पिता पुत्र का सम्बन्ध है – "विन्दुवंश"

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

45

अर्जुन श्रीकृष्ण को गुरु मानते हैं, पर श्रीकृष्ण अर्जुन को मित्र मानते हैं, इसलिए उससे सेवा की इच्छा न करके स्वयं सेवा करते हैं। भले ही अर्जुन सो जावे, पर श्रीकृष्ण तो जागते हैं। इसलिए कहा है -

"कृष्णं वन्दे जगद् गुरुम्"

गुरु में पूर्ण त्याग के होने पर ही वाणी में शक्ति आती है। गुरुजी ने दक्षिणा में कुछ नहीं लिया, अतएव भगवान गुरु-पत्नी के पास गए। उसने कहा -"मेरा पुत्र प्रभास समुद्र में डूब गया है, उसे ला दो।' भगवान उसे पाञ्चजन्य के पास से ला देते हैं। माताजी आशीर्वाद देती हैं - "लक्ष्मी चरणों में रहे, कीर्ति बढ़े।"

मथुरा के ऐश्वर्य में प्रभु अपने ब्रजवासियों को भूले नहीं।

विद्वान की परीक्षा भागवत में होती है, स्त्री की परीक्षा विपदा में होती है और भागवत की परीक्षा उर्ध्वगमन में है।

"साक्षी चैतन्य मैं हूँ" - ऐसा ज्ञान होने के बाद ज्ञान में प्रीति उत्पन्न होनी चाहिए। गोपी की निष्ठा है कि ज्ञान श्रेष्ठ तो है, पर उससे भी श्रेष्ठ श्रीकृष्ण-प्रेम है।

अतिशय प्रेम के बिना जीव भी अपना प्रेम प्रकट नहीं करता, तो प्रभु किस प्रकार करेंगे ?

एक स्थान में ही जो प्रभु का दर्शन करता है, वह वैष्णव नहीं है। जगत् के समग्र जड़-चेतन में जो ईश्वर के दर्शन करता है-वही सच्चा वैष्णव है।

ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों में से किसी को भी गौण नहीं कहा जा सकता। शुकदेवजी में ये तीनों गुण परिपूर्ण रूप में थे। अतएव वे श्रेष्ठ वक्ता माने गये।

मथुरा में ऐश्वर्य है, पर प्रेम तो ब्रज में ही है, जिसके स्मरण मात्र से आँखें नम हो जाती हैं।

प्रेम का स्वभाव है कि रुदन में भी मनुष्य को सुख मिलता है। श्रीउद्धवजी भगवान की सेवा में थे। उद्धवजी विचार करते हैं –"जब प्रभु अकेले बैठते हैं, तो उनकी आँखों में आँसू आते हैं। क्या मेरी सेवा में कोई भूल है ?" पूछना जरूरी है।

सायंकाल प्रभु का हृदय पिघला। प्रेम को प्रकट होना अच्छा नहीं लगता।

उद्धव से प्रभु कहते हैं – "मथुरा के लोग मेरे को राजा मान कर दूर से प्रणाम करते हैं, पर प्रेम नहीं करते। इसलिये यशोदा माँ का प्रेम मुझे याद आता है। वे मेरी कितनी संभाल रखती थी। मुझे स्नेहपूर्वक बहलाकर जिमाती थी ! मथुरा के लोग मेरे सामने छप्पन भोग रखते हैं, पर प्रेम से कोई खाने को नहीं कहता। नंद बाबा और गोपियाँ मुझे बहुत याद आते हैं। गोपियों से मैंने कहा था कि मैं आऊँगा। इसी आशा को लेकर वे जी रही हैं। बालगोपाल मित्र मुझे याद आते हैं। मुझे जरा भी कष्ट न होवे, इसका वे ध्यान रखते थे। स्वयं खराब खाकर, मेरे को अच्छा खिलाते थे। तुम उन्हें आश्वासन देने जाओ।"

उद्धवजी ने भगवान से कहा – ठीक है। पर उद्धव के ज्ञान के अभिमान ने कहा – "गाँव में रहनेवाली गोपियाँ तत्त्वज्ञान क्या समझेंगी ?"

प्रभु कहते हैं – "ऐसा मत कह। यद्यपि वे गाँव में रहती हैं, पर प्रेम कैसे करना चाहिये, यह तो मुझे भी उनसे सीखना है। इसलिए तू जा।"

उद्धव का जाने का मन नहीं था। अतएव कहा कि आप अब सबको भूल जाओ।

प्रभु कहते हैं – "तू भूलने की बात करता है ? पर वे लोग जब तक मुझे न भूलें, तब तक मैं उन्हें कैसे भूल सकता हूँ ? वे प्रतिक्षण मेरा चिन्तन करते रहते हैं।"

शुद्ध प्रेम का सन्देश कागज में नहीं लिखा जा सकता, मन से पहुँचाना पड़ता है।

प्रेम-तत्त्व का ज्ञान न होने के कारण उद्धव मानते हैं कि – "क्या पत्र में लिखा सब सच होता है ? यह तो प्रेम का ढोंग है।"

पत्र से माँ को क्या सुख मिलेगा ? पत्र में क्या लिखूँ, यह परमात्मा की समझ में नहीं आता। इसलिये उद्धव को भेज रहे हैं।

गोपियों के गुरु होने के लिये उद्धवजी ब्रज में गए, पर गोपियों का प्रेम देखने के बाद वे गोपियों के चेले हो गए। गोपियों के सत्संग से उद्धव में सरलता आई।

प्रभु कहते हैं – "जब तुम गोपियों से मिलने जाओ तो मेरा पीताम्बर पहिन कर जाना। इससे उन्हें विश्वास होगा कि तुम मेरे यहाँ से आये हो। वे किसी के सम्मुख नहीं देखती। एक-एक गोपी को वन्दन करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

प्रभु जानते थे कि उद्धव में सूक्ष्म अभिमान है, अतएव उसे सीख दी।

जब से कन्हैया गोकुल छोड़ कर गया, नन्द–यशोदा ने अन्न खाना छोड़ दिया। गोपियाँ मनाती है तो कहते हैं कि कन्हैया जब आवेगा, तभी उत्सव करके जीमेंगे।

जब उद्धव ने वृन्दावन में प्रवेश किया तो देखते हैं कि पक्षी भी राधाकृष्ण–राधाकृष्ण बोल रहे हैं। कैसे दिव्य-प्रेमी हैं ! पक्षी जल पीने को भी नीचे नहीं उतरते। कोई वैष्णव आवे और राधाकृष्ण कहे, तो जल पीते हैं। ऐसा विरह-प्रेम श्रीकृष्ण के प्रति उद्धवजी ने देखा !

उद्धव का रथ देखकर ग्वाल बाल दौड़ते आए। उद्धव उतरे भी नहीं थे, कि उन्होंने कहा – "उद्धव, लाला के बिना मक्खन में मिठास नहीं आता, मक्खन अच्छा नहीं लगता।"

उद्धव ने कहा – "भगवान ने तुम्हारे लिये ही तो मुझे भेजा है।" यह जानकर बालगोपाल खुश हुए।

उद्धव के रथ को देखकर मानो सबमें प्राण आ गए। नन्द और यशोदा दौड़ते आए। उनको लगा कि कन्हैया आया है। पर जाकर देखा तो कोई दूसरा ही था। दोनों रास्ते में ही बैठ गए। यशोदाजी ने दासियों से उद्धवजी का सम्मान करने को कहा।

उद्धव को आश्चर्य हुआ कि ये लोग मुझे देख कर रो क्यों रहे हैं ? भोजन के समय दासी ने पूछा कि आप कौन हो और कहाँ से आए हो ?

उद्धव ने कहा – "मेरे प्रभु ने मुझे भेजा है।

दासी ने नन्दजी से कहा – "लाला का मित्र मिलने आया है।" यह सुनकर नन्दजी ने आँखें खोली। नन्दजी ने उद्धव को देखा।

नन्दजी ने कहा – "उद्धव, कन्हैया मेरा बेटा है।" यशोदा पूछती है –"क्या सबेरे उसे कोई माखन देता है ? क्या वह कभी मुझे याद करता है ?"

उद्धवजी कहते हैं – "जब भोजन करने बैठते हैं, तब खूब ही याद करते हैं।"

यशोदाजी कहती हैं – "अब मथुरा का राजा हो गया, इसलिये यहाँ नहीं आता। पर पहले जब मैं यमुना में स्नान करने जाती थी, तो मेरी साड़ी पकड़ लेता था।"

उद्धवजी ने कहा – "वे स्वयं आने वाले थे, पर राज-कार्य में व्यस्त होने के कारण मुझे ही भेजा है।"

यशोदाजी ने गद्गद् होकर कहा–'देवकीजी से कहना कि लाला की सच्ची माँ तो आप ही हो, पर किसी दासी की आवश्यकता पड़े, तो मुझे बुला लेवें। मैं किसी से नहीं कहूँगी कि मैं लाला की माँ हूँ।"

उद्धव को आश्चर्य हुआ। प्रेम-भक्ति देखकर बोले –"आप का जीवन सफल है। आपको देखकर मेरा जीवन भी सफल हुआ।"

प्रेम से कृष्णलीला का ध्यान करते हुए गोपियाँ दधि मन्थन करती हैं, पर मन तो श्रीकृष्ण-प्रेम से लबालब भरा है।

उद्धवजी गोपियों के साथ ६ महीने रहे। उन्हें एक-एक गोपी एक-एक कृष्ण के जैसी लगी। उन्हें विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण-प्रेम ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

गोपियाँ प्रेमलक्षणा भक्ति की आचार्या हैं।

श्रीगोपी–गीत (रासपंचाध्यायी)

धाम	ब्रज सुखी हुआ, तेरे जन्म से	
	अटल इन्दरा, राजती यहाँ।	भागवत-स्कन्ध
	प्रिय दयानिधे ! दर्श दे हरे,	१० अ० ३१
	विकल गोपिका, ढूँढती तुझे।।	(श्लोक सं० १)
ज्ञान	महर नन्द का, पुत्र तू नहीं	
	निखिल सृष्टि का, साक्षी रूप है।	
	उदित है हुआ, वृष्णिवंश में	
	व्यथित विश्व के त्राण के लिए।।	(श्लोक सं० ४)
कथा	तव सुधामयी, प्रेम जीवनी	
	अघ-निवारिणी, क्लेश-हारिणी।	
	श्रवण सौख्यदा, विश्व तारिणी	
	मुदित गा रहे, वीर अग्रणी।।	(श्लोक सं० ६)
अवतारप्रयोजन	ब्रज प्रेदेशमें, व्यक्त रूप ले	
	दुःख लोक के, दूरित हैं करें।	
	विरह-ताप की, शान्तिकारिणी	
	अलभ औषधी, दे हमें हरे।।	(श्लोक सं० १८)
महाभाव	हे कृष्ण कोमल पदाम्बुज ये तुम्हारे,	
	जो बार बार हमने, निज वक्ष धारे।	
	इन्से फिरो हो वन में, जब प्राण प्यारे,	
	पीड़ा उठे है उरमें, अति ही हमारे।।	(श्लोक सं० १६)

(पद्यानुवाद-श्रीधर पाठक)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

46

"इतना मेरे पास है और मैं इतना भोगूँगा" - लौकिक सुखभोग की यह इच्छा ही कंस है ?

अस्ति और प्राप्ति राजा कंस की दो रानियाँ थीं। कंस की मृत्यु के पश्चात् वे पिता जरासंध के पास अपने पीहर में आईं।

१७ बार जरासंध को श्रीकृष्ण ने हराया था। जब तुम्हारी उम्र ४६ की होगी, तो जरासंध आएगा। जोड़ों में दर्द होगा, दुर्बलता आएगी। यह जरासंध की सेना है।

जब कालयवन और जरासंध दोनों साथ मिलकर लड़ने आते हैं, तो मथुरा छोड़नी पड़ती है। १७ बार मनुष्य व्याधियों से मुक्त होता है, पर जब १८वीं बार कालयवन अन्धकार के साथ आता है, तब मृत्यु भी आती है।

कालयवन के साथ युद्ध करते हुये प्रभु ने रणभूमि छोड़ी थी, अतएव नाम पड़ा रणछोड़।

कालयवन-'काल' पीछे पड़ता है, इसलिये द्वारका जाओ। भले ही द्वारका जाना नहीं बने, पर इस शरीर को तो द्वारका बनाओ ही।

श्रीकृष्ण ने राजा मुचकुन्द के माध्यम से कालयवन का नाश करवाया था। श्रीकृष्ण ने मुचकुन्द को अपना पीताम्बर ओढ़ाया था।

मनुष्य की स्थिति सर्प के मुँह में पड़े मेंढक के समान है। सर्प-मुख में पड़ा मेंढक भी उड़ती मक्खी को खाने की कोशिश करता है।

मनुष्य सारे इन्तजाम तो करता है, पर मरने की तैयारी नहीं करता। तैयारी करके रखोगे, तो शान्ति से मरोगे।

वरदान में प्रभु ने राजा मुचकुन्द को भक्ति दी। कहा कि "एक जन्म और लेना पड़ेगा। बद्रिकाश्रम में जाकर शरीर छोड़ना।"

राजा मुचकुन्द कलियुग में नरसी मेहता हुए। द्वारकानाथ ने नरसी मेहता के सारे काम किये।

१८वीं बार जरासंध लड़ने आया। हार मान कर प्रभु प्रवर्षण पर्वत पर चले गए।

पुत्र-विवाह के पश्चात् घर में रहना होवे, तो विवेक से रहो। ५५ की आयु के बाद एक बार भोजन करते हुये सत्कर्म करो।

मनुष्य कुटुम्ब की चिन्ता करते हुए मरता है, पर मृत्यु के बाद स्वयं का क्या होगा, इसका कभी विचार नहीं करता।

सरकार भी ५५ के बाद सेवा से विरत कर देती है, यह समझ कर भी निवृत्ति लो।

जरासंध के त्रास से छूटने के लिये नित्य नियमपूर्वक इक्कीस हजार जप करो। चौबीस घण्टे में २१६०० श्वास आते हैं। प्रत्येक श्वास पर जप होवे, ऐसा प्रयत्न होना चाहिये।

यदि जप-मंत्र छोटा होगा तो एक घण्टे में ४००० जप होंगे। पाँच घण्टे आसन पर बैठने पर २१००० जप होते हैं।

१६ माला फेरो। १ माला पन्द्रह मिनट में होती है। घण्टे में चाहे जितनी भी माला फेरी जावे जप मंत्र के साथ करो। १६ अथवा २१ माला फेरो।

ध्यान के साथ जप करने पर ही वासना छूटेगी।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा शुभ मुहूर्त है।

नियम पूर्वक सत्कर्म करने से दिव्यता आती है।

साक्षात् माता महालक्ष्मीजी विदर्भ की अमरावती नगरी में प्रकट हुई हैं। शुकदेवजी विवाह की कथा कहते हैं। साधु पुरुष विवाह में नहीं जाते। साधुओं के आचार्य होकर वे विवाह की बात करते हैं !

जिसकी मृत्यु नजदीक है और जिसे तक्षक नाग डसेगा, उसे विवाह की कथा सुनाते हैं। यह साधारण वर- वधू के विवाह की कथा नहीं है; श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा है।

शुकदेवजी की आकांक्षा है कि परीक्षित का प्रभु के साथ लग्न होवे, तो अच्छा रहे। इसी भाव से वे कथा कह रहे हैं।

रुक्मिणीजी ने पत्र में लिखा है –"कामी पुरुष सियार के समान होता है। मेरे मन में कोई विकार नहीं है।" क्या कोई साधारण कन्या इस तरह लिख सकती है कि मेरे को तो निष्काम परमात्मा के साथ विवाह करना है ?

विवाह के बाद भगवान भी कहते हैं कि वंशवृद्धि की मेरी चाह नहीं है।

जो जीव प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा रखता है, उसे घर में भी लोग दुःख देते हैं।

साधारण मनुष्य को शरीर और इन्द्रिय-सुख छोड़कर आत्मसुख की जानकारी नहीं रहती। जिसे प्रभु के साथ सम्बन्ध करना है, उस जीव का जीवन तो सादा होना चाहिये।

जिसे परमात्मा के साथ सम्बन्ध करना है, उसे सत्संग की जरूरत है।

रुक्मिणीजी जब पार्वतीजी का पूजन करने गई थीं, तो पैदल चल कर गई थीं। उनका जीवन सादगीपूर्ण था।

कामी जीव शिशुपाल है।

रुक्मिणीजी सुदेव ब्राह्मण के हाथ द्वारका पत्र भेजती हैं।

जब सुदेव ब्राह्मण पत्र देता है, तो प्रभु रुक्मिणीजी को स्वीकार कर लेते हैं।

काम का स्पर्श प्रभु को नहीं होता, इसलिये लोग उन्हें "अच्युत" कहते हैं।

संसार में जो सौन्दर्य दिखता है, वह श्रीकृष्ण का अति सामान्य अंश है।

स्त्री यदि नियमपूर्वक पार्वतीजी और तुलसीजी की पूजा करे तो अखण्ड सौभाग्यवती और सुपुत्र की माता बने।

पत्नी पुण्यशालिनी होवे तो पति को बहुत देती है।

बड़ा तो वह है, जो मर्यादा को मान देता है।

सद्गुरु को तभी आनन्द होता है, जब सद्शिष्य को परमात्मा मिलते हैं।

अतिकामी बहुत भीरु होता है।

महाभारत में पाँच, रामायण में चार और भागवत में दो भाई सम्पत (मेल) से रहे हैं।

जहाँ सम्पत है, वहीं सुख है।

प्रथम दिवस ही दाऊजी ने इस प्रकार आत्मीयता प्रदर्शित की थी कि रुक्मिणीजी के मन में जेठ के प्रति आदर भाव अंकुरित हुए बिना न रह सका।

गोकुल पत्र गया। कन्हैया ने लिखा कि यदि मेरी माँ विवाह में नहीं आएगी, तो कन्हैया कुँआरा ही रहेगा।

द्वारकाधीश के साथ रुक्मिणीजी के विवाह की कुंकुम पत्रिका यशोदाजी को मिलती है। यशोदाजी के मन में हुआ कि जाते समय कन्हैया कह गया था – मैं आऊँगा, पर आया नहीं। जाने का क्या काम है ? विवाह के दिन गाँव भर को भोजन कराऊँगी और सबसे कहूँगी कि कन्हैया को आशीर्वाद दो।

पति-पत्नी ने निश्चय किया कि कन्हैया आवे तो ही जाना है। इसलिये नन्द बाबा ने पत्र का जवाब नहीं दिया।

दाऊजी को पता लगा कि यशोदा माँ वृद्ध हो गई हैं और वियोग में रोती रहती हैं।

यशोदा माँ को सुन्दर स्वप्न हुआ कि कन्हैया आ रहा है, शुभ शकुन हो रहे हैं।

वैष्णव परमात्मा की आशा तो नहीं छोड़ते, पर मनुष्य की आशा कभी नहीं करते।

तभी नन्दजी आकर कहते हैं कि कन्हैया आ गया। रथ में-से उतरकर कन्हैया पाँवों में गिरा। यशोदा लाला को देखती है। अरे यह तो बड़ा हो गया !

यशोदा ने कृष्ण बलराम की नोनराई करके नजर उतारी।

श्रीकृष्ण ब्रजवासियों को लेकर द्वारका आये। विवाह माधवपुर में हुआ।

प्राची में और माधवपुर में माधवराय और रुक्मिणी साथ हैं।

गोपियाँ चरणारविन्द में लीन हो गईं। यह गोपी चन्दन हुआ।

परमात्मा श्रीकृष्ण की आह्लदिका शक्ति रुक्मिणी है। जीव लक्ष्मी का पुत्र है।

मनुष्य को लक्ष्मी के उपयोग का अधिकार है, उपभोग का नहीं है। लक्ष्मी जीवमात्र की माता है। जीव पुत्र है। पुत्र पति नहीं हो सकता।

पंचमहाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार यह अष्टधा प्रकृति है। इनके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। मनुष्य के दुःखों का कारण मनुष्य का अपना स्वभाव है। मनुष्य समझता है कि उसका स्वभाव ठीक नहीं है, और यह समझकर भी वह इसे सुधारता नहीं।

परमात्मा की कृपा से ही स्वभाव सुधरता है।

एक आसन पर बैठकर जप करने से स्वभाव सुधरता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

47

वेद ईश्वर का वर्णन करते हैं, दर्शन करते हैं, पर अनुभव नहीं कर पाते। किन्तु जहाँ ज्ञानी भक्त बैठते हैं, वहाँ उसका अनुभव होता है।

जो परमात्मा मन्दिर में दिखते हैं, वे जब तुम्हारे अन्तर में आवें तो लाभ है। मन्दिर में जो परमात्मा विराजमान हैं, वे ही भीतर भी विराजमान हैं।

पति-पत्नी शुद्ध भाव से प्रेम तो करें, पर शरीर में आसक्ति नहीं रखें। बाह्य रूप में प्रेम दिखे, पर अन्तर में उसकी आसक्ति नहीं होवे।

जीव में जब अभिमान होता है, तो प्रभु उसकी उपेक्षा करते हैं। मान के पीछे अभिमान ही है।

जब सेवा में बैठो तो मन और आँखों को उसी में पिरोये रहो। मन भले ही चंचल हो जाए पर आँखों को चंचल न होने दो। आँखें स्थिर होंगी तो ही मन स्थिर होगा।

भगवान की वाणी गूढ़ार्थ से भरी है।

राजागण लक्ष्मी के लोभ में फँसे हुए हैं, अतएव भगवान राजाओं से दूर रहते हैं। वे द्वारका में रहते हैं।

कामी सौन्दर्य की पूजा करते हैं, निष्कामी नहीं। श्रीकृष्ण स्वयं आनन्द-रूप हैं।

जीव जब भान भूलता है तो ईश्वर भय को खड़ा करते हैं। किन्तु जीव जब घबराकर शरण में आता है, तो उसे भय से मुक्त भी करते हैं।

रुक्मिणीजी को लगा कि मूर्ख मेरे पीछे पड़ते हैं और सन्त भगवान के पीछे पड़ते हैं। वे भगवान से कहती हैं – "मैं आपकी रानी नहीं, आपकी दासी हूँ।"

पर-निन्दक दूसरे जीवों को हल्का समझता है। उपवास करनेवाला अन्न खानेवाले को छोटा समझे तो उपवास से कोई लाभ नहीं। दूसरे को कभी हीन नहीं समझना चाहिये।

साधन और सत्कर्म खूब करो, पर बिना अभिमान के।

जिसे प्रभु के दर्शन नहीं हुए, वह भले ही कामी पुरुष का संग करे। पर जिसे एक बार दर्शन हो गये, उसे कुसंग नहीं करना चाहिये।

श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र से बाणासुर डरता था। बाणासुर शिव-भक्त था।

शिव-भक्त श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय हैं।

प्रभु ने बाणासुर के ९९६ हाथ काट दिये थे, ४ हाथ बाकी छोड़े थे।

श्रीकृष्ण ४ बजे उठते हैं। ४ बजे के बाद की निद्रा पुण्य का नाश करने वाली है। संकल्प करोगे तो प्रभु तुम्हें जगावेंगे। ४ से ५ १/२ तक का समय उत्तम है। इस समय ध्यान और मानसी सेवा करो। प्रातःकाल में भगवान भी ध्यान करते हैं।

माँ बालक से सत्कर्म कराती है।

मैं अज्ञानी बालक हूँ, मुझे कुछ नहीं आता, मेरे हाथों से सत्कर्म कराओ। मुझे पाप करते अटकाओ–मैं पाप नहीं करूँ–ऐसे –ऐसे संकल्पों के साथ प्रार्थना करोगे, तो भगवान् तुम्हारे घर पधारेंगे।

सुधरे हुए व्यक्ति अपने को बहुत बुद्धिमान् समझते हैं। सुधरे हुए लोगों ने पुरातन को हटाकर नवीन संशोधन किया है।

नया अच्छा लगे तो विवेक से ग्रहण करो, पर सनातन धर्म मिथ्या नहीं है। उसे धारण करो।

भारत में त्याग की पूजा होती है।

आध्यात्मिक और आधिदैविक सम्पत्ति में भारत श्रेष्ठ है। द्वारकानाथ दो बार संध्या करते हैं। रोज माता-पिता को प्रणाम करते हैं।

अपनी कोई निन्दा करे तो उससे अपना ही लाभ है। निन्दा को सहन करो। परमात्मा भी निन्दा सहन करते हैं।

कर्कश वाणी से कलह का जन्म होता है।

बिना वनवास के जीवन में सुवास नहीं आएगी। एकाध महीने तीर्थ में रहकर सात्त्विक जीवन व्यतीत करो।

काशी, उज्जैन और हरिद्वार के स्वामी "श्रीशिव" हैं। अयोध्या, द्वारका और मथुरा के देव 'श्रीविष्णु' हैं।

शिवकांची-विष्णुकांची के स्वामी श्रीशिव और श्रीविष्णु हैं।

इस तरह ३ १/२ + ३ १/२ मिलकर ७ पुरी होती हैं।

सुदामा ज्ञानी भक्त है। गरीब है, पर मूर्ख नहीं है।

पैसे के लिये ज्ञान का उपयोग करना ठीक नहीं। ज्ञान का उपयोग तो "ध्यान" करने में है।

भगवान ने सुदामादेव से पूछा कि "तुम्हारा संसार कैसा चलता है।" दरिद्र होते हुए भी जवाब दिया -"अरे खूब आनन्द है।"

सुदामा की भावना थी कि जब द्वारकानाथ भोजन करें तो मैं अपनी आँखों से निहारुँ।

द्वारकानाथ के लिए मैं एक मुट्ठी चावल लाया हूँ। प्रभु उन चावलों को खाते हैं और सुदामा को अपने समान ऐश्वर्य देते हैं।

सुदामा के ऐसा ब्राह्मण नहीं हुआ।

सुदामा जब विदा हुए तो उनकी झोली उन्हें वापस कर दी। भगवान की इच्छा है कि जब सुदामा घर पहुँचे, तब वरदान दूँ। "घर जाकर भाभी को मेरा प्रणाम कहना"- भगवान मित्र-पत्नी को प्रणाम कहलाते हैं।

भक्त यदि योग्य होवे तो भगवान् उसे सम्पत्ति भी देते हैं।

सत्ता का कोई आकार और रंग नहीं है।

भगवान् निर्गुण और सगुण दोनों हैं।

ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है। नाम जप करो।

अनेक पुस्तक-पठन से बुद्धिभेद बढ़ता है।

जिस प्रकार फूल के कुम्हलाने पर तुम्हारा मन फूल से हट जाता है, इसी तरह संसार के कुम्हलाने पर मन संसार से हट जाएगा।

प्रभु ने विचार किया कि सोने की द्वारका का न रहना ही ठीक है। मेरे जाने के बाद किसी अपात्र के हाथ में पड़े, इससे तो इसे डुबा देना ही ठीक है।

संसार के विषय हमें छोड़ें, इसके पहले हम ही समझकर उन्हें छोड़ देवें–यह अधिक उपयुक्त है।

पाप को छिपाना महापाप है। पापकर्म बन जाए तो ईश्वर के सामने स्वीकार करो।

यदि एक सिद्धांत ही बुद्धि में स्थिर करना है, तो जीवात्मा दृढ़-संकल्प करे– "मैं प्रभु का हूँ।"

ईश-कृपा और संत-कृपा तो होवे, पर "आत्मकृपा" के न होने पर उद्धार नहीं होगा।

दीक्षागुरु एक होता है-पर शिक्षागुरु अनेक होते हैं। जिनसे सद्गुण मिलें, लो।

धरती माता सबकी आधार है। धरती माता कहती है कि मनको शुद्ध रखना है तो गम (सन्तोष) खाओ और तन को शुद्ध रखना होवे तो कम खाओ।

लोग मधुमक्खी को मारकर मधु ले जाते हैं, अतएव संग्रह मत करो।

अति संग्रह से विग्रह उत्पन्न होता है।

एक-एक अंग का ध्यान करो। सर्वांग का स्मरण और धारणा करो।

प्रत्येक जीव में ईश्वर भाव रखते हुए किसी से द्रोह न करना, यह बड़े से बड़ा दान है।

जो अन्दर के शत्रुओं को मारता है, वह वीर है। मन से जो काम सुख का स्मरण नहीं करता, वह तपस्वी है।

तपस्वी तो वह है जो मन से काम का त्याग करे।

जो पुस्तक में–के सिद्धान्त को मन में उतारे वह ज्ञानी है।

जो आत्मा को शरीर से अलग समझे वह ज्ञानी है।

माया जिनके अधीन है, वे ईश्वर हैं।

दूसरे के दोषों का विचार करना दोष है। अपने दोषों को देखो।

निन्दा और स्तुति में मन को शान्त रखो।

निन्दा सत्य होवे अथवा झूठ, यदि वह सहन नहीं होवे, तो समझो कि भक्ति अधूरी है।

सत्संग न मिले तो कोई हर्ज नहीं, पर कुसंग तो न करो।

कलियुग में कुल अथवा जाति का विचार किये बिना ही मनुष्य विवाह करेंगे। राजागण त्रास देंगे।

भागवत की समाप्ति पर राजा परीक्षित ने शुकदेवजी की पूजा की।

गुरुदेव ने प्रसन्न होकर राजा पर अपना वरद हस्त रखा तो चतुर्भुज नारायण के दर्शन हुए।

व्यासजी भी कथा में बैठे थे, उन्हें खूब आनन्द आया। सारे महापुरुष खड़े हो गए। शुकदेवजी की जय-जयकार की। शुकदेवजी को खड़े होते तो सबने देखा, पर कहाँ गए, किस मार्ग से गए यह किसी ने नहीं देखा।

परीक्षित गंगाजी में स्नान करके ध्यान में बैठे। परीक्षित की आत्मा के प्रयाण के बाद ही तक्षक ने राजा को डसा था।

इस कथा का जो दिव्य प्रसाद है, वह शुकदेवजी का प्रसाद है। महापुरुष जीवन में अन्तिम श्वास तक सत्कर्म करते हैं।

"हरये नमः" यह प्रायश्चित-मंत्र है। इसे पाँच बार बोलने से पापों का नाश होता है।

हरये नमः हरये नमः
हरये नमः हरये नमः हरये नमः

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

करारविन्देन पदारविन्दम्, मुखारविन्देविनिवेशयन्तम्।
श्रीमद् यशोदांक गतं प्रसन्नम् , बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

'गोविन्द सद्योबहुमोदकारी स्तोत्र'

गोविन्द मेरी यह प्रार्थना है, भूलूँ न मैं नाम कभी तुम्हारा।
निष्काम हो के दिन रात गाऊँ, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।१।

देहान्तकाले तुम सामने हो, वंशी बजाते, मन को लुभाते।
गाता यही मैं, तन नाथ ! त्यागूँ, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२।

माता यशोदा हरि को जगावें,जागो उठो मोहन नैन खोलो।
द्वारे खड़े गोप बुला रहे हैं, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।३।

गोपी दही छाछ बिलो रहीं हैं, मीठा करे शब्द बड़ा मथानी।
गातीं मथानी संग नारि सारी, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण,हे यादव, हे सखेति।४।

ले ले करों में निज पींजरों को, कोई पढ़ाती शुकसारिका को।
गाते यही हैं शुकसारिका भी, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।५।

बैठी लिये है दुहनी अनोखी, गोदुग्ध काढ़े कोई नवेली।
गोदुग्धधारा संग गा रही है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।६।

माला रही गूँथ सुवाम कोई, ले गोद बैठी अपने लला को।
गा-गा सुनाती निज बाल को है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।७।

धोये किसी ने मुख बालकों के, ले गोद में प्यार करे, दुलारे।
हे लाल ! गाओ तुम संग मेरे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।८।

कोई जगाती निज लाल को है, जागो दुलारे! टुक नैन खोलो।
ये नाम बोलो हरि के सलोने, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।९।

कोई नवेली पति को जगावे, प्राणेश ! जागो अब नींद त्यागो।
बेला यही है हरि गीत गाओ, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।१०।

कासार के मध्य लला विलोको, कैसे मनोहारि सरोज फूले।
बैठे सभी में अलि गा रहे हैं, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।११।

देखो पखेरू तरु–डालियों में, गाते सुहाते मधुर स्वरों में।
पत्ते हथेली मृदु हैं बजाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।१२।

आकाश के बीच विहंगमाला, आनन्दमग्ना हरिनाममत्ता।
ऊँचे स्वरों से हरि–गीत गाती, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।१३।

जागे पुजारी हरि मन्दिरों में, जाके जगाते हरि को सभी यों।
हे शीलसिन्धो ! अब नेत्र खोलो, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।१४।

धन्या सभी हैं व्रज गोपिकायें, गातीं सदा जो हरिनाम प्यारा।
गो दोहते भी यह गीत गातीं, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। १५।

ले हाथ में मूसल, ओखली में, है कूटती धान सुवाम कोई।
है टूटता तार कभी नहीं यह,गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। १६।

डाली मथानी दधि में किसी ने,है ध्यान आया दधिचोर का ही।
गद्गद् हुआ कण्ठ पुकारती है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। १७।

है लीपती आँगन नारि कोई, गोविन्द आवें, मम गेह खेलें।
ध्यानस्थ ये ही पद गा रही है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। १८।

सोया किसी का सुत पालने में, डोरी करों से जब खींचती है।
गाती यही है हरि-प्रेममत्ता , गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति । १९।

रोया किसी का जब लाल प्यारा, हो प्रेममग्ना उसने पुकारा।
रोओ न, गाओ तुम संग मेरे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। २०।

झारी उठाई कर में किसी ने, धोती रसोई, मन में विचारे ।
गोपाल जीमें, हम गीत गावें, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। २१।

कोई नवेली घर को बुहारे, गोपाल को ही मन में निहारे।
आनन्द से 'शील' यही पुकारे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। २२।

देखो जहाँ भी, यह दीखता है, सोचो जरा भी, यह सूझता है।
सर्वत्र यह ही स्वर गूँजता है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२३।

राकेश तारागण भानु विद्युत, श्यामा घटायें जल बिन्दु सारे।
आकाश में यह ध्वनि हैं लगाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२४।

पक्षी अनेकों नभपंथ जाते, कैसी सुधा की झड़ियाँ लगाते।
मीठे स्वरों में हरि-गीत गाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२५।

स्रोतस्विनी के कलनाद मध्ये, उत्तुंग-शैलाग्र-जल प्रपाते।
हैं शब्द ये ही श्रुतिमध्य आते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२६।

ग्रामों घरों में, वन निर्झरों में, अट्टालिका में, कुटिया घरों में।
हैं गूँजते नाम यही सभी में, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२७।

वारीश की प्रेममयी तरंगें, भावेश की भावभरी उमंगें।
संकेत द्वारा दिन रात गातीं, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२८।

दीनों अनाथों दलितों, क्षुधार्तों , सर्वस्वहीनों रमणीविहीनों।
के चित्त में भी यह याद आती, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।२९।

विद्यानुरागी निज पुस्तकों में, अर्थानुरागी धनसंचयन में।
ये ही निराली ध्वनि ढूँढ़ते हैं,गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति ?।३०।

देहात्मवादी परमाणुवादी, साम्राज्यवादी अथ साम्यवादी।
गाते यही हैं मन मार सारे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३१।

सद्ग्रन्थ षड्दर्शन, वेद चारों, इंजील देखो, कुरआँ विचारो।
पाओ सभी में यह मन्त्र प्यारे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति ?। ३२।

भाषा विभिन्ना, परिपाटि भिन्ना, है भिन्न पूजा पर भाव दूजा।
देखो कहीं ना, सब धर्म गाते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३३।

योगी यती तापस साधु सारे, प्यारे बिना जो दुखिया विचारे।
एकान्त में 'शील' यही पुकारे,गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३४।

प्यारे जरा तो मन में विचारो, क्या साथ लाये अरु ले चलोगे?
जावे यही साथ, सदा पुकारो, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३५।

नारी धरा धाम सुपुत्र प्यारे, सन्मित्र सद्बान्धव द्रव्य सारे।
कोई न साथी, हरि को पुकारो, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३६।

'नाता भला क्या जगसे हमारा, आये यहाँ क्यों, कर क्या रहे हैं ?'
सोचो-विचारो, हरि को पुकारो, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३७।

सच्चे सखा हैं हरि ही हमारे, माता-पिता 'शील' सुबन्धु प्यारे।
भूलो न भाई, दिन रात गाओ, गोविन्द दामोदर माधवेति।

गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३८।

गोविन्द सद्यो बहुमोदकारी, जो स्तोत्र गावें पुरतो मुरारी।
प्रेम्णा प्रभातेऽचल भक्ति पावें, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ३९।

हो के सदा तुष्ट करे बसेरा, जो गान गाते, करते सबेरा।
गेहेऽचलाके सहमोद देते, गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति। ४०।

आरती भगवान श्री नटवर की

आरती कीजै श्री नटवर की, गोवर्द्धनधारी बंशीधर की।। टेक।।
नन्द-सुवन जसुमत के लाला, गोधन गोपी-प्रिय गोपाला।
देवप्रिय असुरन के काला, मोहन विश्वविमोहन वर की।
आरती कीजै श्री नटवर की, गोवर्द्धनधारी बंशीधर की।। १।।

जय वसुदेव देवकी नन्दन, कालयवन कंसादि निकंदन।
जगदाधार अजय जगवन्दन, नित्य नवीन परम सुन्दर की।
आरती कीजै श्री नटवर की, गोवर्द्धनधारी बंशीधर की।। २।।

सकल कलाधर सकल विश्वधर, विश्वम्भर कामद करुणाकर।
अजर-अमर मायिका-मल-हर, निर्गुण चिन्मयगुण मन्दिर की।
आरती कीजै श्री नटवर की, गोवर्द्धनधारी बंशीधर की।। ३।।

पाण्डव पुत्र परीक्षित रक्षक, अतुलित अहि अघ-मूषक-भषक।
जगमय जगत निरीह निरीक्षक, ब्रह्म परात्पर परमेश्वर की।
आरती कीजै श्री नटवर की, गोवर्द्धनधारी बंशीधर की।। ४।।

नित्य सत्य गोलोक बिहारी, अज अव्यक्त लीलावपुधारी।
लीलामन लीलाविस्तारी, मधुर मनोहर राधावर की।
आरती कीजै श्री नटवर की, गोवर्द्धनधारी बंशीधर की।। ५।।

श्रीमद्भागवत—सुधाकण

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।

सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।

स्क० 10, अ० 2, श्लो० 26,

प्रभो! आप सत्यसंकल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है। सृष्टि के पूर्व, प्रलय के पश्चात् और संसार की स्थिति के समय-इन असत्य अवस्थाओं में भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश-इन पाँच दृश्यमान सत्यों के आप ही कारण हैं और उनमें अन्तर्यामी रूप से विराजमान भी हैं। आप इस दृश्यमान जगत् के परमार्थ स्वरूप हैं। आप ही मधुर वाणी और समदर्शन के प्रवर्तक हैं। भगवन्! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं। हम सब आपकी शरण में आये हैं।

नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।
आत्मारामाय शान्ताय, कैवल्यपतये नमः।।

स्क० 1, अ० 8, श्लो० 27,

आप निर्धनों के परम धन हैं। माया का प्रपञ्च आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता। आप अपने आपमें ही रमण करने वाले, परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्ष के अधिपति हैं। मैं, कुन्ती आपको बारंबार नमस्कार करती हूँ।

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्, या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति।।

स्क० 1, अ० 8, श्लो० 31,

जब बचपन में आपने दूध की मटकी फोड़कर यशोदा मैया को खिझा दिया था और उन्होंने आपको बाँधने के लिये हाथ में रस्सी ली

थी, तब आपकी आँखों में आँसू छलके आये थे, कपोलों पर काजल बह चला था, नेत्र चञ्चल हो रहे थे और भय की भावना से आपने अपने मुखको झुका लिया था! आपकी उस दशा का–लीलाछवि का ध्यान करके मैं, कुन्ती मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा!

श्रीकृष्ण, कृष्णसख, वृष्ण्यृषभावनिध्रुग् राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य।
गोविन्द, गोद्विजसुरार्तिहरावतार, योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते।।

स्क० 1, अ० 8, श्लो० 43,

हे श्रीकृष्ण! अर्जुन के प्यारे सखा यदुवंशशिरोमणे! आप पृथ्वी के भाररूप राजवेषधारी दुष्टों को जलाने के लिये अग्निस्वरूप हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। गोविन्द! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओं का दुःख मिटाने लिये ही है। योगेश्वर! चराचर के गुरु भगवन्! मैं, कुन्ती आपको नमस्कार करती हूँ।

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां, ततोऽन्य कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।।

स्क० 3, अ० 2, श्लो० 23,

पापिनी पूतना ने अपने स्तनों पर हलाहल विष लगा कर श्रीकृष्ण को मार डालने की नीयत से उन्हें दूध पिलाया था, उसने भी भगवान से वह परम गति पाई, जो धाय को मिलनी चाहिये। उन भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कौन ऐसा दयालु है, जिसकी शरण ग्रहण करें!

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवत्यखिल-शक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्त-चरण-श्रवण-त्वगादीन्
प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्।।

स्क० 4, अ० 9, श्लो० 6

हे सर्वशक्तिमान! जो तू मेरे हृदय में प्रवेश करके अपने तेज से मेरी सुषुप्त वाणी को जगाता है; मेरे हाथ, पैर, कान, त्वचा आदि अन्य इन्द्रियों में प्राणों को संजिवित करता है; ऐसे हे भगवन् तुझे मैं नमस्कार करता हूँ।

यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म–शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाऽहं भ्रमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम्।

स्क० 7, अ० 9, श्लो० 17,

हे अनन्त! मैं जिन-जिन योनियों में गया, उन सभी योनियों में प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग से होनेवाले शोक की आग में झुलसता रहा। उन दुःखों को मिटाने की जो दवा है, वह भी दुःख रूप ही है। मैं न जाने कब से अपने से अतिरिक्त वस्तुओं को आत्मा समझकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। अब आप ऐसा साधन बतलाइये जिससे कि आपकी सेवा-भक्ति प्राप्त कर सकूँ।

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां, सस्मितं ते मुखाम्बुजम्।।

स्क० 8, अ० 5, श्लो० 45,

प्रभो! हम आपके शरणागत हैं और चाहते हैं कि मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त आपका मुखकमल अपने इन्हीं नेत्रों से देखें। आप कृपा करके हमें उसका दर्शन कराइये।

श्रृण्वन् गृणन् संस्मरयँश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-राविष्टचेता न भवाय कल्पते।।

स्क० 10, अ० 2, श्लो० 37,

जो पुरुष आपके मंगलमय नामों और रूपों का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण और ध्यान करता है और आपके चरण कमलों की सेवामें ही अपना चित्त लगाये रहता है, उसे फिर जन्ममृत्युरूप संसार में नहीं आना पड़ता।

तदस्तु मे नाथ, स भूरिभागो भवेऽत्र वऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्।।

स्क० 10, अ० 14, श्लो० 30,

हे भगवन्! ऐसी कृपा करिये कि मुझे इस जन्म में, दूसरे जन्म में, अथवा किसी पुश-पक्षी आदि के जन्म में भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासों में से कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरण-कमलों की सेवा करूँ।

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो, यावत् कृष्ण न ते जनाः।।

स्क० 10, अ० 14, श्लो० 36,

हे सच्चिदानन्द स्वरूप श्यामसुन्दर! राग-द्वेष आदि दोष तभी तक चोरों के समान सर्वस्व का अपहरण करते रहते हैं, घर की आसक्ति और बन्धु-बान्धव तभी तक सम्बधों की कैद के बंधनों में बांधे रखते हैं और मोह के बंधन भी तभी तक बेड़ियों के समान पाँवों को जकड़े रहते हैं, जब तक जीव आपका नहीं हो जाता।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारणयं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः।।

स्क० 10, अ० 21, श्लो० 5,

श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिर पर मयूरपिच्छ है और क़ानों पर कनेर के पीले-पीले पुष्प, शरीर पर सुनहला पीताम्बर और गले में पाँच प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की बनी वैजयन्तीं माला है। रंगमंच पर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नट का सा क्या ही सुन्दर वेष है! बाँसुरी के छिद्रों को वे अपने अधरामृत से भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्ति का गान कर रहे हैं।

इस प्रकार वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ, उनके चरण चिन्हों से और भी रमणीय बनें, इस वृन्दावन धाम में वे सायंकाल के समय प्रवेश कर रहे हैं।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं,
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं,
वन्दे महापुरुष, ते चरणारविन्दम्।।

स्क० 11, अ० 5, श्लो० 33,

प्रभो! आप शरणागतरक्षक हैं, आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करने योग्य, माया-मोह के कारण होनेवाले सांसारिक पराजयों का अन्त कर देनेवाले तथा भक्तों की समस्त अभीष्ट वस्तुओं का दान करनेवाले कामधेनु स्वरूप हैं। वे तीर्थों को भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं। शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और जो कोई भी उनकी शरण में आ जाये उसे वे स्वीकार कर लेते हैं। वे सेवकों के समस्त कष्टों और विपत्ति के नाशक तथा संसार-सागर से पार जाने के लिये जहाज हैं। हे महापुरुष! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ।

ॐ सह नवावतु। सह नो भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वी नावधीतम् अस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

वह (परमात्मा) हम दोनों (गुरु-शिष्य) की रक्षा करे। हम दोनों का उपयोग करे। हम दोनों एक साथ पुरुषार्थ करें। हमारी विद्या तेजस्वी हो। हम एक दूसरे से द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

परमभक्त नरसी मेहता का भजन
"वैष्णव–जन"

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ परायी जाणे रे;
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्छल राखे, धन धन जननी तेनी रे।।१।।

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे।।२।।

मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे;
रामानामशुं ताळी लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।।३।।

बण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे;
भणे नरसैयो तेनुं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे।।४।।

जो दूसरे की पीड़ा का अनुभव करता है, परोपकार में जिसे कर्तृत्व का अभिमान नहीं है, प्राणिमात्र जिसके लिए वंदनीय हैं, जो किसी की निन्दा नहीं करता, मन–वचन और कर्म से जो छल–रहित हैं, जिसमें चाह नहीं है, जिसके लिए पराई स्त्री माता के तुल्य है, जो असत्य भाषण नहीं करता, जो पराए धन का स्पर्श नहीं करता, जो मोह माया के बन्धन से परे है, जिसके वैराग्य में दृढ़ता है, जो नाम कीर्तन में लवलीन रहता है, जो लोभ–कपट से दूर रहता है, जिसने काम तथा क्रोध को जीत लिया है-

ऐसे वैष्णव की जननी धन्य है, ऐसे पुरुष की काया में समस्त तीर्थों का वास है, नरसी कहते हैं कि ऐसे वैष्णव के दर्शन मात्र से ७१ पीढ़ियों की सद्गति होती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिस्यामि मा शुचः।।

हे अर्जुन! सम्पूर्णभाव से निःसाधन, निरावलम्ब होकर तू एकमात्र मेरी शरण में आ। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा, अतएव शोक न कर।

(गीता १८/६६)

श्रीराम जय राम जय जय रा